२९९९६

"अभ्युदय-ग्रन्थ-माला" न० १

# ...द्दौला

सिराजद्दौला

अनुवादक—

॥ श्रीहरिः ॥

# सिराजुद्दौला ।

भारत के प्रौढ़ इतिहासज्ञ और बंगभाषा
के प्रसिद्ध लेखक—

## श्रीयुत बाबू अक्षयकुमार मैत्रेय

लिखित

"सिराजुद्दौला" के, सम्वत् १९७३ में संशोधित एवम्
परिवर्द्धित रूप में प्रकाशित, चतुर्थ संस्करण का
हिन्दी-अनुवाद । 1/6



अनुवादक—

## पं० भगवानदीन पाठक "विशारद" ।

प्रकाशक—

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।

संस्करण } १९७५ । } „ „ सादी

बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से
अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में मुद्रित और प्रकाशित।

ऐतिहासिक चित्र।

# सिराजुद्दौला।

"सिराजुद्दौला में चाहे कुछ भी दोष हों, परंतु उसने न तो अपने देश को बेचा था, और न अपने स्वामी को धोखा दिया था। एवम् हम यहां तक कहने को प्रस्तुत हैं कि कोई भी पक्षपात-शून्य अंगरेज़ यदि उन घटनाओं पर फ़ैसला करे, जो ६ फ़रवरी से २३ जून तक संघटित हुई हैं तो वह इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता कि क्लाइव की अपेक्षा सिराजुद्दौला का नाम प्रतिष्ठा के पल्ले में भारी है। उस शोकान्त नाटक में वही एक पात्र-विशेष था, जिसने धोखा देने की चेष्टा नहीं की!" कर्नल मालेसन।

श्रीअक्षयकुमार मैत्रेय।



मूल्य—~~सुन्दर कपड़े की जिल्द~~

साधारण प्रति ३) मात्र।

# ग्रन्थकार की भूमिका।

सम्वत् १९५२ वि० से 'सिराजुद्दौला' शीर्षक जो समस्त ऐतिहासिक प्रबन्ध क्रमशः 'साधना' और 'भारती'* में प्रकाशित हुए थे, वेही संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप में पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। †

नवाबी समय के इतिहास का संकलन क्रमशः कठिन हो रहा है। प्रमाणों और दलीलों के लिए मूल पत्र और काग़ज़ात कुछ भी अब इस देश में नहीं हैं और न मुर्शिदाबाद के नवाबी दफ़्तर में उन काग़ज़ों की प्रतिलिपियां ही सुरक्षित हैं। स्टुअर्ट ने जिस समय इतिहास का संकलन किया था, उसी समय उक्त काग़ज़-पत्र विलायत के भवनों में पड़े पड़े, एक प्रकार से, पढ़ने के योग्य न रह गये थे। अब इतने दिनों में तो न जाने वे और भी कितने जराजीर्ण हो चुके हैं।‡

उस समय के लेखकों में मुसलमानों और अङ्गरेज़ों के ग्रन्थ ही ऐतिहासिक खोज का एकमात्र अवलम्ब हैं। पुर्त-

---

* बंगला के मासिक पत्र।

† प्रथम संस्करण के बाद इस ग्रन्थ में क्रमशः संशोधन एवम् परिवर्द्धन हुआ है।

‡ सन् १८१३ में जब स्टुअर्ट ने बंगाल के इतिहास का संकलन किया तो उसकी भूमिका में लिखा था कि "दुर्भाग्य से हिन्दुस्तान के काग़ज़ात का दफ़्तर इङ्गलैंड में ऐसी सीली जगह पर है कि उनकी स्याही मिटती जा रही है, और काग़ज़ दिनोंदिन ख़राब होता जाता है।"

गीज़, फ़रासीस एवं डच लोगों ने जो कुछ लिखा था, वह अब तक इस देश में सर्वथा अज्ञात है।

मुसलमान लेखकों के इतिहास-ग्रन्थों में सैयद गुलामहुसेन का "सायरुल-मुतख़रीन." गुलामहुसेन सलेमी का "रियाज़ुस्सलातीन" और सैयदअली का "तारीख़े मंसूरी" नामक फ़ारसी ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है।

"मुतख़रीन" की रचना १७८३ में समाप्त हुई थी। प्रसिद्ध फ़ारसी पण्डित हाजी मुस्तफ़ा नामक व्यक्ति उसका सब से पहला अङ्गरेज़ी अनुवादक है। अनुवाद में प्रायः निजकृत टीकाएं भी सम्मिलित हैं। गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग्स के प्राइवेट सेक्रेटरी जोनाथन स्काट ने एक और अङ्गरेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया था। लखनऊ-निवासी मुंशी नवलकिशोर के प्रयत्न से एक उर्दू अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। यह उर्दू अनुवाद और मुस्तफ़ा का अङ्गरेज़ी अनुवाद ही मूल ग्रन्थ के आनुपूर्विक अनुवाद हैं। स्काट का अनुवाद वास्तव में मूल का अनुयायी समझकर ग्रहण नहीं किया जा सकता। मूल ग्रंथ और ये समस्त अनुवाद दुष्प्राप्य हो रहे हैं।

"रियाज़ुस्सलातीन" की रचना सन् १७८७-८८ में हुई। इसका अनुवाद नहीं है। एशियाटिक सोसाइटी के प्रयत्न से मूल ग्रंथ छपा है, और एक बंगला अनुवाद प्रकाशित करने का उद्योग हो रहा है।

"तारीख़े मंसूरी" उक्त ग्रन्थों की अपेक्षा आधुनिक ग्रंथ है। इसका भी अनुवाद नहीं है। सुविख्यात पाश्चात्य पण्डित, अध्यापक ब्लाकम्यान ने इसका सारांश संकलित किया था। वह एशियाटिक सोसाइटी के प्रयत्न से प्रकाशित हुआ है।

अङ्गरेज़ों में जिन्हों ने लेखनी धारण की उनकी रचनाएं, प्रकाशित और अप्रकाशित, दो भागों में विभक्त हैं। अप्रकाशित हस्तलिखित अनेकों पुरानी कहानियां ब्रिटिश अजायबघर में "हेस्टिंग्स का दफ़्तर" के नाम से यत्नपूर्वक सुरक्षितहैं। प्रकाशित ग्रन्थ भी अब क्रमशः दुष्प्राप्य हो रहे हैं।

तत्कालीन प्रकाशित इतिहास-ग्रन्थ तीन श्रेणियों में विभाजित हैं। साधारण इतिहास-ग्रन्थ, राजकीय दफ़्तर तथा छोटी छोटी पुस्तिकाएं। साधारण इतिहास-ग्रन्थों में अर्मी का 'हिंदुस्तान" नामक ग्रंथ सर्वोपरि है। लेखक महाशय ने बहुत वर्षों तक बंगाल और मदरास में रहकर, तत्कालीन राजपुरुषों की सहायता से, यह बृहत् इतिहास संकलित किया था। बाद के सभी इतिहास-लेखक थोड़े या बहुत परिमाण में, अर्मी-लिखित इतिहास, "हिन्दुस्तान" के ऋणी हैं।

राजकीय दफ़्तर के तत्कालीन बहुत से काग़ज़-पत्र एकत्र सम्मिलित करके महात्मा पादरी लंग ने एक संग्रह पुस्तक प्रकाशित की थी, और पार्लामेन्ट-कमेटी की एक बृहत् रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। ये दोनों ही ग्रन्थ अधिकांश में सार बातों से परिपूर्ण हैं।*

छोटी छोटी पुस्तिकाएं कितनी प्रकाशित हुई थीं, इस का निर्णय करना कठिन है। हां, उनमें हालवेल, स्काफ़्टन और आईव्स के लेख अधिक उल्लेखनीय हैं। ये सभी लेखक

* इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने के बाद श्रीयुत एस० सी० हिल-द्वारा, संकलित तत्कालीन बहुत से कागज़पत्र "बंगाल इन १७५६-५७" के नाम से प्रकाशित हुए हैं।

समसामयिक दर्शक और कोई कोई तो ऐतिहासिक घटनाओं के नायक ही थे।

ये समस्त प्राचीन ग्रंथ विविध वितंडावाद से परिपूर्ण हैं। इन सब का संग्रह और इनके मतभेदों की यथोचित समालोचना करके, उसके अनुसार, तत्कालीन इतिहास को सङ्कलित करने के लिए प्रभूत अर्थ-व्यय और उत्कट परिश्रम ही की आवश्यकता हो सो नहीं, किन्तु यथेष्ट व्यय, परिश्रम और उद्योग करने पर भी भ्रम और भ्रांतियों के सर्वथा दूर हो जाने की सम्भावना नहीं। ऐसी दशा में सिराजुद्दौला के इतिहास को सङ्कलित करने की चेष्टा नितान्त अनधिकार-चर्चा हुई।

सिराजुद्दौला की कलंक-कहानियां स्वदेश और विदेश में छाई हुई हैं। कलंकों के इतिहास से सर्वसाधारण परिचित हैं। परन्तु कलंकों की सृष्टि का इतिहास वैसा नहीं। हमें संक्षेप में उसका वर्णन करते हुए कर्तव्यानुरोध से स्वदेश और विदेश के अनेक प्रतिभाशाली साहित्य-सेवियों के सुललित वृत्तांतों की समालोचना करनी पड़ी है। इसलिए प्रायः सभी स्थानों पर हम "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्"—इस प्राचीन आज्ञा का प्रतिपालन नहीं कर सके हैं। इतिहास की नींव सत्य पर स्थित है; अतएव इतिहास की मर्यादा रखने के लिए अनेक स्थानों पर व्यथित-हृदय हो हमें अप्रिय सत्य का स्पष्टीकरण करना पड़ा है।

सिराज के कलंक प्रधानतः दो श्रेणियों में विभक्त हैं—प्राचीन और आधुनिक। ये कलंक पुनः दो भागों में विभाजित हैं—लिखित और अलिखित। प्राचीन लिखित कलंकों की संख्या अधिक नहीं। आधुनिक लिखित कलंकों की संख्या ही विशेष

है। परन्तु अलिखित कलंकों के निकट लिखित कलंकों ने हार मानी है। लिखित कलंक इतिहास में सीमाबद्ध हैं। अलिखित कलंकों की कोई सीमा ही नहीं। वे वर्तमान में भी रह रह कर पैदा होते जाते हैं। इन्हीं सब कारणों से आज भी सिराजुद्दौला के नाम को सुनकर हमें रोमांच हो जाता है, और उसके नाम से कलंकों की सृष्टि अथवा उनका रसास्वादन करने के समय सत्य और मिथ्या की आलोचना करने में हम तनिक भी आग्रह प्रकट नहीं करते। जिन महात्मा (मालेसन) के शुभ नाम पर यह क्षुद्र ऐतिहासिक चित्र समर्पित हुआ है, वे बहुत वर्षों तक इस देश के विलुप्त इतिहास के पुनरुद्धार-कार्य में तनमन से नियुक्त रहकर वृद्धावस्था में अब जन्मभूमि के गौरवोज्ज्वल, शान्त-शीतल श्वेतद्वीप में विश्राम-वृत्ति का उपभोग कर रहे हैं। उन्होंने इस देश में रहने के समय बड़ी भारी सहायता की थी, और अब हाल में अपने पूर्व-परिचित इस दरिद्र भारतवासी लेखक को लिख भेजा है कि:—"दुष्ट होने की अपेक्षा सिराजुद्दौला अभागा ही अधिक था !" * कहना पर्याप्त है कि यही निरपेक्ष इतिहास का सत्यानुमोदित सरल सिद्धान्त है। इस ऐतिहासिक चित्र में यह सरल सिद्धान्त कहां तक प्रमाणित हुआ है, पाठकगण स्वयम् इसकी आलोचना करेंगे।

जिन महानुभावों से उपदेश, सहानुभूति एवम् उत्साह प्राप्त करके अतिकाल के उद्योग से 'सिराजुद्दौला' संकलित, मुद्रित और प्रकाशित हुआ, उनका नामोल्लेख करके मौखिक कृतज्ञता प्रकट करना निरर्थक है। भूतपूर्व साधना सम्पा-

---

* "Shirajuddaulah was more unfortunate than wicked !"

दक श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने पहले पहल 'सिराजुद्दौला' को पाठकों के समक्ष उपस्थित किया। 'भारती' की उभय सम्पादिकाओं ने उसे साहित्य-समाज में सुप्रसिद्ध करके पुस्तकाकार प्रकाशित करने का पथ सुगम कर दिया। मिरर-सम्पादक, बंगाली-सम्पादक, अमृतबाज़ारपत्रिका सम्पादक, साहित्य सम्पादक, एजुकेशन-गज़ट के सम्पादक—इत्यादि बंगीय साहित्य-सेवियों ने 'भारती' में प्रकाशित प्रबन्ध को पढ़कर उसके पुस्तकाकार प्रकाशित होने के पहिले ही 'सिराजुद्दौला' के प्रति आदर प्रदर्शित करके विशेष उत्साह बढ़ाया। हम इन सब के निकट चिरकृतज्ञ हैं।

इस ऐतिहासिक चित्र में जिन पुस्तकों का अनुसरण या अनुवाद किया गया है, अथवा जिनकी समालोचना हुई है, उनका नामोल्लेख यथास्थान किया गया है। जो सज्जन इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ें, उन सब के निकट हमारा यह विनीत निवेदन है कि वे यदि इसमें कोई त्रुटि देखें तो उसके संशोधन में सहायता दें। निवेदनमिति।

राजशाही,
आश्विन सम्वत् १६५४ वि०

श्रीअक्षयकुमार मैत्रेय।

# प्रस्तावना ।

श्री अक्षयकुमार मैत्रेय उन भारतीय इतिहासकारों में हैं जो भारतीय इतिहास-सम्बन्धी बहुत से प्रचलित मतों में संदेह करते हैं, और जो स्वयं मौलिक काग़ज़-पत्रों की जांच-पड़ताल करके अपनी स्वतन्त्र सम्मति स्थिर करते हैं।

संसार के प्रत्येक देश की ऐतिहासिक घटनाओं के सम्बन्ध में सम्मतियां परिवर्तित हुआ करती हैं, पुराने मत खंडित हुआ करते हैं, नये मतों का मंडन हुआ करता है। जूलियस सीज़र आज वैसा स्वार्थी, अधिकार-लोलुप और स्वातंत्र्य-विरोधी नहीं माना जाता जैसा एक दो शताब्दी पूर्व माना जाता था। ओलिवर क्रामवेल आज शुद्ध, पवित्र देशहितैषी राजपुरुष गिना जाता है, आज कोई उसे स्वार्थी, क्रूर, हत्यारा और अराजक नहीं मानता जैसा कि साठ सत्तर वर्ष हुए, मैकाले और कार्लाइल के पहिले लोग समझते थे। पुरुषों के चरित्रों के अतिरिक्त, ऐतिहासिक घटनाओं के महत्व, उपयोग, अनुपयोग इत्यादि के विषय में भी मत परिवर्तन हुए हैं और हो रहे हैं। इङ्गलैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों के इतिहास की खोज और जांच-पड़ताल वैज्ञानिक रीति पर सौ दो सौ वर्ष से हो रही है। प्रथम श्रेणी के सैकड़ों विद्वान इसी कार्य में जीवन बिता चुके हैं और बिता रहे हैं। तथापि ऐतिहासिक समस्याओं के अन्तिम निर्णय अभी बहुत दूर हैं।

जब इन देशों के इतिहास की यह अवस्था है तो भारतीय

इतिहास का कहना ही क्या है? यहां प्रायः सारी ऐतिहासिक सामग्री अभी इधर उधर पड़ी हुई है, किसी ने उसका संग्रह-संकलन नहीं किया। जब तक किसी काल से सम्बन्ध रखनेवाले काग़ज़-पत्र इत्यादि का यथोचित संग्रह और संकलन न किया जाय तब तक उस काल का प्रामाणिक इतिहास नहीं लिखा जा सकता। सामग्री की इस असंतोषजनक अवस्था में जिन लोगों ने इतिहास-लेखन का साहस किया वे भी अपने कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त न थे। वे सुशिक्षित थे, बुद्धिमान थे, संसार की गति और मनुष्य के स्वभाव का पूरा अनुभव रखते थे, पर इतिहास का अध्ययन उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य नहीं था, इतिहास के अध्ययन में उनका अधिकांश समय व्यतीत न होता था। प्रायः कामकाजी पुरुष कार्य के पश्चात् शरीर और मन को स्वस्थ करने के लिए कोई मनोरंजक कार्य किया करते हैं। इङ्गलैंड के सुप्रसिद्ध प्रधान मंत्री मि० ग्लैडस्टन होमर के काव्यों की समालोचना किया करते थे। एक बार जब डाक्टरों ने उनसे कहा कि आपका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ रहा है, आप कुछ दिन पूर्णतया मानसिक विश्राम कीजिये तब वह थोड़े दिन के लिए राजनैतिक कार्य छोड़ तुर्की भाषा का व्याकरण लेकर तुर्की भाषा सीखने लगे। बहुत से लोग टैनिस, पोलो आदि खेलों अथवा शिकार खेलने या योंही सौ पचास मील घूमने से, अपने को स्वस्थ कर लेते हैं। बहुत से लोग उपन्यास, काव्य इत्यादि पढ़ कर चित्त को हराभरा कर लेते हैं। कुछ विशाल मस्तिष्कशाली पुरुष वही काम इतिहास-लेखन आदि साहित्यिक कार्यों से निकालते हैं। भारतीय सिविल-सर्विस के कतिपय विद्याप्रेमी सज्जनों ने भारतीय

इतिहास-लेखन के द्वारा अपना मनोरंजन किया है। निस्संदेह, एलिफ़न्स्टन, सर विलियम हंटर, विसेंट ए० स्मिथ आदि कई महानुभावों ने सच्चे इतिहास-प्रेम से प्रेरित होकर इतिहास लिखा है, और इतिहास-निर्माण को अपने जीवन के लक्ष्यों में से एक प्रधान लक्ष्य माना है। हम मुक्तकंठ से उनकी प्रशंसा करते हैं, और हृदय से उनकी सेवाओं के कृतज्ञ हैं। पर भारतीय इतिहास के अधिकांश लेखकों के विषय में हमारा उपर्युक्त कथन लागू है। व्यक्तिगत दृष्टि से इन लोगों के लिए यह यश और सम्मान की बात है कि अन्य कार्यों में व्यग्र रहने पर भी उन्होंने इतिहास के लिए परिश्रम किया, पर इस प्रकार के द्विविध परिश्रम से कभी कभी सच्चे इतिहास की हत्या हो जाती है।

भारतीय इतिहास को बिगाड़ने के लिए ये दो बातें ही पर्याप्त थीं, पर एक तीसरी बात ने उसे और भी बिगाड़ दिया। अर्वाचीन इतिहासकारों के गुरु वानरांके निष्पक्षता—पूर्ण निष्पक्षता—और रागद्वेष से मुक्ति के लिए सदा बहुत आग्रह किया करते थे। निष्पक्षता की दुहाई देना तो बहुत सरल है, निष्पक्षता की प्रशंसा के गीत गाना बहुत सरल है, पर निष्पक्षता का प्रकृत व्यवहार करना अत्यन्त कठिन है। रांके आदि कुछ इने गिने इतिहासकारों को छोड़कर, शेष सभी कहीं न कहीं रागद्वेष के वशीभूत दीख पड़ते हैं। मैकाले, कार्लाइल, फ्रूड, फ्रीमैन, डीअर, लैनफ्रे, टेन, ट्रशिके आदि बड़े बड़े सुप्रसिद्ध इतिहासकारों की रचनाएँ भी अनुचित पक्षपात से रिक्त नहीं हैं। जब महापुरुषों का यह हाल है तो छोटे आदमियों का कहना ही क्या है? फिर, यदि उन छोटे आदमियों के मन में पहले ही से सजातीय अभिमान

और परजाति के प्रति अपमान के भाव भरे हों तो स्थिति निस्संदेह बड़ी चिन्ताजनक हो जाती है। उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय साहित्य में—काव्यों, उपन्यासों, नाटकों, इतिहासों जीवनचरित्रों में—आपको एशियावासियों के प्रति अपमान-सूचक चिह्न दृष्टिगोचर हो जाते हैं। एशियावासी असभ्य हैं, अर्द्ध-सभ्य हैं, सभ्यता की बहुत नीची श्रेणी में हैं, अथवा उनकी सभ्यता यूरोपीय सभ्यता के सामने कोई चीज़ नहीं—इस प्रकार के भावों की झलक सर्वत्र प्रतीत होती है। भारत में इस भाव के साथ विजित और विजेता के सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाला अपमान-अवहेलना का भाव भी बहुत से इतिहास-ग्रन्थों को कलुषित करने के लिए आ गया।

इस अवस्था में यह सुनकर किसी को आश्चर्य न करना चाहिये कि भारतीय इतिहास की बहुत सी घटनाओं के विषय में, भारतीय इतिहास के बहुत से पात्रों के विषय में, अनेक भ्रान्तियां प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ, अठारहवीं शताब्दी में सिराजुद्दौला के शत्रुओं ने उसके विषय में जो कथन किये वे अब तक इतिहास-ग्रन्थों में, बिना समीक्षा के, प्रमाण-रूप से दुहराये जाते हैं। अपने समकालीन पुरुषों के विषय में निष्पक्ष मत स्थिर करना बहुत कठिन होता है। फिर, शत्रुओं के विषय में ठीक ठीक मत स्थिर करना, यदि सर्वथा असम्भव नहीं तो, अत्यन्त कठिन अवश्य है। सच्चे इतिहास-कार का कर्तव्य है कि वह उन मतों की बहुत परवा न करे जो समकालीन मित्रों ने और विशेषतः समकालीन शत्रुओं ने किसी ऐतिहासिक पुरुष के विषय में प्रकट किये थे। उसको तो सब घटनाओं की, सब तथ्यों की, खोज करके स्वयम् अपनी स्वतंत्र, निष्पक्ष सम्मति स्थिर करनी चाहिये।

बाबू अक्षयकुमार मैत्रेय ने सिराजुद्दौला के जीवन की समालोचना में ऐसा ही करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि सिराजुद्दौला वैसा मूर्ख, क्रूर, दुराचारी और पापी नहीं था जैसा कि उसके समकालीन भारतीय और अंग्रेज़ शत्रु उसे समझते थे, अथवा यों कहिये कि जैसा वे उसे बदनाम करने के लिए कहते थे। इतिहासकारों ने यथोचित समीक्षा के बिना ही इन कथनों को सत्य मानकर अपने ग्रन्थों में स्थान दे दिया है। बाबू अक्षयकुमार की पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् कोई यह कहने का साहस न करेगा कि सिराजुद्दौला निरा नर-पिशाच था। वह दोष-रहित न था, उसका व्यक्तिगत जीवन पाप से सर्वथा शून्य न था, उसका सार्वजनिक जीवन भारी भूलों से रिक्त न था, पर वह निरा मूर्ख या धूर्त भी न था।

सिराज के जीवन की समालोचना में बाबू अक्षयकुमार ने कलकत्ते की कालीकोठरी के हत्याकांड की भी समीक्षा की है। लड़कपन से हम लोग पढ़ते आते हैं कि कलकत्ते का पतन होने पर १७५६ ई० के जून मास की एक रात को सिराजुद्दौला के अनुचरों ने थके मांदे १४६ अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषों को एक छोटी सी कोठरी में बन्द कर दिया। सवेरे जब द्वार खोला गया तो केवल २३ अधमरे मनुष्य बाहर निकले। इस कहानी की सत्यता में लोगों का ऐसा विश्वास रहा है कि अंग्रेज़ी एवं भारतीय भाषाओं में कालीकोठरी एक सुपरिचित कहावत हो गई है। पर, कोई पचीस वर्ष हुए, तत्कालीन काग़ज़-पत्रों और इतिहास-ग्रन्थों के अवलोकन से बाबू अक्षयकुमार को इस भयंकर कहानी की सत्यता में सन्देह उत्पन्न हुआ। उन्होंने देखा कि इस कहानी का मुख्य स्रोत कलकत्ता-कौंसिल के

सदस्य मि० हालवेल का, १७६० ई० का लिखा हुआ, सुप्रसिद्ध वर्णन है। हालवेल अपने समय में झूठा और कपटी प्रसिद्ध था। क्लाइव प्रभृति तत्कालीन सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ों ने उसकी निन्दा और भर्त्सना की है। उसने सिराज के नाना अलीवर्दी ख़ां का व्याख्यान, अपनी कल्पना से गढ़कर, सर्व-साधारण के समक्ष रख दिया था, उसने सिराज के उत्तरा-धिकारी मीरजाफ़र पर झूठे अभियोग लगाये थे, उसने अपनी कल्पना के बल से एक पूरा ग्रन्थ ही रच डाला था, और उसे हिन्दुओं की पवित्र पुस्तक के नाम से प्रसिद्ध कर दिया था। यदि ऐसा मनुष्य कालीकोठरी की कहानी गढ़ ले, और उसे सत्य कह के प्रकाशित कर दे तो आश्चर्य ही क्या है?

कालीकोठरी के पहले ही कलकत्ते का पतन हो चुका था। स्वयम् हालवेल और अन्य पुरुषों ने लिखा है कि कलकत्ते के क़िले में एक तो यों ही बहुत अधिक मनुष्य न थे, फिर उनमें भी बहुत से पलटा को भाग गये, और शेष प्राणियों में से अधिकांश कलकत्ते की रक्षा करते करते धराशायी हुए। फिर, कालीकोठरी में बन्द करने के लिए १४६ प्राणी कहां से आ गये? स्वयं हालवेल ने लिखा है कि सिराज ने भरे दर्बार में मुझे आश्वासन दिया कि तुम लोगों को कोई क्षति न पहुँ-चाई जायगी। फिर, सिराज के नौकरों को सिराज की आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस कैसे हुआ? हालवेल लिखता है कि रात्रि में जब हम लोगों ने नौकरों से अनुनय-विनय की कि दर्वाज़ा खोल दो, और घूंस भी देनी चाही, तब उन्होंने कहा कि नवाब साहब सो रहे हैं, उनको जगाने का साहस कोई नहीं कर सकता, और उनकी आज्ञा के बिना दर्वाज़ा नहीं खुल सकता। नवाब को नींद से जगाने का साहस जिनको नहीं

हो सका उनको भरे दर्बार में दिये हुए आश्वासन को भंग करने का साहस कैसे हुआ ? जब नवाब ने कालीकोठरी में बन्द करने की आज्ञा ही न दी थी तो द्वार खोलने के लिए उसकी आज्ञा की आवश्यकता क्यों हुई ?

हालवेल ने कालीकोठरी के भीतर के दृश्य का वर्णन इस प्रकार लिखा है कि मानों वह अपने दुःख के साथियों के अंग प्रत्यंग अच्छी तरह देख रहे थे। अमुक मनुष्य अमुक स्थान पर था, खिड़की के पास था, अथवा खिड़की का जंगला पकड़े हुए था, खिड़की से कुछ दूर था, अमुक मनुष्य दूसरे के कंधे पर बैठा हुआ था, या पृथ्वी पर बेहोश पड़ा था, अमुक मनुष्य ने अमुक समय पर प्राण विसर्जन किये, इत्यादि। माना कि हालवेल स्वयं कालीकोठरी में था, पर इन सब कृत्यों को देख सकने के लिए प्रकाश की आवश्यकता है। रात्रि का अन्धकार छाया हुआ था, छोटी सी कोठरी थी, वह भी खचाखच भरी थी! मेकाले ने लिखा है कि जब नवाब के नौकर बाहर से उन्हें देखना चाहते थे तो खिड़की पर मशाल लगा कर उन्हें देखते थे। यदि नवाब के नौकर बिना मशाल के कोठरी के भीतर कुछ न देख सकते थे तो हालवेल ने सारी छोटी छोटी बातें भी कैसे देख लीं ?

हालवेल ने वर्णन इस ढंग से लिखा है कि उससे उनकी महिमा बहुत बढ़ जाती है। उनको कभी घबड़ाहट नहीं हुई, स्वार्थ-परायणता ने उनको वशीभूत नहीं किया, कालीकोठरी के सारे प्राणी अपने को भूल गये, स्वयं उनका मन स्वस्थ रहा। क्या यह सन्देह उत्पन्न करनेवाली बात नहीं है ?

यदि वास्तव में कालीकोठरी का हत्याकांड घटित हुआ तो तत्कालीन पत्र-व्यवहार में उसका उल्लेख क्यों नहीं है ?

अंग्रेज़ी कम्पनी की ओर से उसका वर्णन क्यों नहीं प्रकाशित किया गया? सिराजुद्दौला से अंग्रेज़ों ने और सब बातों के लिए हर्जाना मांगा तो वह अपने १२३ बंधुओं की बात कैसे भूल गये? सिराजुद्दौला से, और कुछ दिन के पश्चात् मीर-जाफ़र से, उन्होंने जो संधियां की उनमें इस रोमांचकारी घटना का उल्लेख क्यों नहीं मिलता? कहा जाता है कि कालीकोठरी का समाचार पाने पर मद्रास के अंग्रेज़ों ने शोक और क्रोध के वशीभूत हो बंगाल को सेना भेजी, पर मद्रास-कौंसिल की कार्रवाइयों में कालीकोठरी का उल्लेख ही नहीं है। वहां तो कलकत्ते के पतन की बातचीत हो रही है, और उस पर पुनः अधिकार करने की तजवीज़ हो रही है, कलकत्ते की लूटमार का पूरा पूरा हर्जाना वसूल करने के प्रस्ताव हो रहे हैं। हत्याकांड कहां है?

बदला लेनेवाली सेना दो भागों में विभक्त थी—एक तो जल-सेना, जिसके अध्यक्ष वाट्सन थे, दूसरी स्थल-सेना, जिसके अध्यक्ष क्लाइव थे। इन दोनों के उस समय के पत्र-व्यवहार में हत्याकांड का उल्लेख नहीं है।

यह तो रही अंग्रेज़ों के काग़ज़-पत्रों की बात। उस समय के भारतीय इतिहासकारों ने भी अपने इतिहासों में इस हत्या-कांड का उल्लेख नहीं किया। हिन्दुओं में पहले इतिहास-लेखन की प्रथा बहुत कम प्रचलित थी, पर मुसलमान सदा से इतिहास, और बहुत उच्च श्रेणी के इतिहास, लिखते आये हैं। १८वीं शताब्दी में भी उन्होंने 'सैरुल मुतख़रीन' के रचयिता नवाब गुलामहुसेन ख़ां, और 'रियाज़ुस्सलातीन' के रचयिता गुलामहुसेन सलीम आदि कई अच्छे इतिहासकार उत्पन्न किये। ये सिराजुद्दौला के लगभग समकालीन थे। इन्होंने उसके

समय का इतिहास लिखा, पर कालीकोठरी का नाम तक नहीं लिया। १७६३ ई० में मीरक़ासिम ने पटने में अंग्रेज़ों की जो हत्या की थी उसका वर्णन गुलामहुसेन ख़ां ने विस्तारपूर्वक किया है। उसने मीरक़ासिम की भर्त्सना और अंग्रेज़ों की वीरता और सहनशक्ति की प्रशंसा की है। १७५६ ई० के कलकत्ता-पतन का वर्णन भी उसने विस्तार से किया है, और कलकत्ते के क़िले की रक्षा करनेवाले अंग्रेज़ों की मुक्तकंठ से ऐसी प्रशंसा की है जैसी किसी अंगरेज़ इतिहासकार ने भी नहीं की। परन्तु वह कालकोठरी के विषय में बिलकुल चुप क्यों है?

इन बातों से बाबू अक्षयकुमार ने यह निष्कर्ष निकाला कि कालीकोठरी का हत्याकांड कभी घटित ही नहीं हुआ, वह हालवेल की गढ़न्त मात्र है। कोई पचीस वर्ष हुए, अपने मत का प्रतिपादन करने के लिए उन्होंने बंगला में एक पुस्तक लिखी। पुस्तक ने बहुत से बंगालियों के पुराने विचार बदल दिये, पर अंग्रेज़ी भाषा में न होने के कारण उसके सिद्धान्त यूरोपीय विद्वानों तक न पहुंच सके।

कोई चार वर्ष हुए, मि० जे० एच० लिटिल ने इस विषय पर कुछ लेख लिखे, और हत्याकांड की असत्यता प्रमाणित करने की चेष्टा की। कलकत्ता ऐतिहासिक समिति (The Calcutta Historical Society) के मुखपत्र "वर्तमान और भूतकालिक बंगाल (Bengal Past and Present) में भी उन्होंने एक बड़ा लेख लिखा, जिसने प्रायः समस्त विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया।* मि० लिटिल की युक्तियां बहुत करके वही

---

* जुलाई—सितम्बर सन् १९१५ का Bengal Past and Present जिल्द ६, भाग १, नं० २१ देखिये।

हैं जो बाबू अक्षयकुमार की। उन्होंने मौलिक पत्रों से प्रमाण, अवतरण आदि अधिक दिये हैं, और तीक्ष्णतापूर्वक हालवेल के वर्णन की आन्तरिक समालोचना की है।

बाबू अक्षयकुमार और मि० लिटिल के मत के विरोधियों ने दो बातों पर अधिक ज़ोर दिया। एक तो यह कि कालीकोठरी का वर्णन हालवेल के वर्णन के अतिरिक्त सेक्रेटरी मि० कुक और कैप्टन मिल्स ने भी किया है। हालवेल ने जो कहानी रची वही दो और व्यक्तियों ने कैसे रच डाली। यदि कहिये कि तीनों ने मिलकर गढ़न्त की तो उनके वर्णनों में थोड़ा थोड़ा अन्तर कहां से आगया। बात यह है कि तीनों वर्णन मुख्य मुख्य बातों में बिलकुल मिलते जुलते हैं, केवल छोटी छोटी बातों में एक दूसरे से भेद रखते हैं। यदि तीनों ने मिलकर गढ़न्त की होती तो तीनों के वर्णन छोटी बड़ी सभी बातों में एक होते, कुछ भी भेद न होता। छोटे छोटे भेदों से तो यही अनुमान होता है कि तीनों ने स्वतन्त्र रूप से उस दुर्घटना का वर्णन लिखा जो दुर्भाग्य से उन्हें सहनी पड़ी थी। बहुधा देखने में आता है कि जब अनेक पुरुष अपनी आंखों देखी एक ही घटना का वर्णन करते हैं तब भी वर्णनों में थोड़ा थोड़ा अन्तर रह जाता है। इसी प्रकार हालवेल, कुक और मिल्स के वर्णनों में थोड़ा अन्तर रह गया है।

दूसरी बात यह कि यदि इन लोगों ने झूठी कहानी रची तो इसका अभिप्राय क्या था? इससे उनके किस स्वार्थ की सिद्धि होती थी? अकारण ही जनता में भ्रम फैलाने के लिए वे इतना उद्योग क्यों करने लगे? जैसा कि एक अंग्रेज़ अध्यापक ने, २४ मार्च १९१६, को "कलकत्ता ऐतिहासिक समिति" के अधिवेशन में कालीकोठरी के वाद-विवाद में कहा

था कि जबतक मि० लिटिल संतोष-जनक रूप से यह सिद्ध न करदें कि झूठी कहानी रचने में इन लोगों का, और विशेषतः हालवेल का, अमुक प्रयोजन था, या अमुक स्वार्थ सिद्ध होता था तबतक हम मि० लिटिल के मत को स्वीकार नहीं कर सकते।

ऊपर जिस वाद-विवाद का उल्लेख किया गया उसमें मि० लिटिल ने इन आक्षेपों का उत्तर इस प्रकार दिया कि हालवेल-द्वारा कहानी के प्रचलित हो जाने के पश्चात् कुक और मिल्स ने उसे अपना लिया, और स्वानुभूत घटना के तौर पर प्रकाशित कर दिया। हालवेल का मुख्य प्रयोजन यह था कि वह इंगलैंड के निवासियों में भारतीयों के प्रति कुछ द्वेषभाव और ईस्ट-इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों की ओर सहानुभूति उत्पन्न कराना चाहता था। मि० लिटिल ने उत्तर तो दिया, पर इन दोनों बातों के विषय में अभी अधिक अन्वेषण की आवश्यकता है।

सच पूछिये तो यद्यपि कालीकोठरीवाले वाद-विवाद पर अभी अन्तिम शब्द नहीं कहा गया है—उसका अन्तिम निर्णय अभी नहीं हुआ है—तथापि यदि हम निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकते कि हत्याकांड घटित नहीं हुआ तो निश्चयपूर्वक यह भी नहीं कह सकते कि वह घटित हुआ।

बाबू अक्षयकुमारजी ने इस विषय का विस्तृत विवेचन किया है। उनके ग्रन्थ की शैली और भाषा बड़ी आवेशपूर्ण है; पर उसकी मनोरंजकता और लोकप्रियता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। इतिहास-लेखन-कला के अर्वाचीन आचार्यों की प्रवृत्ति यह है कि आवेशपूर्ण शैली या भाषा का प्रयोग न करना चाहिये। उनके मतानुसार इतिहास लिखने में सदा शान्ति और विरक्ति से काम लेना चाहिये। वानरांके

के ग्रन्थों में ये गुण आपको मिलेंगे। वहां कोई जोश नहीं है; प्रेम की छाया नहीं है, क्रोध का आभास नहीं है। अक्षयकुमार-जी की शैली इससे भिन्न है। सम्भव है, कुछ लोग उसे अच्छी समझें, और कुछ नहीं। जो हो, वह कहीं कहीं अर्वाचीन वैज्ञानिक इतिहास-लेखन-पद्धति से दूर चली गई है।

मूल पुस्तक बंगला में है। बंगाल के बंगला और अंग्रेज़ी पत्रों—"अमृतबाज़ार-पत्रिका" "बंगाली" "प्रवासी" "भारती" आदि—ने इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। गत १९१६ ई० में, संशोधित एवम् परिवर्द्धित रूप में, इस पुस्तक का चतुर्थ संस्करण प्रकाशित हुआ है। हर्ष की बात है कि हिन्दी-भाषा-भाषियों के लाभार्थ "अभ्युदय" प्रेस से उसका यह हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। अनुवाद पं० भगवानदीन जी पाठक ने बड़े परिश्रम और ऐसी खूबी से किया है कि पढ़ने में मूल पुस्तक का सा आनन्द आता है। महामान्य गटे ने कहा है कि एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना बहुत कठिन कार्य है, और उसमें अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। शब्दों के पर्यायवाची शब्द ढूंढकर लिख देना सरल है, पर उन स्मृतियों को उत्पन्न करना, जिनके कि वे शब्द मूल भाषा में उद्बोधक हैं, सरल कार्य नहीं है। पाठकजी के अनुवाद के विषय में बिना अत्युक्ति के हम यह कह सकते हैं कि उसकी भाषा हिन्दी-पाठकों के हृदय में वही भाव उत्पन्न करेगी जो बंगला की मूल पुस्तक के पाठकों के हृदय में। *

मैत्रेय जी में किसी पक्ष-विशेष के प्रति द्वेष या भेद-भाव नहीं है। उन्होंने अत्यन्त श्लाघनीय रीति से न्याय का पक्ष

---

* अंगरेज़ी-नोटों के अनुवाद में जिन सहृदय मित्रों ने मुझे सराहनीय सहायता दी है उनका मैं परम कृतज्ञ हूं। अनुवादक।

लेकर सत्यासत्य का विवेचन किया है। पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ जाने पर हृदय में एक अपूर्व चित्र सा खिंच जाता है, और यह जानकर हर्ष एवम् आश्चर्य होता है कि भविष्य में ब्रिटिश छत्र के अन्तर्गत पहुंच कर भारतवर्ष को कैसे कैसे विकराल बखेड़ों से शान्ति मिली, और देश की विकट आत्मकलह किस प्रकार विलीन हो गई! एतद्देशीय विविध जातियों के पारस्परिक वैर-विद्वेष का अभिनय सा दिखाकर ग्रन्थ को समाप्त करते हुए लेखक ने निम्न वाक्यों में भारत-भूमि के रंगमंच पर ब्रिटिश साम्राज्य का चित्रपट उद्घाटित किया है—

"आज वह दिन नहीं है। मुग़ल और पठान केवल "क्रीड़ापट" में विराज रहे हैं। हमारे कल्याण के लिए इंगलैंड और इंगलैंड का गौरव बढ़ाने के लिए हम, इन दोनों विशाल जातियों ने एक ही अखंड राजतंत्र की छाया में खड़े होकर, परस्पर एक दूसरे के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी हो, बाहु से बाहु मिलाकर गौरवान्वित नवयुग में पदार्पण किया है। यह बाहु-बन्धन सुदृढ़ हो, यह सहकारिता प्रीतिप्रद हो, यह अभिनव सम्बन्ध चिरस्थायी हो। यही इस समय इङ्गलैण्ड और भारतवर्ष की सम्मिलित प्रार्थना है।"

वास्तव में हमें मुक्तकण्ठ से स्वीकार करना पड़ता है कि पुस्तक बड़ी ही रोचक और मनोरंजक है। आशा है कि हिन्दी-संसार इसका आदर करेगा।

"सत्येन्द्र"।

# सूचीपत्र ।

# सिराजुद्दौला।

## पहला परिच्छेद।

### उस समय का सुख-दुःख।

नवाब सिराजुद्दौला के नाम से सर्वसाधारण भली भांति परिचित हैं। यद्यपि वह बहुत थोड़े दिन बंगाल, विहार और उड़ीसा के राजसिंहासन पर आसीन रहे तथापि उन थोड़े ही दिनों में वह अपने नाम को देश और विदेश में चिरस्मरणीय कर गये।

अङ्गरेज़ों ने एक बार अपने देश के एक हतभाग्य नरेश का वलिप्रदान किया था। घातक की तेज़ तलवार ने जिस समय राजा के सर के दो टुकड़े किये, उस समय रक्त की प्यासी जनता ने उन्मत्त पिशाच की भांति भैरवनृत्य कर तालियां बजाते हुए देश में कुछ दिन के लिए प्रजातंत्र-शासन संस्थापित किया था! परन्तु उस समय भी सारे देश में असमर्थ किसानों की कुटियों से लेकर अमीरों की हवेलियों, महलों और क़िलों तक में हाहाकार मचा था! कितने ही कृषक, कितने ही सैनिक, कितने ही प्रतिष्ठित परिवार शोक से गहरी सांसें छोड़ रहे थे! बङ्गालियों ने जिस समय विविध षड्-यन्त्रों के द्वारा सिराजुद्दौला को घर से निकाला, और मीरन

की निरंकुश आज्ञा से जब उसका सर धड़ से विलग हुआ, तब देश के राजा और प्रजा सब ने मिलकर विश्वासघातक मीरजाफ़र को गद्दी पर बैठाया, और उसी के कृपाकटाक्ष की आशा और प्रतीक्षा के आश्रित बन गये; सिराज के शोचनीय परिणाम के विषय में किसी ने एक बूंद आंसू गिराने का भी अवसर न पाया।

अब यह सब बातें पुरानी हो चुकीं। देश की स्थिति अब वैसी नहीं, लोगों में अब वह तीव्र प्रतिहिंसा और भीषण मारकाट नहीं है। सिराज और उसके समकालीन राजा-प्रजा सभी इस लोक से कूच कर गये। आशा है कि अब इस देश के अधिवासी यथार्थ और निष्पक्ष भाव से सिराज के चरित्र की आलोचना करने का अवसर पायेंगे।

सिराजुद्दौला नहीं है, उसके समय में जो बङ्गाल था वह बङ्गाल भी अब नहीं। जिस बङ्गाल को भारतवर्ष के मुग़ल सम्राट्, अकबर और औरङ्गज़ेब, अपने आज्ञापत्रों में "मानव-जाति की स्वर्गभूमि" लिखा करते थे, वह बङ्गाल इस समय अपने गौरव से गिर, अपने सर्वस्व को खोकर कङ्गाल-भूमि बन गया है। अब यहां न वह शिल्प है, न वाणिज्य; अब यहां के अधिवासी न राजा हैं, न मन्त्री; न उन्हें राजत्व का पद ही प्राप्त है; न मन्त्रित्व का गौरव। ज़मींदारों में जीवन-मरण की अब वह विचार-शक्ति नहीं; सारा बाहु-बल एवं रण-चातुर्य आज भूतकाल के इतिहास की कहानियों ही में शेष रह गया है। सिराजुद्दौला जिस समय का आदमी था, आज वह समय बहुत दूर जा चुका।

एक समय था, जब इस देश में मुसलमानों का कहीं नाम निशान भी न था। सारे भारतवर्ष में केवल हिन्दू निवासियों

के शंख और घंटों की आवाज़ें गूंज रही थीं। किन्तु यह बहुत दिनों की बात है। उस समय का चित्र अब इतना प्राचीन, इतना जराजीर्ण और इतना अस्पष्ट हो गया है कि आज भली प्रकार उसके सौन्दर्य पर विचार करने का कोई उपाय नहीं। अब तो एक ज़माना हो चुका, जबसे यह देश हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ही की जन्मभूमि है। गांव गांव और नगर नगर में बहुत दिनों से हिन्दू और मुसलमान कन्धे से कन्धा मिलाकर जीवन-संग्राम में जन्मभूमि की रण-पताका ले जा रहे हैं। सिराजुद्दौला के समय में हिन्दू मुसलमानों के बीच धार्मिक भेदभाव था; परन्तु पद, अधिकार, मान और गौरव की दृष्टि से एक दूसरे में कोई अन्तर न था। मुसलमानों का पहिनावा, मुसलमानों का शिष्टाचार, आवश्यकता से अधिक सौजन्यता से भरी हुई मुसलमानों की धारावत् प्रवाहित, सुन्दर वाक्यों से सुसज्जित, कर्णमधुर एवं परिमार्जित फ़ारसी भाषा और पदवी-सूचक यावनिक उपाधियों का हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बड़े गौरव के साथ समान भाव से व्यवहार करते थे।

दिल्ली का बादशाह नाममात्र को बादशाह था; बङ्गाल का नवाब ही वास्तव में बङ्गाल का 'विधाता' हो रहा 'था। नवाब के दरबार में हिन्दू और मुसलमानों का समान आदर था। वहां न आसन की पृथक्ता थी, न उनके अधिकारों में कोई अन्तर था, बल्कि अनेकांश में हिन्दुओं को विशेष प्राधान्य मिल रहा था। विलास-प्रिय मुसलमान अमीर प्रायः विषय-भोग और आहार-विहार ही में व्यस्त रहते थे; अतएव शासन में विशेषतः हिन्दुओं ही का हाथ था। अधिकांश हिन्दू ही राजा, मन्त्री, कोषाध्यक्ष, सेनानायक

आदि उच्च पदों पर प्रतिष्ठित रहकर बुद्धि-बल, शासन-चातुर्य एवं अपने बाहु-विक्रम की बदौलत बङ्गाल के भाग्य-विधाता हो रहे थे।

मुसलमान नवाब अपने को बङ्गाली कहकर परिचय देने में तनिक भी लज्जित नहीं होते थे। बङ्गाल ही उनका स्वदेश और बङ्गाली जाति ही उनकी स्वजाति बन गई थी। राजकोष का सारा धन बङ्गाल ही में संचित रहता था। जो व्यय होता था वह भी कुछ तो पदार्थों के विनिमय से और कुछ मिहनत मज़दूरी के बदले में कौड़ी गंडे से सब का सब देशवासियों ही के हाथ में आ जाता था। देश का रुपया देश में रहता था, सात समुद्र पार सदा के लिए किसी दूर देश में नहीं चला जाता था।

एक दिन वह था, एक आज है। उस समय के विलुप्त इतिहास की आलोचना करने के लिए भूतकाल के स्वप्न-समुद्र को पार करके उस ज़माने की राजकीय स्थिति के वास्तविक चित्रपट के सामने हमें खड़ा होना पड़ेगा, और उसी समय की स्थिति के अनुकूल अपने को बनाकर, उसी समय की आंखें और उसी समय के प्राणों को लेकर हम उस समय के इतिहास का अध्ययन करेंगे। वह इतिहास केवल सिराजुद्दौला ही के हतभाग्य जीवन की मर्म-वेदनाओं का इतिहास नहीं है, बल्कि हमारे पूजनीय पूर्वजों के सुख-दुःख का इतिहास है।

सिराजुद्दौला के ज़माने में बङ्गाल १३ प्रान्तों और १६६० पर्गनों में विभाजित था। यह पर्गने ज़मींदारों के अधिकार में थे। वे लोग अपने ही बाहुबल से अपने राज्य की रक्षा और न्याय-अन्याय की व्यवस्था के द्वारा दुष्टों का दमन और शिष्टों

का पालन करते थे। यथासमय नवाब-सरकार को नियत राजकर पहुंचा देने पर उनकी स्वाधीन शक्ति के चढ़ते हुए प्रताप में कोई बधा डालना नहीं चाहता था। प्रत्येक प्रान्त का शासक एक हिन्दू अथवा मुसलमान होता था, जिसे फ़ौजदार कहते थे। ये फ़ौजदार लोग यथासमय राजकर संग्रह करने में सहायता देने के अतिरिक्त आभ्यंतरिक शासन में कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करते थे। गंगा और ब्रह्मपुत्र से देशी व्यापारियों की वाणिज्य-वस्तुएं आती जाती थीं। व्यापार में विजयी और पराजित जातियों से व्यापारीय कर एक समान लिया जाता था। कभी कभी नियत समय पर नवाब लोग अपने अमीर वज़ीरों को साथ लेकर दरबार भी करते थे, परन्तु आभ्यंतरिक शासन के कामों पर विचार करने का मौक़ा उन्हें प्रायः नहीं मिलता था। जगत्-सेठ के इतिहास-प्रसिद्ध महल के चौक में टकसाल थी, वहीं बादशाह के नाम के सोने एवं चांदी के सिक्के बनाये जाते थे। पर्गनों के अधिकारी ज़मींदार लोग जगत्-सेठ के कोषागार में राजकर का रुपया पहुंचा कर रसीद ले लेते थे, और कभी कभी शिष्टाचार के अनुकूल नवाब से मिलने के लिए ये लोग दरबार में आते और चपकन पहिर पगड़ी बांध ज़ानू गिराकर मुसल्मानी प्रथा के अनुसार नवाब के दरबार में समासीन होते थे।

यह नहीं कि उस समय देश में अत्याचार और अविचार था ही नहीं, बल्कि प्रायः देश में भयानक अराजकता उपस्थित होती थी। परन्तु बात यह थी कि उस अराजकता से ज़मींदार और महाजन कितने ही उत्पीड़ित क्यों न हों, किसानों की कुटियों को उसका छाया-स्पर्श भी नहीं होता

था। वे निर्द्वन्द रहकर अपनी खेतीबारी का काम करते और समय पर हल चलाकर अन्न पैदाकर अपने परिवार के साथ यथासम्भव बेखटके जीवन बिताते थे। देश में चोर और डाकुओं के अत्याचारों का भी अभाव न था; परन्तु साथ ही सर्वसाधारण देशनिवासियों को हथियारों के व्यवहार की मनाही न थी; प्रतिष्ठित परिवारों के युवक भी लाठी, तलवार का चलाना जानते थे। चोरों, डाकुओं का उपद्रव होने पर गांव के लोग दल बांध, रात्रि को जाग, मशालें जला, लाठियों और तलवारों के हथकंडे घुमा एवं बर्छे चलाकर अपनी रक्षा करते थे। यदि चोर या डाकू पकड़ लिये गये तो गावों ही के दस आदमी मिल कर उन्हें भली प्रकार यथोचित दण्ड दे विचार-कार्य को भी समाप्त कर डालते थे।

अतएव जैसा दुःख था वैसाही सुख भी था। आजकल चोर और डाकुओं के उत्पात होने पर कोई किसी की सहायता करने को घर से बाहर नहीं निकलता। असहाय गृहस्थ अपने घरों में हाहाकार मचाते रहते हैं, कोई सुनता ही नहीं! डाकू लोग उनका सर्वस्व लूटकर और उनकी सारी इज़्ज़त ख़ाक में मिलाकर धीरे धीरे टहलते टहलते जब दूर निकल जाते हैं, तब विचारा गृहस्थ घर से निकलकर लोगों को अपनी विपत्ति सुनाता और थाने में जाकर पुलीस को रपट देता है। अवकाश के अनुसार थाने से दारोग़ा, मुंशी, कान्सटेबिल, चौकीदार इत्यादि के पधारने पर गृहस्थ विचारा घबराकर एक हाथ से आंखों के आंसू पोंछता है और दूसरे हाथ से उन लोगों का यथायोग्य सत्कार करने एवं मान-मर्यादा स्थिर रखने के लिए महाजन के पास से ऋण लेने जाता है। डाकू पकड़े जायं या न पकड़े

जायं, सन्देह का शिकार होकर अनेक निरपराध निर्धनों को व्यर्थ ही कठोर दण्ड और तीव्र आघात सहने पड़ते हैं! कभी कभी तो दावे ही को झूठा बताया जाता है, और उलटे अभियोग में विचारे गृहस्थ ही को स्वयम् कारागार की कराल विडम्बनाएँ भोगनी पड़ती हैं। उस समय में न्याय-व्यवस्था के लिए सूक्ष्म यंत्र नहीं थे, परन्तु किसी को भी इस प्रकार की विचार-विडम्बना नहीं सहनी होती थी।

बहुत सी बातों में सुविधाएँ थीं, किन्तु अनेक विषयों में अड़चनें भी थीं। पथ और घाट नहीं थे, शीघ्र-गमन की सुविधाएं न थीं, ख़ैराती शफ़ाख़ाने और बिना मूल्य औषधियां वितरण करनेवाले औषधालय नहीं थे; परन्तु लोग समृद्धिशाली, बलवान और आरोग्य थे। हा अन्न! हा अन्न! करते हुए विदेशों में जाकर ठोकरें खाने की उन्हें आवश्यकता न थी। लोग अपने अपने घरों में निश्चिन्त बैठकर रुई के काग़ज़ पर हाथ से लिखे हुए रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों का पाठ करते एवं अवकाश मिलने पर कविकंकन की चंडी या सूरदास के भजनों का गान करते, और अपने अपने वास-भवनों में पूर्ण सुखी एवं प्रसन्न-चित्त रहकर अपने कामों में तत्पर रहते थे।

अभाव और आवश्यकताएं कम होने पर दुःख भी कम होता है। उस ज़माने के लोग सभ्यता-विरोधी चिकने और बारीक वस्त्रों के लिए लालायित नहीं थे। देश के मोटे नाज की रोटी और मोटे सूत का कपड़ा, बस इतने ही से अधिकांश लोग अपने जीवन के दिन व्यतीत करते थे। पाठशाला में गुरु महाशय, अथवा उनके बेत, की महिमा से यथासम्भव विद्या-

भ्यास करके छुट्टी के समय बालक-गण खेतों और मैदानों में दौड़ते फिरा करते थे; कभी किसी घोड़े को पकड़ लेते और नितान्त असंगत रूप से उसकी नंगी पीठ पर एक के स्थान पर दो तीन चढ़ बैठते; कभी बरसात के जल से परिपूर्ण गड्ढों झीलों, नदियों, नहरों और तालाबों में तैरते और पनडुब्बियां खेलते; वक्त बेवक्त गोरू बछरों को चराकर हाट बाज़ार घूमते और दिन के अन्त में शाम को अपनी बूढ़ी दादी की कथा कहानियों में हुंकारी देते देते प्यार की गोद में सो जाते। युवक लोग दिन में ताश, पासा और शतरंज खेल खाल कर तीसरे पहर को लाठी और तलवारों के हाथ फिराते। संध्या के समय बड़ी सजधज के साथ बनाचुना कर धोती पहिनते और नंगे शरीर के सौन्दर्य का गौरव बढ़ाने के लिए कंधे पर रंगीन रूमाल डाल, जुल्फ़ों में कंघी लगा कर, तोता मैना अथवा इनके अभाव में एक पालतू बुलबुल हाथ में लेकर ताम्बूल-राग-रंजित होठों से मन्द और मधुर सीटी बजाते हुए घूमने के लिए गांव से बाहर निकल जाते। बूढ़े लोग घर का कामकाज करने और डटकर भोजन करने के बाद, तैल की मालिश से स्निग्ध-शरीर, शेष दिन को निद्रा में समाप्त करके शाम को तम्बाकू-सेवन के लिए चंडी के मंडप में, नदी के किनारे अथवा किसी पेड़ के नीचे एकत्रित होकर इधर उधर की ग़प शप हांकते,—"फ़लाने की बहू अमुक का बेटा" ......न जाने कहां कहां की व्यर्थ बतोड़बाज़ियां और कितने ही आवश्यक अनावश्यक विषयों की मीमांसा करके संध्या के बाद हरिकीर्तन अथवा पुराण आदि सुनकर भगवद्भक्ति-सागर में निमग्न हो जाते थे। समाज की अर्द्धाङ्गिनी गृहलक्ष्मियां देवता, ब्राह्मण, अतिथि तथा अन्य लगे लिपटों की सेवा-सुश्रूषा

करके, वक्त बेवक्त बच्चों को मार पीटकर, नथनी हिलाती हुई बाल खोलकर, संध्या की शीतल वायु में किसी तालाब के घाट पर बैठ, वहां की शोभा बढ़ातीं; कितनी ही बातें, कितने ही रंग रस—उसके साथ में प्रौढ़ाओं का सगर्व हस्त-संचालन, नवबधुओं का घूंघट में छिपे हुए मुख से अपनी सखियों के साथ दबी ज़बान का सम्भाषण, एवं वृद्धाओं का कांपती हुई आवाज़ से शिव-महिम्न-स्तोत्र का अशुद्ध पाठ इत्यादि बातें इन गृहलक्ष्मियों के संध्या-सम्मिलन को अत्यन्त आनन्दमय बना देती थीं।

आज वह दिन नहीं; अब हम सभ्य हो गये हैं। बालक-गण दांत निकलने के पहले ही क, ख की पट्टी पकड़कर पांच घंटे तक स्कूल में काठ की कठोर तिपाइयों पर कभी खड़े रहकर, कभी बैठकर अध्ययन करते हैं, और शाम को गृह-शिक्षक की तीव्र ताड़ना सहन करके भोजनों को भी भूल बिना खाये पिये ही सो जाते हैं। युवक लोग हा अन्न! हा! अन्न करते हुए नौकरी की खोज, उम्मेदवारी की आशा, अथवा कभी कभी केवल एक प्रशंसापत्र ही प्राप्त हो जाने की चेष्टा में चारो ओर मारे मारे फिरा करते हैं, और अध्ययन के कठिन परिश्रम के कारण थोड़े ही दिनों में अत्यन्त दुर्बल होकर अकाल ही में वृद्ध हो जाते हैं। बुड्ढे लोग अनावश्यक उत्साह में उस समय के जीर्ण खूंटे के साथ उड़ते हुए जातीय जीवन को बांध रखने की चेष्टा में गांव गाँव, मुहल्ले मुहल्ले दलबन्दियां और पंचायतें करके अपनी भूख बढ़ाते हैं। समाज की जो लक्ष्मी-रूपिणी, अर्द्धाङ्गिनी गृहदेवियां हैं वे नाममात्र के लिए घूंघट की रीति को स्थिर रखकर स्वामी अथवा पुत्र के साथ देश विदेश की सैर

करती हैं, और ओषधियों तथा आभूषणों में नितान्त अनावश्यक व्यय करके वैद्यों, डाक्टरों एवं सुनारों के ऋण-जाल में ग्रस्त होती हैं। आजकल की इन सब बातों को यदि हम सुख का चित्र कह कर अभिमान कर सकते हैं तो यह कह कर उस ज़माने का उपहास करना कि तब इस देश के लोगों में सुख-शान्ति का क़तई अभाव था, शोभा नहीं देता।

---

# दूसरा परिच्छेद।

## बाल्यलीला।

रोमीय सभ्यता का ह्रास हो जाने पर सारे यूरोप में अन्धकार छा गया था। शिल्प और विज्ञान के सर्वनाश एवं शिक्षा के अभाव से यूरोप के निवासी एक प्रकार से असभ्य और उद्दण्ड हो गये थे। मध्यकाल का अंत होने पर पुनः यूरोप का सौभाग्य-सूर्य उदय हुआ, शिक्षा की ज्योति ने फिर से यूरोप में चारों ओर प्रकाश फैलाया, उत्साह और उच्च आकांक्षाओं से प्रेरित होकर धन-रत्न की खोज में लोग देश विदेश दौड़ने लगे। रोम और यूनान की पुरानी ग्रन्थावलियों के कीड़ों के खाये हुए पन्ने जहां कहीं पड़े मिल गये, बड़े आग्रह के साथ लोगों ने उनका अध्ययन किया। इस प्रकार कुछ दिनो में यूरोपवालों को भारतवर्ष का नाम ज्ञात हुआ। उस ज़माने में भारतवर्ष "स्वर्ण-भूमि" के नाम से प्रसिद्ध था। यूरोप के उद्योगियों ने इस 'स्वर्ण-खानि' को हस्तगत करने की आशा में भिन्न भिन्न मार्गों से समुद्र-यात्रा की, और अपने उत्कट अध्यवसाय के द्वारा उन्होंने कुछ दिनों में भारतवर्ष को खोज निकाला। क्रमशः यूरोपीय श्वेतांगों के दल-के दल भारतवर्ष में आने लगे; परन्तु इस प्रकार सहसा इस 'स्वर्ण-भूमि' को प्राप्त करने की आशा और सम्भावना न देखकर उन्होंने इस देश के धन-रत्न को हड़प कर अपने

पेट में रखने की आशा से स्थान स्थान पर वाणिज्य की कोठियां खोलीं, और विक्रेय वस्तुएं सजाकर बड़ी दौड़ धूप के साथ बेचना शुरू किया। विक्रेय वस्तुओं में इन लोगों के पास प्रायः कांच के खिलौने थे, जिन्हें भारत के निवासी ज़रा भी अपनी आंखों में नहीं लाये, न वे उनपर मुग्ध हुए। अङ्गरेज़ व्यापारी सौदा लेकर गांव गांव घूमते और "बहुत अच्छा माल जाता है" कहकर खूब ज़ोरों से चिल्लाया करते थे। बहुतेरे लोग केवल तमाशा ही देखने के लिए उनका गट्ठर उतरवा लेते, पर ख़रीदता कोई कुछ न था। अंत में इन सौदागरों ने कोठियां खोलकर सूती तथा रेशमी वस्त्रों का यहां से यूरोप को चालान करना आरम्भ किया। कारबार क्रमशः बढ़ता गया, और धीरे धीरे एक आध भारतवासी के साथ भी इनके मेल जोल का सूत्रपात होने लगा।

मुसलमान नवाब ने इन विदेशी सौदागरों के सौभाग्य-गर्व में आनन्द का अनुभव न किया। अङ्गरेज़ों ने कलकत्ता, गोविन्दपुर और सुतानटी नामक तीन गांव ख़रीद कर व्यापार की कोठी और एक छोटासा क़िला बनवाया था। दिल्ली के नाममात्र के मुग़ल बादशाह का फ़रमान दिखा-कर जल और स्थल में निःशुल्क व्यापार करने लगे थे। इनके सिवाय और भी ३४ गांवों की ख़रीद का अधिकार-पत्र बाद-शाह फ़र्रुख़सियर से ले आये थे। परन्तु नवाब मुर्शिदकुली ख़ां ने ज़मींदारों को हिदायत कर दी कि कोई ज़मींदार अङ्ग-रेज़ों के हाथ सुई की नोक भर भी ज़मीन बेचने का साहस न करे। विवश हो अङ्गरेज़ लोग इधर उधर घूम फिरकर व्यापार करने लगे।

दिल्ली के बादशाह की शक्ति दिनोंदिन घटती जा रही

थी। अयोध्या और दक्खिन के प्रदेशों में मुसलमानों के स्वाधीन राज्य संगठित हो रहे थे। शिवाजी का पदानुसरण करके महाराष्ट्र-सेना हिन्दू साम्राज्य का विस्तार कर रही थी। देखादेखी बङ्गाल के नवाब भी दिल्ली के बादशाह को राजकर अदा करने की आवश्यकता को अस्वीकार करने लगे थे, और वास्तव में बंगाल तो वैसे भी स्वाधीन ही सा था, केवल कागज़-पत्रों ही में दिल्ली के अधीन लिखा पढ़ा जाता था।

इस समय सरफ़राज़ ख़ां बंगाल का नवाब था। वह थोड़े ही दिनों में लोगों का अश्रद्धा-भाजन हो गया। इन्द्रिय-लोलुपता ही में उसकी जान गई। मोहान्ध होकर एक दिन वह जगत्-सेठ की पुत्रवधू को पकड़ लाया, जिससे देश के समस्त निवासी उसपर एकदम बिगड़ उठे। राजा और ज़मींदार सब मिलकर सरफ़राज़ को समुचित दण्ड देने के उपाय सोचने लगे।

उस समय के ज़मींदार शक्ति-सम्पन्न थे, उनका मान था, प्रतिष्ठा थी, दिल्ली के शाही दरबार से उनका पूर्ण परिचय था। दस ज़मींदार मिलकर बादशाह पर ज़ोर डालकर मनमाने व्यक्ति को नवाब बना सकते थे। सरफ़राज़ के अत्याचारों से पीड़ित होकर इन सबों ने ऐसी ही चेष्टा की, और कुछ ही दिन में बादशाह की अनुमति मिल गई।

सरफ़राज़ के पिता शुजाख़ां को नवाबी के ज़माने में हाजी मोहम्मद और अलीवर्दीख़ां नामक दो विद्वान् और प्रतिभाशाली मुसलमानों का बड़ा मान था। ये दोनों व्यक्ति नवाब शुजा ख़ाँ की दाहिनी भुजा होकर पहले मुर्शिदाबाद के

मन्त्रिमण्डल में, तदनन्तर उड़ीसा और पटना की राजधानी में रहकर राज-कार्य करते रहे थे। अलीवर्दी पटने का नवाब प्रसिद्ध था, लोग उसी को सिंहासन पर बैठाने की चेष्टा कर रहे थे। इस गुप्त षड्यंत्र की ख़बर पाकर सरफ़राज़ ने पटने की ओर कूच किया, और अलीवर्दी ने बादशाह का फ़रमान पाकर मुर्शिदाबाद की यात्रा की। रास्ते में गिरिया के मैदान में दोनों नवाबों में लड़ाई हुई। सरफ़राज़ मारा गया, अलीवर्दी सिंहासनासीन हुआ।

अलीवर्दी हिन्दू मुसलमान सभी का प्रीतिपात्र था। वह सरल-स्वभाव, शान्त, उत्साह-शील, न्यायपरायण और धर्मात्मा नवाब था। वह हिन्दुओं पर विशेष श्रद्धा रखता था। लोग कहते हैं कि जब वह पटने का नवाब था, उसी समय एक हिन्दू साधु ने अलीवर्दी के सिंहासन पाने की भविष्य-वाणी कर दी थी। मूल कहानी जो कुछ भी हो, किन्तु अलीवर्दीबापूदेव शास्त्री और उनके शिष्य नन्दकुमार पर बड़ी श्रद्धा-भक्ति रखता था, यह बात आज भी यत्र तत्र प्रायः सुनी जाती है।

अलीवर्दी के कोई पुत्र न था, केवल तीन कन्याएं थीं। उसने अपने भाई हाजी अहमद के तीन पुत्रों—नवाज़िश मोहम्मद, सैयद अहमद और ज़ैनुद्दीन के साथ अपनी तीनों कन्याओं का विवाह कर दिया था, और सिंहासन पाने पर यथासमय तीनों दामादों को तीन प्रदेशों का शासक नियुक्त कर दिया था। इसीके अनुसार ज़ैनुद्दीन पटना में, सैयद अहमद पुर्निया में और नवाज़िश मोहम्मद ढाके में रहकर शासन-कार्य करते थे।

अलीवर्दी को जिस समय पटने का शासन-भार प्राप्त हुआ, उसी शुभ समय में उसकी कन्या अमीनाबेगम के गर्भ से

मिरज़ा मोहम्मद नामक दौहित्र का जन्म हुआ था। अलीवर्दी ने इस सौभाग्य-दिवस के आनन्दोत्सव में इस नवजात शिशु को पोष्य पुत्र के रूप में ग्रहण कर लिया था। विधाता की गति जानी नहीं जाती, आज जो बालक है, कल वही युवा होता है; आज सूतिका-गृह में धात्री की गोद ही जिसका एक-मात्र क्रीड़ा-स्थल है, कल सारी पृथ्वी भी उसके विहार के लिए पर्याप्त नहीं होती! अतएव आज जो अलीवर्दी के स्नेह का खिलौना और उसका पोष्य पुत्र है, समय आने पर वही बङ्गाल, विहार और उड़ीसे का नवाब बनकर सिराजुद्दौला के नाम से सारे संसार में प्रसिद्ध होगा, इसे कौन जानता था?

बाल्यकाल बड़े सुख का समय है, परन्तु बाल्यकाल ही मनुष्य के अनेक भावी क्लेशों का मूल है। जिस प्रकार के सहवास और जैसी ताड़ना में बाल्यजीवन व्यतीत होता है, भावी जीवन पर उसका वैसाही प्रभाव पड़ता है। इसीलिए मानव-चरित्र का चित्रण करते समय लोग बाल्यजीवन की आलोचना किया करते हैं; तदनुसार हम भी बालक सिराजुद्दौला के बाल्यजीवन की आलोचना करेंगे।

सिराजुद्दौला अपने नाना को प्राणों से प्यारा था, फिर वह नाना बङ्गाल, विहार और उड़ीसे का परम प्रतापी नवाब; अतएव बालक सिराजुद्दौला जिस वक्त जिस चीज़ के लिए मचलता था, वह चाहे सागर पार सात राजाओं की सम्मिलित सम्पत्ति क्यों न होती, अलीवर्दी हज़ार कोशिशों से उसे भी लाकर सिराजुद्दौला के पास हाज़िर करता। प्रेम-पूर्ण सम्भाषण के सिवाय उसने सिराज

को कभी ताड़ना नहीं दी। हमेशा उसकी सारी ज़िद्दों को पूरा करता रहा, और इस कारण उसकी ज़िद्दें दिनोंदिन बढ़ती गईं। प्यारे दौहित्र की ज़िद पूरी करके उसका हास्य-पूर्ण मुखड़ा देखने की लालसा किस नाना को नहीं होती? तिस पर अलीवर्दी के कोई पुत्र न था।

बालक जिन चीज़ों के लिए मचलते हैं वे प्रायः सर्वथा तुच्छ अथवा नितान्त हास्यास्पद होती हैं। वे कभी हाथी मांगते हैं, कभी घोड़ा; कभी एकदम चन्द्रमा ही को मुट्ठी में पकड़ने के लिए मचल जाते हैं! ग़रीब लोग बिचारे क्या करें? वे उन्हें लकड़ी का हाथी और मिट्टी का घोड़ा ख़रीद देते हैं, एवं 'चन्दा प्यारे आजा' इत्यादि सादर सम्भाषणों के द्वारा आकाश से चन्द्रमा को बुलाकर उन्हे झूठ मूठ बहलाया करते हैं। बड़े आदमी सचमुच वास्तविक हाथी घोड़ा मोल ले देते हैं, और चन्द्रमा की गिरफ़्तारी के लिए अपने सैनिक सरदारों पर हुक्म जारी करते हैं; बालक भविष्य में चन्द्रमा को पा जाने की आशा पर अवलम्बित रहता है। यद्यपि ये सब नितान्त तुच्छ बातें हैं, तथापि इन सब तुच्छ बातों ही से बालकों की कराल कुशिक्षा आरम्भ होती है, और वे अत्यन्त आवश्यकीय सुशिक्षा से वंचित रह जाते हैं। प्रवृत्तियों को दमन करना वे नहीं सीखते, इच्छाओं को रोकना वे नहीं जान पाते। जो चीज़ वे चाहते हैं, जिसकी उन्हें इच्छा होती है, उसके हाथ में न आजाने तक अधीर हो उठते हैं। नाना के अत्यन्त लाड़ प्यार के कारण सिराज के चंचल हृदय में भी इसी तरह की अनेक कुशिक्षाओं का बीज बोया जाने लगा। बालक सिराजुद्दौला ने प्रवृत्तियों को दमन करने और इच्छाओं को रोकने की शिक्षा नहीं पाई, बच-

पन ही से उसकी वासनाओं का वेग प्रबल और दुर्दमनीय होने लगा।

यह बात लोगों से बहुत दिन तक छिपी न रही कि यही बालक एक दिन बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के नवाबी मसनद पर विराजमान होगा। दास-दासियों एवं आत्मीय जनों के शिष्टाचार-व्यवहार तथा परस्पर वार्तालाप से सिराजुद्दौला ने भी यह जान लिया कि मैं एक छोटा नवाब हूं। बचपन ही से उसके हृदय में विलासिता का बीज बोया गया; पास बैठनेवाले संगी साथी प्राण-पण के साथ उसे अंकुरित और फल फूलों से सुशोभित करने की चेष्टा करने लगे।

स्वार्थी और चाटुकार लोग प्रायः अमीरों के घरों और राजमहलों के आसपास चक्कर लगाया ही करते हैं। ऐसे लोगों में कोई तो दूसरों के भरोसे अपने बाबूपने का ख़र्च चलाने के लिए और कोई स्वयम् निर्दोष बनकर औरों के छिद्र प्रकट करने के लिए राजकुमारों के साथ मिलते और उनका सहवास करते हैं। अलीवर्दी का पवित्र जीवन ऐसे लोगों की आँखोंमें कांटे की तरह खटक रहा था। अलीवर्दी कर्तव्य-परायण था,—कर्तव्य-पालन ही धर्म है, पुण्य है, एवं उसी में मनुष्य का यश और गौरव है; परन्तु नियत कर्तव्यों के पालन करने और ऐश इशरत का मज़ा लूटने में तो बहुत बड़ा अन्तर है। जहाँ कर्तव्य-परायणता है वहां ऐयाशी का गुज़र कहां? किन्तु स्वार्थियों को यह कब पसन्द था। वे कहते थे कि यदि नवाब होकर भी अलीवर्दी केवल एक ही बेगम से संतुष्ट है, और रातदिन राज्य-प्रबन्ध की चिंताओं ही में व्यस्त रहता है तो वह नवाब हुआ ही क्यों? निदान इन कारणों से अलीवर्दी का पवित्र जीवन जिन स्वार्थियों के निकट केवल उपहास का

विषय हो रहा था वे अपनी रुचि के अनुकूल नवाब बनाने की आशा से सिराज के पीछे पड़कर उसके शुभचिंतक और चाटुकार बनने लगे।

वृद्धावस्था में अनेक गुण हैं; परन्तु उसमें यह एक भारी दोष है कि वृद्ध पुरुष बड़े ही स्नेह-परायण होते हैं, उन्हें मोह बढ़ जाता है, और उनकी वह बढ़ी हुई स्नेह-लिप्सा मोहान्धता ही का नामान्तर बनजाती है। स्नेह-लिप्त बूढ़े मनुष्य अपने दूसरे विवाह की तरुणी स्त्रियों का मिज़ाज बिगाड़कर उन्हें उद्दण्ड और उच्छृङ्खल बना देते हैं! आंखों में उंगली डालकर भी यदि कोई उन्हें उनकी भूल से सावधान करना चाहता है तो वे हंसी ही में उसकी बात को उड़ा देते हैं। किन्तु समय आने पर अपने हाथों जमाये हुए उस विष-वृक्ष से अमृत-फल नहीं फलता, और अपनी भूल का यथोचित परिणाम उन्हें भोगना ही पड़ता है! इसी प्रकार वृद्ध बाबा और नाना अपने नाती पोतों की अनुचित इच्छाएं और असंगत ज़िद्दें भी पूरी करके उनके भविष्य-जीवन को बरबाद कर डालते हैं। यदि उनसे कोई इसका ज़िक्र छेड़ता है तो यह कहकर उसकी बात को टाल देते हैं कि "अरे! वह तो कल का दुधमुहां बच्चा है, क्या अभी उसकी ताड़ना का समय है?" निदान इन बूढ़े बाबा नानों के निकट उनके नाती पोते सदा ही "कल के दुधमुहें बच्चे" बने रहते हैं, कभी उनकी ताड़ना का समय आता ही नहीं। यही दशा अलीवर्दी की हुई, उसकी वृद्धावस्था की असंगत स्नेह-लिप्सा के कारण सिराजुद्दौला की ताड़ना का समय कभी न आया।

बाल्यकाल बीत गया, किशोर आया। किशोर भी चल बसा, जवानी आगई, किन्तु ताड़ना का समय न आया! सिराज धीरे धीरे दुराचारी युवकों के साथ मिलकर उनका सरदार बनगया।

# तीसरा परिच्छेद ।

## प्रमोद-भवन ।

अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक सिराजुद्दौला को दुराचारी नवयुवक बताकर ही चुप नहीं हुए, वरन् उन्होंने उसे बुद्धि-विहीन, पशु-विशेष तक प्रमाणित करने में क़लम और कालिमा का अपव्यय किया है। सर्वसाधारण का जो यह विश्वास था कि सिराज ने अपने अमानुषिक अत्याचारों से प्रजा के दिलों को दुखा रक्खा था, वह आज भी दूर नहीं हुआ है, और यही कारण है कि सिराज के नाम को सुनते ही हम आज भी भय से कांप उठते हैं। एवं एक सत्य के साथ दस मिथ्या अपवाद जोड़कर इतिहास और कविताओं की रचना होनेपर भी हम उसके सत्य-असत्य का निर्णय करने की चेष्टा नहीं करते।

सिराजुद्दौला बुद्धि-विहीन था, यह सर्वथा असत्य है; वह इतना चतुर और बुद्धिमान् था कि प्रायः बड़े बड़े प्रवीण अङ्गरेज़ सौदागरों ने भी उसकी प्रकाण्ड बुद्धिमत्ता के सामने हार मानी है। परन्तु उसकी बुद्धि केवल दुष्ट-बुद्धि थी। जंगली शेर जिस प्रकार छिपे छिपे दबे पांव शिकार के पीछे पीछे चलकर समय और सुयोग पाते ही झट एक छलांग में उसकी गर्दन तोड़ ताड़कर ख़ून पी जाता है, सिराज ने भी वैसी ही शार्दूल-वृत्ति की शिक्षा पाई थी। उसकी चाल ढाल इतनी सरल थी, बातें ऐसी भोली भाली होती थीं, आचार-व्यवहार ऐसा साधारण और सन्देह-शून्य जान पड़ता

था कि नवाब अलीवर्दी उसके वास्तविक उद्देशों को ज़रा भी नहीं समझ सकता था।

अलीवर्दी के पवित्र जीवन के प्रभाव से मुर्शिदाबाद का राजमहल मानो एक प्रसिद्ध तपोवन बन गया था। मसजिदों में यथासमय नमाज़ पढ़ी जाती थी, द्वार द्वार पर कंगालों और असमर्थों को अन्न वस्त्र मिलता था, न्यायालयों में न्याय और धर्मानुकूल विचार-कार्य होता था, अवकाश के समय विद्वान् पण्डित और मौलवी शास्त्र की व्याख्या से नवाब का मनोरंजन करते थे। वैश्याओं को फाटक के भीतर क़दम रखने की ताब न थी, नृत्य-गीत से राजकार्य में बाधा डालकर उसे कलुषित करने का अवसर उन्हें कभी न मिलता था। इस तरह से वृद्ध अलीवर्दी अपने दिन काट सकता था, परन्तु युवक सिराजुद्दौला के दिन नहीं कटे। पहले तो कुछ दिन उसे नाना का सहवास असुविधा-जनक प्रतीत हुआ, पीछे वह उसे बिलकुल ही असह्य हो गया। वह उस सहवास में रहकर महल के कमरों में छटपटा रहा था, और शीघ्र ही उसने नाना अलीवर्दी के संग से छुटकारा पाने के लिए अपने बुद्धि-बल से एक नवीन उपाय का अवलम्बन किया।

अलीवर्दी सिराजुद्दौला के चरित्र को भली प्रकार जानता था या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु चतुर सिराजुद्दौला ने अलीवर्दी के चरित्र को बहुत अच्छी तरह समझ रक्खा था। वह जानता था कि युक्ति-संगत बातों के द्वारा मैं नाना अलीवर्दी से जिस बात के लिए ज़िद या अनुरोध करूंगा, वे उसे पूरा करने में तनिक भी आपत्ति न करेंगे। अतएव सिराजुद्दौला ने अलीवर्दी से अपने लिए एक नया महल बनवा देने का आग्रह प्रकट किया। ठीक ही है—"एक फटे पुराने

कम्बल में दस फ़क़ीर एक साथ रहकर बरसें काट सकते हैं, परन्तु एक पुरातन राजप्रासाद में वृद्ध और तरुण दो नरेशों के एकत्र रहने पर उनका मान और गौरव उपहास का विषय बन जाता है।" सिराज की बात इतनी सरल और युक्ति-पूर्ण थी कि नवाब अलीवर्दी ने उसे बिना ही दोहराये स्वीकार कर लिया, और तत्काल ही दौहित्र के लिए एक नया महल बनवाये जाने की आज्ञा देदी। उसके बूढ़े दिमाग़ में इस बात का क़तई गुज़र न हो सका कि सिराज का यह विचार किसी पाप-लिप्सा से परिपूर्ण हो सकता है।

राजधानी के निकट भागीरथी के पश्चिमी किनारे पर हीराझील थी। उसी स्थान पर सिराज के लिए प्रमोद-भवन निर्माण होने लगा। इतिहास-प्रसिद्ध ग़ोरी बादशाहों के सयत्न संचित किये हुए सुन्दर चित्रों और परमोत्तम पिच्ची-कारी के बहुमूल्य पत्थरों के द्वारा प्रमोद-भवन सुसज्जित किया गया। वह हीराझील अब नहीं, न अब वह राजप्रासाद ही है; महापाप के ज्वलन्त हुताशन में दग्ध होकर उसकी बची खुची राख भी भागीरथी की तरंगों में डूब गई। हीराझील के प्रमोद-भवन में सिराज का सिंहासन स्थापित हुआ था; हीरा-झील के प्रमोद-भवन ही में विश्वासघातक मीरजाफ़र ने क्लाइव साहब की सहायता से सिंहासन पर बैठकर राजमुकुट को अपने शिर पर रक्खा था। इसी स्थान पर मुसलमानों का सौभाग्य-सूर्य अस्त, और यहीं से अङ्गरेज़ों के प्रताप-रवि का उदय, हुआ। परन्तु यह स्थान आज लोगों की नज़रों से ग़ायब हो गया है।

हीराझील में प्रमोद-भवन निर्माण हो जाने पर सिराजु-द्दौला ने दल-बल के सहित वहां जाकर अपने तनमन को विषय-

भोग की तरंगों में फंसा दिया। प्रत्येक कमरे में, प्रत्येक गली में, प्रत्येक स्थान में, हीराझील के शान्त, शीतल और स्वच्छ सलिल में एवं किनारे पर स्थित वृक्ष-लताओं में सर्वत्र ऐयाशी के क़हक़हे मचने लगे। नाना अलीवर्दी के साथ पुराने महल में रहते हुए जो शक्ति पर्वत-कन्दरा के बीच से निकलनेवाले झरने की धारा के समान गुप्त रीति से मन्द मन्द बह रही थी, वही शक्ति हीराझील के नवीन महल में आकर समतल मैदान पर बहनेवाली नदी की प्रबल वेग-धारा के समान अति-तीक्ष्णतर वेग से काल-समुद्र की ओर बहने लगी। भला अब कौन उसकी गति रोके? नाना ने स्वाधीनता दे दी, अपने हाथों उसके लिए प्रमोद-भवन बनवा दिया, आवश्यकता के अनुकूल मासिक वृत्ति नियत करके भोग-विलास का मार्ग उसके लिए खोल दिया; अतएव सिराजुद्दौला के भोगविलासों की धारा प्रबल वेग से बह निकली! हा सिराजुद्दौला! यदि तुम्हें यह ज्ञात होता कि यह विलास-स्रोत ही एक दिन तुम्हारे धन, मान, जीवन एवं राज्य-सिंहासन को भी बहा ले जायगा तो तुम्हारा जीवन हीराझील के वर्तमान इतिहास को इतना शोचनीय और विषाद-पूर्ण न बना सकता।

रोज़ नये नये कुसंगी बढ़ने लगे, दिन बदिन पापों के उत्साह की वृद्धि होने लगी! अंत में सिराज ने सोचा कि अब नवाब की दी हुई निर्दिष्ट मासिक वृत्ति से इच्छानुरूप पाप-वासनाओं को चरितार्थ करना असम्भव है, और यह सोचकर उसने अपने चातुर्य-कौशल से धन संग्रह करने का एक नया उपाय निकाला। नाना अलीवर्दी को, अपने अमीर उमरावों के साथ, हीराझील के नवीन महल में पदार्पण करने के लिए उसने बड़ी विनम्रता और सम्मान के साथ निमंत्रण भेजा।

सिराज का यह निमंत्रण पाकर अलीवर्दी मारे ख़ुशी के फूला न समाया।

उस समय मुर्शिदाबाद के नवाबी दरबार में अनेक राजा महाराजा उपस्थित थे। अलीवर्दी ने सबको साथ लेकर बड़े समारोह के साथ हीराझील में पदार्पण किया। सिराजुद्दौला ने अभ्यर्थना-पूर्वक उनका स्वागत करके सादर सम्भाषण और विनीत वचनों से यथोचित सत्कार किया। आगत महानुभावों में से कोई तो सघन लता निकुंजों में, कोई शीतल शिला-खंडों पर, कोई पत्थर की स्वच्छ सीढ़ियों पर बैठ विश्राम-लाभ करने लगे। वे कभी तो महल की सुन्दरता और सजावट की प्रशंसा, कभी पुरातन शिल्पियों की शिल्पकला और चित्रकारी के साथ वर्तमान समय के शिल्पियों की नक़ली कार्रवाई का मुक़ाबिला और कभी परस्पर विनोद-वार्ता करते हुए नवाब की प्रतीक्षा करने लगे। नवाब अकेला महल की सैर करने गया था, सैर समाप्त होते ही महल के विशाल कमरे में दरबार बैठनेवाला था। परन्तु जितनी ही देर होने लगी उतनी ही सब लोगों की अधीरता बढ़ती गई। नवाब कहां है, क्या इतनी देर में अभी तक महल की सैर समाप्त नहीं हुई ? दृष्टि के इशारों ही में सब लोग परस्पर इन बातों की जिज्ञासा करने लगे।

इधर सिराजुद्दौला ने चालाकी से नवाब को, अन्य दरबारियों से अलग करके सारे, कमरों में घुमाते फिराते एक कोठे में ले जाकर बन्दी कर लिया। वृद्ध नाना बाहर निकलने की जितनी ही चेष्टा करता, इस द्वार से उस द्वार तक मारा मारा फिरता, बन्द दरवाज़े के बाहर खड़ा हुआ दौहित्र उतनी ही ज़ोर ज़ोर से तालियां पीट और ठट्टे मार

सारे महल को प्रतिध्वनित कर रहा था। कुछ देर तो मज़ाक़ समझकर नवाब ने इस तमाशे में बड़े ही आनन्द का अनुभव किया, परन्तु अंत में जब कोई भी दरवाज़ा नहीं खुला तब नवाब ने बाहर आने के लिए सिराजुद्दौला से द्वार खोल देने का अनुरोध किया। बालक-बुद्धि से पराजित होकर वृद्ध नवाब कौशल-संग्राम में बन्दी हुआ था, समुचित अर्थ-दण्ड पाये बिना भला विजयी सिराजुद्दौला उसे कब छोड़ने वाला था। नवाब ने बहुत कुछ समझाया बुझाया, और बहुत सा रुपया देना भी स्वीकार किया। परन्तु चतुर सिराजुद्दौला अपना दावं पाकर कहने लगा कि युद्ध-शास्त्र में नक़द तोड़े गिन देना ही एकमात्र मुक्ति-पत्र है, अन्यथा राजा और बादशाहों की ज़बानी बातों का विश्वास ही क्या? नवाब ने सब तरह निरुपाय होकर कहा कि देखो, यहां बहुतसे राजा महाराजा इकट्ठे हैं, जो होना था सो हुआ, अब इस बात के बाहर फैलने पर सब लोग मेरा मज़ाक़ उड़ावेंगे। सिराज और भी सुयोग पाकर कहने लगा कि वृद्ध नवाब के श्वेत केश यदि राजा महाराजाओं के निकट ऐसी मूल्यवान् वस्तु हैं तो वेही प्रचुर धन देकर नवाब को बन्धन से क्यों नहीं छुड़ा लेते?

नवाब सब तरह हार गया, राजा महाराजा सब लोग यह ख़बर पाकर बड़ी चिन्ता करने लगे। वे सिराज को अच्छी तरह जानते थे, उन्हें मालूम था कि सिराज जिस बात को पकड़ेगा, किसी के लाख समझाने पर भी उसे नहीं छोड़ सकता। अन्ततः विवश होकर जिसके पास जो कुछ था, सब इकट्ठा करके पांच लाख से कुछ अधिक रुपया सिराजु-द्दौला को देकर नवाब को क़ैद से छुड़ाया। सिराजुद्दौला ने

ऐसी बालकोचित सरलता और परिहास-पूर्ण चतुरता से अपना काम बना लिया कि नवाब का क्रुद्ध होना तो दूर रहा, बालक के बुद्धि-कौशल से पराजित होने में बड़े आनन्द का अनुभव करके हंसी खुशी के साथ राजधानी में वापिस आया।

सिराज की बुद्धि-चातुर्य के साथ इस प्रकार प्राप्त किये हुए धन की शक्ति के मिलते ही रोज़ नये नये उत्सव होने लगे। उन उत्सवों में नाच रंग, सुरापान और उस की सह-कारिणी वारवनिताओं की विशेष वृद्धि होने लगी। अन्त में घूंघटों को भेदकर, गृहस्थों की सुन्दरी ललनाओं के मुखों पर भी सिराज के दुराचारी साथियों की बारीक नज़रें दौड़ने लगीं। रुपये के ज़ोर, छल-चातुर्य तथा अन्य प्रलोभनों से अनेक गृहस्थ-कन्याओं का सर्वस्व अपहरण किया गया! बंगाली लोग जिसके लिए सिराजुद्दौला का नाम सुनते ही कांप उठते हैं वह यही महापाप था। इस महापाप की बात दिनोंदिन चारों ओर फैलने लगी; परन्तु मराठों के नित नये उत्पातों की चिन्ता में फंसे रहने के कारण वृद्ध नवाब अली-वर्दी सिराज के इस अत्याचार को रोकने का कोई प्रबन्ध न कर सका। दिन जाने लगे, किन्तु दिनोंदिन सिराज के विलास-स्रोत का वेग बढ़ता गया।

---

# चौथा परिच्छेद।

## मराठे बंगाल में आये।

बङ्गालियों का मुख्य आहार चावल है। अतएव वे विशेष शान्तिप्रिय हैं। वर्षा के जल से भरी हुई चौरस और अत्यन्त उर्बरा भूमि में समय पर एक मुट्ठी धान फेंक देने ही से फ़सल के दिनों में उनके घर आंगन अन्न से परिपूर्ण हो जाते हैं। पेट के लिए वे कभी वायु, बिजली और ओलों की ताड़ना सहते देश विदेश मारे मारे फिरना नहीं जानते। आजकल तो इस देश के नवयुवक, भूख से पीड़ित, हा अन्न! हा अन्न! चिल्लाते हुए भीख का टोकरा लेकर रेलों और जहाज़ों के द्वारा पृथ्वी-पर्यटन करते फिरते हैं; परन्तु हम जिस समय की बात कह रहे हैं, उस समय तक अन्नाभाव के कारण इस देश के निवासियों की कमर और पीठ ने लचका नहीं खाया था। इन्हीं सब कारणों से बाप-दादाओं की पैतृक भूमि के साथ इस देश के लोगों का हृदय और मन ऐसे दृढ़ प्रेमपाश में बंधा हुआ था कि कराल आपदाएँ पड़ने पर भी लोग सहसा अपने नगरों और गावों की चतुःसीमाओं का परित्याग करना नहीं चाहते थे। जिस पैतृक भूमि पर खड़े होकर पूजनीय पूर्वज अपने शैशव, यौवन और बुढ़ापे की अवस्था बिताकर परलोक को प्रस्थान कर गये, उस भूमि की एक मुट्ठी ख़ाक को इस देश के निवासी परम पवित्र समझते थे; और

यही कारण था कि मुसलमान बादशाहों के द्वारा भूमि-कर में दूनी, तिगुनी और चौगुनी वृद्धि हो जाने पर भी लोग पैतृक भूमि की ममता को न त्यागकर उसके लिए अन्य सभी आपदाओं को स्वीकार करने के लिए तैयार थे।

हिन्दू राजाओं के समय में जितना भूमि-कर नियत था, सम्राट अकबर के समय में उससे दूना हो गया था। मुर्शिद-कुली ख़ां ने उस राजकर को बढ़ाकर और भी कई नये करों का बोझ लाद दिया था। नवाब शुजाख़ां के ज़माने में इन नये करों की संख्या और परिमाण क्रमशः बढ़ने लगा। उसने "नज़राना मुक़र्ररी" "जार माथट" "माथट फ़ीलख़ाना" और "अब्वाब फ़ौजदारी" आदि के नाम से अनेक नये महसूल क़ायम करके राजकर बढ़ा दिया था। अलीवर्दी के शासन-काल में सिराजुद्दौला ने अपनी चालबाज़ी से हीराझील का ख़र्च चलाने के लिए जो रुपया उससे वसूल किया था, क्रमशः वह भी "नज़राना मंसूरगंज" के नाम से वार्षिक कर के रूप में परिणत हो गया।

इन सब अधिक राजकरों को अदा करके भी लोग सुख-समृद्धि के साथ अपना जीवन बिता रहे थे। परन्तु नवाब अलीवर्दी के सिंहासन पर बैठते ही एक नये उपद्रव का सूत्रपात हुआ। बहुत दिनों से अराकान प्रदेश के निवासी मग और सुन्दरवन-विहारी फिरंगियों के अत्याचारों से दक्षिण और पूर्वीय भाग बरबाद हो रहे थे। कुछ समय के बाद इन्हीं लोगों के ज़ुल्म और अत्याचारों के कारण दक्षिणी बंगाल का समृद्धिशाली प्रदेश ऊजड़ होकर सुन्दरवन के रूप में परिणत हो गया था। इन मग और फिरंगियों का

दमन करने के लिए ढाका-प्रदेश में नवाब-सरकार की ओर से ७६८ सैनिक जहाज़ सर्वदा प्रस्तुत रहते थे, और "जागीर नोयारा महाल" के राजकर का सारा रुपया इसी में ख़र्च होता था। इन उपरोक्त अत्याचारों से पीड़ित होने के कारण पूर्व और दक्षिण बङ्गाल के लोगों को वहां रहने का साहस न हुआ, और वे मध्य बंगाल की उर्वरा भूमि में आकर बस गये, जिससे वहां की आबादी कुछ दिनों में बहुत घनी हो गई। नवागत यूरोपीय सौदागरों ने भी प्रायः इसी प्रदेश में अपने वाणिज्यालय स्थापित किये थे। इधर चोर और डाकुओं का विशेष उपद्रव नहीं था, मग और फिरंगियों के अत्याचार भी इधर नहीं सुने जाते थे। अतएव यहां के निवासी एक तरह से बिलकुल बेखटके रहकर चैन से अपनी ज़िन्दगी गुज़ार रहे थे।

किन्तु सहसा यह सुख की नींद टूट गई। वीरभूमि और विष्णुपुर के शालवन को लांघकर, उड़ीसा के पहाड़ और नदियों से पार होकर विविध मार्गों से हज़ारों महाराष्ट्र अश्वारोहियों के दल के दल टिड्डीदल की भांति बङ्गाल की छाती पर टूटने लगे। बादशाह औरंगज़ेब एक दिन "पहाड़ी चूहे" कहकर जिनका मज़ाक़ उड़ाता था, उसके खुशामदी अमीर उमराव जिन्हें च्योंटी के सदृश नख के अग्रभाग से मलकर मार डालने की बात कहकर उछलते कूदते थे, उन्हीं मराठों की प्रबल शक्ति कोंकण-प्रदेश के पहाड़ों की गुफाओं में बहुत दिन तक गुप्त न रही। मुग़ल साम्राज्य के अधःपतन का समय सन्निकट जानकर अपने बाहुबल से हिन्दू-साम्राज्य संस्थापित करने की आशा से खड्गहस्त मराठों के दल के दल देश भर में धावा मारने लगे। दिल्ली के बादशाह

को गेंद की तरह उन्होंने अपने हाथों का खिलौना बना लिया, और भारतवर्ष के विविध प्रदेशों में राजकर का चतुर्थांश "चौथ" वसूल करने का फ़रमान पाकर उन्होंने अपने बाहुबल से अपना न्याय्य पैसा वसूल करने के लिए बंगाल में भी पदार्पण किया। बंगाल के इतिहास में इसी का नाम है—"मराठों का उत्पात।"

मराठों के आक्रमण और उपद्रवों की बातें आज इतिहास की जीर्ण तहों में लुप्त हो गई हैं। लोग अब उनकी आलोचना करते समय दुःख की गहरी सांसें नहीं छोड़ते; परन्तु उस ज़माने में मराठों के उपद्रवों ही ने बंगाल के सर्वनाश का सूत्रपात किया था। चालाक मराठे यह जानते थे कि बंगाल के निवासी चावलों के आहार से जीते हैं, अतएव बंगाल की समतल भूमि में एक बार क़दम रख पाने पर, चावलों से जीवन रखनेवाले निःशक्त बंगाली हमारा सामना करने के लिए कदापि अग्रसर न हो सकेंगे। क़िले थे नहीं, राजधानी से लेकर छोटे गांवों तक सारा बंगाल अरक्षित था; अतएव सीमा पर क़दम रखते ही मराठे एकदम काटोया तक आगये। इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि काटोया पहले मुर्शिदाबाद के सैनिक विभाग का प्रधान केन्द्र था। जो हो, मराठों के आने के समय यहां एक छोटा सा क़िला था, जिसके चारों ओर मिट्टी की दीवार थी, बीच में बहुत से फूस के छप्पर पड़े हुए थे, बस यही क़िले की सामग्री थी। पहाड़ों के दृढ़ दुर्गों को सर करनेवाली महाराष्ट्र-सेना ने काटोया के क़िले को बात की बात में सर कर लिया।

देखते देखते भागीरथी के पश्चिमी किनारे पर बसा हुआ समृद्धिशाली प्रदेश ऊजड़ हो गया। मराठों की लुटेरी

सेना ने नगर और गावों को लूटकर बरबाद कर दिया, छप्परों में आग लगा दी, घोड़ों की टापों की चोट से खेती का सर्वनाश कर डाला ! लोगों ने अपने स्त्री-बच्चों को साथ ले हाहाकार करते करते भागीरथी के पार होकर भागना शुरू किया ! अलीवर्दी स्वयम् तलवार लेकर मराठों का दमन करने के लिए निकला, परन्तु भागीरथी के पार होते ही यह ख़बर मिली कि महाराष्ट्र-सेना सन्मुख-युद्ध में लड़ने के लिए अग्रसर न होगी। भिन्न भिन्न दलों में विभक्त होकर देश में लूटमार मचाना ही उसका मुख्य उद्देश है। इसी उद्देश को सिद्ध करने के लिए उनका एक दल तो इधर अलीवर्दी का सामना करता रहता, और उसी बीच में दूसरा दल जाकर नवाब के डेरों में लूटमार मचा देता था! कई दिन तक इस प्रकार के विचित्र संग्राम में लड़कर अलीवर्दी ने ख़बर पाई कि महाराष्ट्र-सेना ने राजधानी पर आक्रमण करके जगत्-सेठ के राज-भाण्डार तक को लूट लिया, मुर्शिदाबाद जन-शून्य हो गया है !

अलीवर्दी शीघ्र ही मुर्शिदाबाद को वापिस आकर परिवार को अन्य स्थान पर पहुंचाने का प्रबन्ध करने लगा। पद्मा और महानन्दा के संगम के पास सुलतानगंज नामक एक बाज़ार स्थापित हुआ। महानन्दा की तीव्र धारा और पद्मा के प्रबल प्रवाह को पार करके महाराष्ट्र अश्वारोही सहसा वहां आकर उपद्रव न मचा सकें, इसलिए सुलतानगंज के निकट ही गोदागाड़ी गांव में रहना निश्चित हुआ। परिवार-वर्ग की रक्षा के लिए वहां पर नवाज़िश मोहम्मद की तईनाती हुई। राजधानी छोड़कर उसे गोदागाड़ी में आना पड़ा । उसके चले आने पर, राजबल्लभ नामक एक वैद्य वंशोद्भव व्यक्ति,

जो ढाका की नवाब-सरकार के यहां पेशकार था, और जो अपनी प्रतिभा एवं कार्यदत्तता के कारण नवाब का बड़ा ही विश्वासपात्र बन गया था, ढाके का वास्तविक नवाब होकर महाराज राजबल्लभ के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

क्रमशः मराठों का उपद्रव एक वार्षिक घटना में परिणत हो गया। नवाज़िश गोदागाड़ी को न छोड़ सका, और अलीवर्दी ने तलवार रख एवं पगड़ी उतारकर एक साल भी आराम से बैठने का मौक़ा न पाया। परिणाम यह हुआ कि मुर्शिदाबाद में सिराजुद्दौला और ढाके में राजबल्लभ की तूती बोलने लगी। मराठों के उपद्रवों से जिस समय बंगाल में हाहाकार मचा हुआ था, लोग आर्तनाद कर रहे थे, उस समय सिराजुद्दौला ऐश की नींद में सोता हुआ सुख के स्वप्न देख रहा था। मौक़ा पाकर राजबल्लभ अपनी शक्ति बढ़ाने में लगा हुआ था। समय आने पर सिराजुद्दौला की मोह-निद्रा तो भंग हो गई, परन्तु राजबल्लभ उस समय इतना शक्तिशाली बन चुका था कि सिराज अब उसको अपनी थोड़ी शक्ति से क़ाबू में न ला सकता था। बस, यही सिराजुद्दौला के सर्वनाश का मूल कारण और यही उसके इतिहास का गूढ़ रहस्य है।

सन् १७४१ ई० के लगभग महाराष्ट्रों का विशाल बल दो दलों में विभक्त हो गया था। बरार-प्रदेश में रघुजी भोंसला और पूना-प्रदेश में बाला जी, दोनों ही पेशवा का पद प्राप्त करने के लिए प्रबल प्रतिस्पर्द्धा करने लगे थे। पहिले रघुजी भोंसला के भेजे हुए सेनापति भास्कर पण्डित ने बंगाल में पदार्पण किया। कुछ दिन बाद बालाजी, अपने बाहुबल से बादशाह को अधिकृत कर बतौर चौथ के ११ लाख रुपये

की वसूली का फ़रमान पाकर, विहार-प्रदेश को लूटता पाटता बंगाल में आ उपस्थित हुआ।

दोनों ओर से दो प्रबल शत्रु एक ही साथ लड़ाई के लिए ललकारते और "युद्धंदेहि" का शोर मचाते हुए आगे बढ़ रहे थे। अलीवर्दी अकेला किस किस तरफ़ से रक्षा करता? विवश हो उसने एक पक्ष को अपनी ओर मिलाकर दूसरे पक्ष पर आक्रमण करना निश्चय किया। सब बातें तो तय हो गईं, परन्तु बालाजी को अपने पक्ष में करने के लिए रिश्वत में जितना रुपया देना निश्चित हुआ, उसे सारा ख़ज़ाना ख़ाली कर देने पर भी अलीवर्दी पूरा न कर सका। अन्त में ज़मींदारों से क़र्ज़ लेलिवाकर किसी तरह अपनी लाज बचाई, और बालाजी की सहायता से सहज ही में भास्कर को मार भगाया। परन्तु एक बार की मार से भास्कर पंडित पराजित नहीं हुआ, और एक वर्ष भी निरुद्वेग नहीं बीता था कि वर्षा के अन्त में फिर भास्कर की रणभेरी बजने लगी।

अब की बार मनकरा के मैदान में भास्कर की सेना के साथ नवाब की फ़ौज का मुक़ाबिला होना निश्चित हुआ। परन्तु लड़ाई नहीं हुई, अलीवर्दी ने प्रचुर धन से संतुष्ट करने का प्रलोभन दिखाकर निमंत्रण-द्वारा भास्कर को अपने डेरे में बुला भेजा। धन के लालच से भास्कर पंडित कुछ थोड़े से अनुचरों को साथ लेकर निर्भीकतापूर्वक नवाब के डेरे में चला आया। इशारा पाते ही नवाब के सैनिकों ने पिंजड़े में क़ैद किये हुए शेर की तरह भास्कर का काम तमाम कर डाला! भास्कर ने अपनी कमर में लगी हुई तेज़ तलवार को भी मियान से बाहर करने का मौक़ा न पाया। महाराष्ट्र-सेना भाग गई, नवाब की फ़ौज ने इस उपलक्ष में दस लाख रुपया

पुरस्कार पाया। मनकरा का शिविर अलीवर्दी के कलंक-स्तम्भ के रूप में परिणत हुआ; परन्तु मुसलमान इतिहास-लेखकों ने इसके लिए एक बार भी अलीवर्दी की निन्दा नहीं की।

१७४५ में एक ऐसी विपत्ति उपस्थित हुई, जिसका किसी को ख़याल भी न था। सेनापति मुस्तफ़ा खां, नवाब का विश्वास-पात्र और एक वीर पुरुष था। वह साहसी था, रणविज्ञ था और अङ्गरेज़ों से लड़ने भिड़ने में बड़ा उत्साह रखता था। अलीवर्दी उसके सब परामर्शों से सहमत न होने पर भी हृदय से उसपर श्रद्धा रखता था। उसी मुस्तफ़ा ख़ां ने एकाएक आठ हज़ार साथियों को लेकर सिंहासन पर आक्रमण करने का उद्योग किया! अलीवर्दी ने इस विद्रोह को शान्त किया, परन्तु मुस्तफ़ा को केवल निर्वासन-दण्ड देकर ही छोड़ दिया। मुस्तफ़ा ख़ां मुंगेर और राजमहल को लूटकर मराठों के दल में मिल गया।

भास्कर पण्डित के हत्याकाण्ड का समाचार महाराष्ट्र-देश में पहुंचते ही रघुजी भोंसला ने स्वयम् बंगाल में पदार्पण किया। बंगाल के निवासी अपनी पैतृक भूमि की माया ममता छोड़ प्राण लेकर दूर स्थानों को भागने लगे, गांव और नगर उजाड़ हो गये, अन्न के खेत कांटों के बन में परिणत हुए, शिल्प और वाणिज्य क्रमशः बन्द होने लगा।

चारो ओर घोर विप्लव मच गया। अलीवर्दी अकेला तलवार लेकर कुछ दिन मैदान में डटा रहा, परन्तु क्रमशः वह भी हिम्मत हारने लगा; और अंत में उस अकेले के पांव नहीं ही जम सके। अपने अपने जान माल की रक्षा के निमित्त सबको यथोचित अधिकार दे देने के लिए उसे बाध्य होना पड़ा। इस अधिकार से ज़मींदारों ने अपना सैन्य-बल बढ़ाया,

अङ्गरेज़ों ने क़ासिमबाज़ार में एक छोटा सा क़िला बनवा लिया, कलकत्ते की रक्षा के लिए मराठा-खाई खोदकर कलकत्ता तथा अन्य वाणिज्य-स्थानों में सेना नियुक्त की। मराठों से लड़ते लड़ते नवाब का ख़ज़ाना ख़ाली होने लगा, विदेशी सौदागरों की उन्नति का सूत्रपात हुआ, इस देश के लोगों के साथ उनका सम्बन्ध घनिष्ठ होता गया। अलीवर्दी जानता था कि इन सब बातों से भविष्य में मुसलमानों की शक्ति का सर्वनाश हो जायगा, परन्तु वह करता क्या? सब तरह से निरुपाय होकर ही उसे इस मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा।

१७४७ में नवाब अलीवर्दी स्वयम् मराठों का दमन करने के लिए न जा सका। अपने बहनोई मीरजाफ़र ख़ां को सेनापति बनाकर भेज दिया। मीरजाफ़र सिपह-सालार था; उसकी मातहती में फ़ौज यद्यपि नवाब की थी तथापि वह साक्षात्-रूप से नवाब-सरकार से वेतन नहीं पाता था। नवाबी ज़माने में राजकर के सम्बन्ध में आजकल की सी नीति नहीं थी, केवल बादशाह का नियत कर नवाब के दफ़्तर में जमा होता था, उसके अतिरिक्त प्रत्येक विभाग का ख़र्च चलाने के वास्ते भिन्न भिन्न कर्मचारियों के नाम जागीरें लगी रहती थीं, उन्हीं जागीरों की आमदनी से वे लोग अपने अपने विभाग का ख़र्च चलाते थे।

"जागीर अमीरुलउमरा बख़्शी" नाम की १८ पर्गनों की जागीर प्रधान सेनापति के ज़िम्मे थी। उसकी आमदनी से वे इच्छानुसार अपने विश्वस्त अनुचरों को फ़ौज में भर्ती करके नवाब-दरबार में अपना रंग जमाया करते थे। इस प्रकार की व्यवस्था से सेनापतियों के पक्ष में फ़ौज का बाग़ी हो जाना

सहज ही था। इसीलिए पूर्ण आज्ञाकारी और घरू आदमी के सिवाय कोई और व्यक्ति इन उच्च पदों पर नियुक्त नहीं हो सकता था। अलीवर्दी अपना बहनोई समझकर मीरजाफ़र को जितना प्यार करता था उतना ही उसपर विश्वास भी रखता था। इसी कारण से उसने मीरज़ाफ़र को इस उच्च राजपद पर नियुक्त किया था।

मराठों को परास्त करने का भार पाकर मीरजाफ़र बड़े समारोह के साथ मेदिनीपुर तक गया; परन्तु मेदिनीपुर तक आते ही वह एकाएक ऐयाशी में फंस गया! उसके चरित्र में जिन वीरोचित सद्गुणों ने अपने विकास का सुयोग पाया था, उनकी अपेक्षा यौवनोचित विलास-वासनाओं ही ने अधिक स्फूर्ति लाभ की थी। उसने कभी वीर और साहसी बनने की इच्छा और चेष्टा नहीं की; अङ्गरेज़ों के इतिहास में भी मीर-जाफ़र को "क्लाइव का गधा" कहा गया है! केवल नवाब का सुहृद् होने के कारण ही वह सेनापति के पद पर नियुक्त किया गया था। अस्तु, मीरजाफ़र की रण-कायरता का संवाद पाकर अलीवर्दी ने अताउल्ला नामक एक दूसरे विश्वस्त और रण-कुशल सेनापति को भेज दिया।

मीरजाफ़र की मदद करना तो दूर रहा, अताउल्ला स्वयम् उसकी सहायता से बंगाल के राज्य को बांट चूंटकर हड़प जाने की कल्पनाएं करने लगा। अताउल्ला सिंहासन पर बैठेगा, मीरजाफ़र पटने का नवाब होगा, और इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए दोनों की सम्मिलित शक्ति के द्वारा नवाब अली-वर्दी को तख़्त से उतारकर अपना कंटक दूर करेंगे! मीरजा-फ़र बड़ा ही सरल-स्वभाव, विलासप्रिय और स्वार्थी था; अतएव

अताउल्ला ने सहज ही में उसे अपने पक्ष में कर लेने का सुभीता पाया।

अलीवर्दी के भाग्य में विश्राम का सुख बदा ही न था। उसने अपने सुहृद मीरजाफ़र और अताउल्ला की क्रूरता का परिचय पाकर स्वयम् लड़ाई के लिए प्रस्थान किया। जिस समय वह सेना के सहित उक्त दोनों बाग़ियों के सामने पहुंचा तो दोनों ही ने उसके निकट आत्मसमर्पण किया। अलीवर्दी ने मराठों के हंगामे को दबाकर इन दोनों सेना-पतियों को पदच्युत कर दिया, किन्तु दोनों में से किसी को भी इसके अतिरिक्त कोई और दण्ड नहीं दिया। अली वर्दी के इस सदय व्यवहार से मीरजाफ़र पर कुछ भी असर न हुआ। वह राजधानी में आकर नवाब-दरबार की आज्ञा का उल्लंघन करके स्वेच्छापूर्वक इधर उधर घूमने लगा। निकासी का हिसाब समझने के लिए नवाब ने उसको कई बार बुला भेजा, परन्तु मीरजाफ़र दरबार में उपस्थित नहीं हुआ।

---

# पांचवां परिच्छेद ।

## सिराज का यौवराज्याभिषेक ।

जिस समय बंगाल मराठों के उपद्रवों से अस्तव्यस्त होरहा था, उस समय दिल्ली का बादशाह बिलकुल ही कमज़ोर हो चुका था । १७४६ में अहमदशाह अबदाली दिल्ली को लूटकर अपने देश की ओर लौटा; १७४७ में बादशाह मोहम्मदशाह मर गया; और तभी से दिल्ली का प्रचंड प्रताप एकसाथ ही विलुप्त होगया ।

मौक़ा पाकर केवल मराठों ही ने अपना स्वाधीन राज्य संस्थापित करने की चेष्टा नहीं की बल्कि दिल्ली के जो विश्वस्त मुसलमान वज़ीर थे वे भी स्वाधीनता प्राप्त करने का उद्योग करने लगे । मुसलमान जागीरदार कर अदा करने पर राज़ी न हुए, और हर घड़ी इसी की चिन्ता करने लगे कि कब और किस तरह से स्वाधीनता प्राप्त करें । चतुर अलीवर्दी ने उनके हृदय-गत भावों को पहिचानकर एक एक कर के सब को राज्य-पदों से प्रथक् कर दिया ।

इस प्रकार पदच्युत होकर दो वीर अफ़ग़ान समशेरख़ां और सरदारख़ां दरभंगा-प्रदेश में जागीर लेकर रहने लगे । पटने के शासन का भार हाजी अहमद और ज़ैनुद्दीन के ज़िम्मे था, अतएव नवाब अलीवर्दी उक्त दोनों अफ़ग़ान जागीरदारों की कोई ख़बर न लेता था । ज़ैनुद्दीन ने उन्हें, क्रमशः अपने पक्ष में मिलाने और अपने वशीभूत करने की आशा से,

निमंत्रण-द्वारा पटने में बुला भेजा। परन्तु इस का परिणाम विपरीत हुआ। अफ़ग़ान सरदार अधीनता स्वीकार करके नज़र भेंट देने के बहाने से पटने में दाखिल हुए, और दरबार में आकर यथोचित सम्मान के साथ ज़ैनुद्दीन के सामने झुककर एवं ज़ानू गिराकर बैठे; एवं एकाएक नज़र देने के छल से सबने मिलकर ज़ैनुद्दीन पर हमला कर दिया! ज़ैनुद्दीन ने कोशिश करने पर भी तलवार को मियान से निकालने का मौक़ा न पाया; उसका सर धड़ से जुदा होकर मसनद के ऊपर लोटने लगा! हाजी अहमद क़ैद होगया, और सत्तरह दिन तक कारागार में दारुण दुःख एवं अत्याचार सहकर अन्त में व्यथित हो क़ैदख़ाने ही में मरगया; सिराजुद्दौला की मां अमीनाबेगम अफ़ग़ानों के डेरों में क़ैद होगई!

यह ख़बर पाकर अलीवर्दी को बड़ा क्लेश हुआ! शोक से संतप्त गहरी सांसें छोड़कर वह प्यारी आत्मजा को बन्धन से छुड़ाने का उद्योग करने लगा। पदच्युत तथा वर्तमान सेनापतियों को इकट्ठा करके जिस समय अलीवर्दी ने कारुणिक विलापों से अपनी इस क्लेश-कहानी का वर्णन आरम्भ किया तो सभी ने एक एक करके कुरान पर हाथ रख, तलवार हाथ में लेकर उसके लिए प्राण निछावर करदेने की क़सम खाई। इस बहाने से आपस का कलह फ़साद भी मिट गया, और मीरजाफ़र फिर सेनापति के पद पर नियुक्त हुआ। अताउल्ला ने भी तलवार लेकर नवाब के पास उपस्थित होने में कसर न की। अताउल्ला के साथ हाजी अहमद की कन्या का विवाह हुआ था, और अताउल्ला की कन्या के साथ सिराजुद्दौला का विवाह चल रहा था; अतएव अताउल्ला भी नवाब का एक घनिष्ट सम्बन्धी था।

पिछली बातों के पश्चात्ताप को परित्याग कर अलीवर्दी पटने की ओर लड़ाई के लिए कूच करने ही वाला था कि इतने में ठीक उसी समय उड़ीसा-प्रान्त में मराठों की विजय-भेरी बजने लगी। इस बार अलीवर्दी मराठों के उपद्रवों को दबाने के लिए आगे न बढ़ सका। राजधानी के आवागमनवाले मार्ग की रक्षा करने के लिए सैयद अहमद को भगवानगोला में भेज दिया। नवाज़िश और अताउल्ला की मातहती में पांच हज़ार फ़ौज रखकर उन्हें राजधानी की रक्षा का भार सौंपा; एवं चारो ओर यह घोषणा करा दी कि "इस बार प्रजा के जान माल की रक्षा का भार स्वयम् उसी के ऊपर है, शक्ति और साहस के रहते अपने बाहु-बल से वह अपनी रक्षा करे, और यदि न हो सके तो प्राण लेकर भाग जाय।" बस जहां जिसने सुविधा पाई, भाग निकला।

बालक होने पर भी सिराजुद्दौला इस आकस्मिक दुर्घटना से बहुत व्याकुल होने लगा। पिता और पितामह दोनों ही शत्रुओं के हाथ से मारे गये, मां क़ैद हुई, सिराजुद्दौला चुपचाप बैठा इन सब ख़बरों को न सुन सका। तलवार हाथ में लेकर वह नाना अलीवर्दी के पास आकर खड़ा हो गया। बालक होने पर भी सिराज वीर बालक था, नवाब ने उसको साथ लेकर ही युद्ध-यात्रा की।

अङ्गरेज़ों के इतिहास में सिराजुद्दौला को केवल ऐयाश, निकम्मा और घृणित इच्छाएँ रखनेवाला चंचल नौजवान ही बताया गया है। परन्तु सिराजुद्दौला स्वयम् तलवार लेकर जितनी बार विकराल युद्धों में अग्रसर हुआ, आफ़त का सामना पाकर उसने अनेक बार जैसी फुर्ती और तेज़ी से तलवार चलाई, एक अलीवर्दी के सिवाय किसी भी नवाब

में वैसी वीरता और रणकुशलता का दृष्टान्त नहीं मिल सकता। सिराज के जीवन में यही पहली युद्ध-यात्रा न थी, बल्कि वह बचपन ही से नाना अलीवर्दी के साथ प्रायः प्रत्येक ही युद्ध में जाकर डेरों में घूमता फिरा करता था। वर्धमान के पास मराठों की सेना जिस समय बड़े ज़ोरों के साथ अली-वर्दी के बढ़ाव को रोक रही थी उस समय सिराज बिल-कुल बालक था। परन्तु उसी समय से वह नवाब के डेरों में देखा जाता था। उसके बाद प्रायः हर साल ही मराठों की लड़ाइयों के इतिहास के साथ सिराज की रण-शिक्षा का इति-हास संयुक्त होता रहा। कभी कभी तो अलीवर्दी के साथ रहकर और कभी कभी उसकी आज्ञा से स्वयम् फ़ौजकशी करने का भार लेकर इस बीर बालक ने जिस रण-पाण्डित्य और समर-कौशल का परिचय दिया, मुसलमान इतिहास-लेखकों ने बड़वाटी के क़िले की विजय का वृत्तान्त लिखते समय उसकी समुचित प्रशंसा की है। उसको रण-पण्डित बनाने के लिए ही अलीवर्दी ने बचपन में उसे सेनापतित्व का भार दे दिया था।

अफ़ग़ान बाग़ियों ने विहार को लूटकर पटना के धनाढ्य अमीरों पर घोर अत्याचार करके उनसे खूब करारी नज़रें वसूल कीं; और ज़ैनुद्दीन के राजकोष पर अधिकार जमाकर सैन्य-बल बढ़ाना शुरू किया। अलीवर्दी ने अपनी फौज़ लेकर लड़ाई के लिए कूच किया। इसकी ख़बर पाते ही बाग़ियों ने अपना पक्ष सबल करने के लिए मराठों को बुलाया। मराठों की सेना भी कुछ लाभ की आशा देखकर पटने की ओर अग्रसर हुई। अलीवर्दी ने शीघ्रही आगे बढ़कर भागलपुर के पास मराठों की फ़ौज पर हमला किया। मराठे सामने सामने

लड़ना चाहते न थे; मार पड़ते ही जंगल के रास्ते भाग जाने में उन्होंने ज़रा भी आनाकानी न की । अलीवर्दी सेना के साथ मुंगेर में आ दाख़िल हुआ ।

यहां आकर एक गुप्तचर पकड़ा गया । उसके कपड़ों के भीतर एक चिट्ठी निकली । इस चिट्ठी में विश्वासघातक अताउल्ला ने अफ़ग़ान बाग़ियों पर अपने मन की सब बातें साफ़ साफ़ प्रकट की थीं, और यह लिखा था कि मौक़ा पाने पर मैं भी आप लोगों की सहायता करूंगा । इस विश्वासघातकता का परिचय पाकर सिराजुद्दौला मारे गुस्से के दीवाना सा हो गया । परन्तु दूरदर्शी नवाब अलीवर्दी शीघ्र ही उसका कोई प्रतिकार न करके कन्या को क़ैद से छुड़ाने ही की चेष्टा में आगे बढ़ने लगा । दरभंगा-प्रदेश के जो हिन्दू ज़मींदार अफ़-ग़ानों के अत्याचारों से जर्जरित हो रहे थे वे भी मुंगेर में आकर अलीवर्दी के साथ मिल गये । उनकी ज़बानी अलीवर्दी ने यह ख़बर पाई कि बाग़ियों ने पटना छोड़कर बाढ़ नामक स्थान में डेरे डाले हैं ।

अलीवर्दी बाढ़ के विस्तीर्ण मैदान में शत्रु-सेना के सामने आ पहुंचा । जानो जी की अधीनता में मराठों की सेना पहले ही से वहां आचुकी थी । उसने प्रकट-रूप से तो अफ़ग़ानों की सहायता करना स्वीकार किया था, और गुप्तरूप से दोनों दलों के डेरों को लूटने का निश्चय कर रक्खा था । अलीवर्दी ने समय न खोकर अफ़ग़ानों के पड़ाव पर आक्रमण किया ।

लड़ाई शुरू होने पर पहली ही मुठभेड़ में सरदार ख़ां मारा गया । उसकी जो छत्रभंग सेना प्राणों के भय से चारो ओर भागने लगी उसे पुनः युद्धक्षेत्र में एकत्र करने के लिए

शमशेर ख़ां अपनी फ़ौज लेकर आगे बढ़ा। इतने में अलीवर्दी दोनों सेनाओं पर दाहिने और बायें दोनों ओर से एक ही साथ आक्रमण करके वीरता के जोश में अग्रसर होने लगा। फ़ौजें तितर बितर हो गईं, छिन्न भिन्न स्थानों पर खंड-युद्ध होना आरम्भ हुआ। ऐसे समय में सुयोग पाकर मराठों की सेना नवाब की फ़ौज पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ने लगी। सामने ज़बरदस्त अफ़ग़ानों की फ़ौज और पार्श्व में महाराष्ट्रों की लुटेरी सेना; परन्तु उस ओर दृष्टिपात न करके अलीवर्दी उन्मत्त की भांति सिर्फ़ सामने ही को बढ़ता जा रहा था। सिराज़ुद्दौला यद्यपि बालक था, और अनुभवी एवं रण-पण्डित अलीवर्दी के मुक़ाबिले में वह निरा अबोध एवं अनजान था तथापि वह इस ग़लती को समझ गया और नाना अलीवर्दी की आज्ञा लेकर उसने स्वयम् मराठों की फ़ौज पर आक्रमण करने की इच्छा की। अलीवर्दी ने उसकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया, सिर्फ़ सामने ही की ओर बढ़ता गया।

दोनों ओर की सेनाओं के भयानक संघर्ष और मारधाड़ के शोर ग़ुल में दोस्त दुश्मन सब ख़लत मिलत हो गये। इस गड़बड़ी और गोलमाल में शमशेरख़ां अपनी फ़ौज़ को न रोक सका। कौन कहां, सब छिन्न भिन्न होने लगे! अंत में शमशेर अकेला शत्रुओं के बीच में गिर पड़ा। हबीबबेग नामक एक सेनानायक ने मौक़ा पाते ही झपट कर शमशेर का शिर काटडाला! हाथी की पीठ से गिरकर उसका धड़ ज़मीन पर लोटने लगा। शमशेर का कटा हुआ शिर लेजाकर हबीबबेग ने अलीवर्दी की नज़र किया। बस, युद्ध बन्द हो गया, अफ़ग़ानों की सेना भाग गई, मराठे दूर जाकर खड़े हो रहे।

रुधिर से सने हुए रणक्षेत्र में अलीवर्दी ने चारों ओर नज़र घुमा कर देखा, युद्ध में विजय प्राप्त हुई। अकस्मात् शमशेर के मारे जाने पर सहज ही में लड़ाई फ़तह हो गई। यदि यह घटनाचक्र किसी और ही रूप में परिवर्तित हुआ होता तो सिराजुद्दौला के परामर्श की अलीवर्दी ने जो उपेक्षा की थी उस पर पश्चात्ताप करने का मौक़ा उसे मिलता या नहीं, कौन कह सकता है?

युद्ध के अंत में बेटी को क़ैद से छुड़ाकर अलीवर्दी बिहार-प्रान्त में शान्ति स्थापित करने की चेष्टा करने लगा। पराजित बाग़ी इधर उधर भाग गये। लोग शान्तिपूर्वक अपने अपने कामों में लग गये, पुर्नियामें भी शान्ति स्थापित हो गई। बड़े समारोह के साथ एक भारी दरबार करके अलीवर्दी ने सैयद अहमद को पुर्निया का और सिराजुद्दौला को पटने का नवाब बनाया। सैयद अहमद पुर्निया को चला गया, परन्तु सिराजुद्दौला अभी बालक था; इसलिए राजा जानकीराम बिहार का राज-प्रतिनिधि हुआ। सिराजुद्दौला नाममात्र के लिए बिहार का नवाब होकर नाना अलीवर्दी के साथ राज-धानी में वापस आया।

राजा जानकीराम बङ्गाल का दक्षिणबाढ़ी कायस्थ था। यह दीवान होकर अलीवर्दी की नायबी के ज़माने में बंगाल से पटना गया था। जब अलीवर्दी नाज़िम हुआ तो इसे पहले दीवान ख़ास और फिर सामरिक विभाग का मंत्री बनाया। विकराल महाराष्ट्र-सेना के आक्रमण से भागकर अलीवर्दी जब कटक से लौटा था तो जानकीराम बराबर उसके साथ था, और उसने निज की पूर्व-संचित सम्पत्ति से नवाब को सेना इत्यादि संग्रह करने में बड़ी सहायता दी थी। वास्तव में यही नवाब

का प्रधानमंत्री था। नवाब का इस पर पूरा विश्वास था। मराठों के सेनापति भास्कर पण्डित की हत्या के लिए जो षड़यंत्र रचा गया था, उसका रहस्य प्रधान सेनापति मुस्तफ़ा ख़ां के अतिरिक्त केवल जानकीराम ही को पहले से मालूम था। निदान राजा जानकीराम का इतना प्रभुत्व जम गया था कि नवाब के भाई-बन्धु भी यदि किसी विषय में कोई दरबार आदि करना चाहते तो प्रधानमंत्री से सहायता की प्रार्थना करते थे। पटने के डिप्टीसूबेदार सिराज के पिता ज़ैनुद्दीन की मृत्यु के बाद नाममात्र के लिए सिराज को इस पद पर नियुक्त करके वास्तव में राजा जानकीराम ही प्रतिनिधि शासक बना दिया गया।

दांव पाकर भी लुटेरी महाराष्ट्र सेना पर आक्रमण नहीं किया, अताउल्ला के विश्वासघात का परिचय पाकर उसकी सेना और सम्पत्ति ले केवल निर्वासन दण्ड देकर ही छोड़ दिया, मीरजाफ़र जैसे अविश्वासी व्यक्ति को, समुचित दण्ड न देकर, सेनापति के पद पर बहाल रक्खा, बड़े कष्ट सहने के बाद बिहार में शान्ति स्थापित कर उसका फल भोगने के लिए जानकीराम को वहां का शासक नियुक्त करके केवल नाममात्र के लिए सिराजुद्दौला को पटने का नवाब बनाने की घोषणा की—इन सारी व्यवस्थाओं से सिराजुद्दौला को असंतोष हुआ। परन्तु प्रतिवाद करने पर भी जब वह अलीवर्दी के विचारों में परिवर्तन न कर सका तो बहुत कुछ विमन और असंतुष्ट होकर वह राजधानी में लौट आया।

इसके बाद एक वर्ष भी शान्ति से न बीतने पाया था कि उड़ीसा प्रदेश में पुनः मराठों ने मारधाड़ मचादी। ख़बर पाते

ही मुर्शिदाबाद से वहां पहुंचना कठिन होता था, इसलिए अलीवर्दी ने इस बार मेदिनीपुर में निवास-स्थान निर्माण कराने का प्रबन्ध किया, और महाराष्ट्रों को पराजित करके अबकी बार अलीवर्दी कुछ काल तक मेदिनीपुर ही में ठहरा रहा। सिराज अलीवर्दी से आज्ञा लेकर मुर्शिदाबाद चला आया।

सिराज ने देखा कि अब मौक़ा मिला है। पुर्निया के वृहत् प्रदेश पर सैयद अहमद शासन कर रहा था। नवाज़िश और राजवल्लभ ढाका के भरे पुरे राजकोष को हाथ में पाकर खूब मनमाना रुपया ख़र्च कर रहे थे। जो बाग़ी और विश्वास-घातक थे वे भी ऊंचे ऊंचे पदों का उपभोग कर रहे थे; फिर केवल सिराजुद्दौला ही विहार का नवाब होते हुए भी निर्दिष्ट मासिक वृत्ति लेकर राजधानी में बैठा बैठा क्यों आलस्य में दिन बिताता? इस तरह से अब उसे अपने स्वार्थ को पदद-लित करना मंज़ूर न था। उसने सोचा—पिता हैं नहीं, उन्होंने बिहार के सिंहासन पर बैठकर जो बहुत सी सम्पत्ति संचित की थी वह भी अफ़ग़ानों ने लूट ली, आजकल बिहार में जो आमदनी होती है वह भी केवल जानकीराम ही का सौभाग्य बढ़ा रही है—ये बातें उसे बहुत ही अनुचित प्रतीत हुईं। उसने विश्वासपात्र सेवकों को साथ लेकर देश की सैर के बहाने मुर्शिदाबाद से कूच किया। अलीवर्दी मेदिनीपुर में था; अतएव किसी ने सिराज को रोकने का साहस न किया।

पटना पहुंचते ही सिराजुद्दौला ने अपना बनावटी वेश बदल डाला, और साफ़ लफ़्ज़ों में जानकीराम से कहला भेजा कि "वास्तव में मैं ही पटने का नवाब हूं, आप मेरे प्रति-निधि मात्र हैं। इतने दिनतक मैंने अपने राज्य की कोई ख़बर

न ली; परन्तु अब मैं स्वयम् राजधानी के फाटक पर आ पहुँचा हूं।" अब तो जानकीराम के सामने कठिन समस्या उपस्थित हुई। उधर तो नवाब की अनुमति लिये बिना सिराज को शासन-भार सौंप देने का साहस न होता था, इधर सिराज की आज्ञा को उल्लंघन करने की हिम्मत न पड़ती थी। बहुत सोच विचार के बाद जानकीराम ने नवाब के पास इस मामले की ख़बर भेजकर क़िले का दरवाज़ा बन्द कर रक्खा।

सिराजुद्दौला को यह विश्वास न था कि नौकर होकर भी जानकीराम मेरे साथ ऐसा बर्ताव करेगा। वह एकाएक मारे क्रोध के उन्मत्त हो गया। वह सोचने लगा कि मैं बिहार का नवाब हूं, राजधानी, राजदुर्ग सब मेरे। जानकीराम कौन? वह तो केवल मेरा ही प्रतिनिधि है। फिर उसने किस साहस से मेरे सामने क़िले का दरवाज़ा बन्द कर दिया! क्या नाममात्र के लिए ख़ाली ज़बान ही ज़बान से मुझे बिहार का नवाब बनाने की घोषणा दी गई है? ज़रूर, नवाब की ऐसी ही आज्ञा है, उनकी आज्ञा के विना बिचारा जानकीराम कौन था जो उसे इस तरह से मेरा अपमान करने का साहस होता। अस्तु, सिराजुद्दौला के अदमनीय हृदय-वेग को यह अपमान असह्य हुआ, और वह अपने को न संभाल सका। बाहुबल से अपने पिता के सिंहासन पर अधिकार जमाने के लिए वह क़िले के द्वार पर गोले बरसाने लगा।

यदि ख़बर पाते ही अलीवर्दी, जानकीराम को क़िले का फाटक खोल देने की आज्ञा लिख भेजता तो सहजही में सब झगड़ा मिट जाता। परन्तु उसने ऐसा न करके सिराजुद्दौला को प्रेम और उपदेश-पूर्ण एक लम्बा पत्र लिख भेजा, और उसके मुर्शिदाबाद लौट जाने के लिए बहुत कुछ

अनुरोध प्रकट किया, जिसे पढ़कर सिराज की क्रोधाग्नि दूनी भभक उठी।

अपने स्वार्थ का सत्यानाश करके सिराजुद्दौला अब नवाब के हाथ का खिलौना बनकर नहीं रहना चाहता था। नवाब के श्वेत केश न जाने कब चिर-विश्राम लाभ करेंगे, और कब सिराज अपने शिर पर राजमुकुट पहिनकर बंगाल, विहार और उड़ीसा के राज-सिंहासन पर बैठ सकेगा। इस अनिश्चित सौभाग्य-दिवस की प्रतीक्षा में वह निश्चित पैतृक सिंहासन की उपेक्षा न कर सका। वह विचारने लगा कि अलीवर्दी ने सभी को ऊंचे ऊंचे पदों पर नियुक्त किया, फिर केवल मुझे ही वह क्यों निःसार खोखली बातों के फुसलावे में मेरे पैतृक राज्य से भी वंचित रखता है? जब मैं बिहार का नवाब हूं तो जैसे हो, मैं उसपर अधिकार जमाऊं। वृद्ध नवाब को इसमें बाधा डालना उचित नहीं। राज्य बहुत बड़ा है, भुजाओं में भरपूर बल भी है, ज़रूरत पड़ने पर नाना अलीवर्दी के साथ भी युद्ध करने में मुझे तनिक भी भय और हिचकिचाहट न होगी। या तो समरक्षेत्र में दोनों के प्राण जायंगे, अथवा जिसकी जीत होगी वही निष्कंटक राज्य-सुख भोग करेगा। यही संकल्प करके सिराजुद्दौला ने अलीवर्दी को एक चिट्ठी लिखीः—

"जनाब आली! बाविजूद इज़हार इस क़दर मेहर व शफ़क़त के मेरे दुश्मनों के दरपै परवरिश हैं। अज़ांजुम्ला हुसेनकुली ख़ां को वह मर्तबा इज्ज़त व सरवरी दिया कि मेरी ज़िल्लत[1] हुई जबकि बरवक़्त माविदत[2] बर्दबान के वह

---

(१) तौहीन, मानहानि (२) लौटने।

मेरे इस्तक़बाल[१] को एक क़दम भी न बढ़ा। और शहमत जंग को वलायत-अहद[२] देकर सौलत जंग को पुर्निया की फ़ौजदारी अता फ़रमाई। मेरे हाल पर बजुज़[३] इनायात[४] ज़बानी के कोई शफ़क़त व नवाज़िश[५] जो इज़दियाद मंसब[६] और इक़तिदार[७] के लायक़ हो, न हुई। हाला हर्गिज़ तशरीफ़ न लाइयेगा, वरना आपका सर मेरे दामन में आया कि मेरा सर आप के ज़ेर पाये फ़ील[८] होगा।"

इस पत्र को पढ़कर आजकल के लोगों का दिल क्रोध से दहल सकता है, और वे सिराजुद्दौला पर कृतघ्न, पाप, दुष्ट-बुद्धि इत्यादि कोष के चुने हुए घृणा-सूचक शब्दों की बौछार कर सकते हैं, बल्कि ज़रूरत हो तो उपन्यास लिखकर पत्थर को भी पिघलाने और पृथ्वी को भी आठ आठ आंसू रुलाने के लिए बड़े बड़े प्रभावशाली निबन्धों में अपना अनुराध प्रकट कर सकते हैं; परन्तु अलीवर्दी ने यह कुछ नहीं किया।

दोषी कौन था? सिराजुद्दौला की बात जाने दीजिये, यदि वृद्ध अलीवर्दी का कोई राज-प्रतिनिधि इस तरह से उसका निरादर करता तो क्या वह उसे चुपचाप सहलेता? अस्तु, अलीवर्दी सिराज से असंतुष्ट नहीं हुआ, केवल इस चिन्ता से उसका चित्त व्याकुल होने लगा कि कहीं युद्ध में सिराज का कुछ अनिष्ट न हो जाय। इस लिए मराठों के दमन-कार्य को वहीं छोड़, राज्य और राजधानी की चिन्ता और परवा न कर थोड़े से अनुचरों को साथ ले अलीवर्दी ने पटने की ओर कूच किया। सिराज के उद्दण्डता पूर्ण पत्र

---

(१) स्वागत (२) यौवराज्य (३) सिवाय (४) मेहरबानियां (५) मेहरबानी (६) पद (७) इज़्ज़त (८) हाथी के पांव के नीचे।

के प्रत्युत्तर में अलीवर्दी ने एक पत्र भी उस के पास भेजा, जिसके नीचे फ़ार्सी भाषा का यह पद्य लिखा हुआ था :—

"ग़ाज़ी कि पाये शहादत अन्दर तगो पोस्त,
ग़ाफ़िल कि शहीदे इश्क़ फ़ाज़िलतर अज़ दोस्त।
फ़रदाय क़यामत ईं व आं क़ायम न अन्द,
ईं कोस्ता दुश्मनां आं कोस्ताय दोस्त।"

अर्थात्—जो लोग धर्म के लिए लड़ाई में प्राण देते हैं वे प्रायः भूल जाते हैं कि संसार-संग्राम में जो स्नेह का अत्याचार सहन करते हैं वे ही वास्तव में वीर हैं। इन दोनों के बीच लोक और परलोक में कहीं भी तुलना हो ही नहीं सकती। धर्मवीर पुरुष शत्रु के हाथ से मारे जाते हैं; परन्तु संसार-वीर केवल अपने स्नेही आत्मीय जनों के दण्ड ही से प्राण-त्याग करते हैं।

निदान गोलों की बहुत वर्षा करने पर भी सिराजुद्दौला क़िले को सर न कर सका, और प्रधान सेनापति मेंहदी-निसार के मरते ही सारी सेना तितर बितर होकर भागने लगी। क्रोध और क्षोभ से जर्जरित होकर सिराज ने एक फूस के झोपड़े में आश्रय लिया। यह ख़बर पाते ही राजा जानकीराम ने उसके ठहरने के लिए उपयुक्त स्थान का प्रबन्ध कर दिया; परन्तु फिर भी क़िले का दरवाज़ा नहीं खोला।

सिराज इस समय केवल पन्द्रह वर्ष का नवयुवक था। भागे हुए निर्बल शत्रु के प्रति जानकीराम ऐसा सदय व्यवहार क्यों कर रहा है, इसका रहस्य कोई न जान सका, बल्कि सब लोग मिलकर यह कहने लगे कि भयभीत होकर जानकी-राम संधि का प्रस्ताव करने के लिए ऐसा व्यवहार कर रहा

है। अस्तु, सिराजुद्दौला बची खुची सेना के साथ क़िला घेरे पड़ा रहा।

नवाब आ गया। उसके आने की ख़बर पाते ही सिराज उसके पास उपस्थित हुआ। निःशस्त्र सिराजुद्दौला को अचानक डेरे में घुसता हुआ देखकर नवाब ने चट उसे अपनी प्यार की गोद में उठा लिया। दोनों गालों पर अश्रुधारा प्रवाहित होगई। सिराज को सकुशल पाकर वृद्ध अलीवर्दी खुशी के मारे उन्मत्त की भांति नाचने लगा। नाना और दौहित्र में अब युद्ध नहीं हो सकता। एक की अश्रुधारा ने दूसरे के आंसुओं को भी खींच लिया, दोनों रोने लगे, और उनकी सम्मिलित अश्रुधारा ने सारे मनोमालिन्य को धो दिया।

नवाब का आगमन सुनकर क़िले का दरवाज़ा खोल दिया गया, और बड़े ज़ोर शोर के साथ सिराज की सेना ने क़िले में प्रवेश किया। अलीवर्दी ने क़िले में एक दरबार किया। सिंहासन के एक पार्श्व में स्नेहभाजन सिराजुद्दौला को बैठाकर सबसे कह सुनाया कि आज सिराजुद्दौला बंगाल बिहार और उड़ीसा के युवराज-पद पर अभिषिक्त हुआ।

सिराजुद्दौला संतुष्ट हो गया, परन्तु स्वार्थांध देशवासी संतुष्ट न हो सके। जो तरह तरह की चालाकियों से माल मार रहे थे, गुप्त-रूप से सिंहासन पर अधिकार जमाने का उद्योग कर रहे थे, राज्य के कर्मचारी होते हुए भी राज्य-विद्रोह का परिचय दे रहे थे, जो विदेशी वणिकों के नौकर होते हुए भी बिना महसूल के व्यापार कर रहे थे, उन सबों ने एक एक करके जब यह ख़बर पाई तो अपने अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए व्याकुल होने लगे।

---

## छठा परिच्छेद ।

### अङ्गरेज़ सौदागरों की दुरवस्था ।

बचपन ही से सिराजुद्दौला अंगरेज़ों को न देख सकता था । अपने मनोगत भावों को न छिपाकर कभी कभी नवाब के दरबार में भी वह अङ्गरेज़ों के सम्बन्ध में अपने वैमनस्य को प्रकट करने में तनिक भी न हिचकिचाता था । वह मानो पहले ही से यह जान चुका था कि भविष्य में बंगाल का यह स्वर्णमय राज्य, खेलने के खिलौनों की भांति अङ्गरेज़ों के हाथ उच्च मूल्य में बिकेगा । इसीलिए अङ्गरेज़ों के व्यापार और महत्व की वृद्धि को वह ईर्ष्या की दृष्टि से देखता और भरसक उसका प्रतिवाद करता था ।

बचपन ही से सिराज ने अङ्गरेज़ों के चरित्र को भली भांति समझने का अवसर पाया था । उस समय नवाब के दरबार में अङ्गरेज़ों के प्रतिनिधि आते जाते थे । शहर के किनारे पर व्यापार की कोठी स्थापित करके क़ासिमबाज़ार के अङ्गरेज़ भी प्रायः इधर उधर घूमा फिरा करते थे । इनके कामों को देखकर सिराज के हृदय में अङ्गरेज़ों के प्रति जो विद्वेष उत्पन्न हुआ था वह दूर नहीं हुआ, बल्कि इनके प्रत्येक कार्य में कराल कूटनीति का समावेश देखकर वह मन ही मन अङ्गरेज़ों से घृणा करने लगा । बचपन के संस्कार सहज में दूर नहीं होते, वयोवृद्धि के साथ ही साथ सिराज के बाल्यकाल के संस्कार भी क्रमशः बढ़ते गये ।

हीराझील के प्रमोद-भवन का निर्माण होते समय सिराजुद्दौला ने उस जगह अपने नाम पर "मंसूरगंज" नामक एक बाज़ार क़ायम किया था। इस बाज़ार की सारी आमदनी पर सिराजुद्दौला का अधिकार था। अतएव जिस प्रकार इस बाज़ार की उन्नति और आय में वृद्धि हो, सिराजुद्दौला सर्वदा ही उसके लिए यथाशक्ति यत्न करता था। देशी वाणिज्य की उन्नति के बिना बाज़ार की उन्नति असम्भव थी। अङ्गरेज़ लोग प्रकट और गुप्त वाणिज्य से देशी व्यापारियों को हानि पहुँचाकर विदेशियों के लाभ का मार्ग जितना ही सुलभ करते गये, सिराजुद्दौला इन विदेशी वणिकों से उतना ही असंतुष्ट होता गया। फ्रांस, डेन्मार्क, हालेण्ड इत्यादि देशों के व्यापारियों को बिना महसूल के वाणिज्य करने का अधिकार नहीं था, इसलिए उनकी प्रतियोगिता से स्वदेशी व्यापार को विशेष हानि पहुंचने की सम्भावना न थी। परन्तु अङ्गरेज़ लोग दिल्ली के बादशाह से फ़रमान लेकर जल और स्थल सर्वत्र बिना ही महसूल के व्यापार करने लगे, और उन्होंने बिचारे असमर्थ स्वदेशी व्यापारियों के पथ में कांटे बिछाये। अतएव सिराजुद्दौला अङ्गरेज़ों ही से विशेष विद्वेष रखने लगा। बादशाह से फ़रमान लेकर केवल 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ही बिना महसूल के व्यापार करती हो सो नहीं बल्कि कम्पनी के कर्मचारियों के अज़ीज़ रिश्तेदार भी इस देश में आकर गुप्त रीति से स्वाधीन व्यापार करते थे, और कम्पनी के संचालकों से निःशुल्क व्यापार का परवाना लेकर वे भी खूब धन पैदा करते थे। जान उड नामक इसी तरह के एक अङ्गरेज़ सौदागर ने कम्पनी के पास निःशुल्क व्यापार का परवाना लेने के लिए जो आवेदनपत्र भेजा था उसमें साफ़ साफ़

लिखा था कि "कम्पनी की तरह अन्य अङ्गरेज़ सौदागरों को भी निःशुल्क व्यापार का परवाना,न देने से सर्वनाश होगा !" बादशाह के फ़रमान को अस्वीकार करने का कोई उपाय नहीं, जबतक अङ्गरेज़ रहेंगे, वे निःशुल्क वाणिज्य करेंगे ही; इसलिए अङ्गरेज़ों को बिना भगाये स्वदेशी वाणिज्य का सितारा कभी चमक नहीं सकता, यही सोचकर सिराजुद्दौला सर्वदा अङ्गरेज़ों के निकालने का अवसर ढूंढ़ा करता था। सेनापति मुस्तफ़ाख़ां भी सिराज के इस प्रस्ताव का समर्थन करता था, परन्तु अलीवर्दी के भय से वह अङ्गरेज़ों को निकालने के लिए कोई उद्योग न कर सकता था। इस विषय की बात छेड़ते ही अलीवर्दी सिराजुद्दौला से यही कहता था कि "मुस्तफ़ा तो युद्ध-व्यवसायी है, युद्ध ही में उसका लाभ है, तुम कभी उसकी बातों पर ध्यान मत देना।"

सिराज का विश्वास था कि समस्त फरंगिस्तान में दस हज़ार से अधिक आदमी नहीं रहते। देश-विदेश में बाज़ारू चीज़ें बेचते फिरना यही एकमात्र उनकी आजीविका है। उसे यह न मालूम था कि वहां भी शिल्प और वाणिज्य की धूम है, वहां भी राजा और राजतंत्र स्थापित है, सेना और सेनापति वहां भी हैं, और ज़रूरत पड़ने पर वहां के हज़ारों वीर इङ्गलैंड के मान और गौरव की रक्षा के लिए प्राणपण से आगे बढ़ने में तनिक भी न हिचकिचायेंगे। अलीवर्दी जब अङ्गरेज़ों के साथ दंगा-फ़साद करने का निषेध करता तो सिराजुद्दौला उसके वास्तव कारण को न जानकर डरपोक और कायर कहकर वृद्ध नाना का तिरस्कार करने से तनिक न डरता था। सिराजुद्दौला की अवज्ञा-पूर्ण निरंकुशता का परिचय देने के लिए एक फ्रांसीसी लेखक ने लिखा है:—"सिराज

कहता था कि यूरोपियनों को शासित करने के लिए और किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं, सिर्फ़ एक जोड़ी चट्टी जूता चाहिये।"*

अलीवर्दी मराठों को दमन करने में व्यस्त रहने के कारण अंगरेज़ों के अत्याचारों को सुन जानकर भी उनके प्रतिकार की कोई चेष्टा न करता था, बल्कि अङ्गरेज़ों के सम्बन्ध में सिराजुद्दौला के बढ़ते हुए विद्वेष का परिचय पाकर वह प्रायः स्पष्ट ही कहा करता था कि "दुर्दान्त सिराज शीघ्र ही अङ्गरेज़ों से युद्ध ठान देगा, और इसीसे किसी समय उसका राज्य अङ्गरेज़ों के हाथ में चला जायगा।" परन्तु सिराजुद्दौला इन बातों पर ध्यान नहीं देता था, उसका विश्वास था कि एक साधारण मार मारने ही से अङ्गरेज़ लोग अपना सारा बोरिया बंधना, बहीखाता मालगोदाम समेट समाट कर प्राण लेकर भागने का भी रास्ता न पायेंगे। सिराज ने जब एक बार वास्तव में अङ्गरेज़ों पर आक्रमण करने की अलीवर्दी से अनुमति मांगी तब नवाब ने उसके उत्तर में यही कहा कि "स्थल-मार्ग में महाराष्ट्र-सेना ने युद्धाग्नि की प्रचंड ज्वाला जला रक्खी है, उसी को शान्त करना कठिन हो रहा है। ऐसे समय में यदि अङ्गरेज़ों के सामरिक जहाज़ भी समुद्र में अग्निवर्षा करने लगेंगे तो उस प्रचंड बड़वानल का निवारण कैसे होगा ?"

उसी सिराजुद्दौला के यौवराज्याभिषेक की ख़बर पाकर अङ्गरेज़ों में बड़ी खुशी फैल गई। ये लोग उस वक़्त भी नवाब की कृपा के भिखारी वणिकमात्र थे। नवाब के दरबार में इनकी कुछ इज़्ज़त न थी। ये केवल रुपये के बल से व्यापार

---

* हिल्स बंगाल इन १७५६-५७ इन्ट्रोडक्शन।

के स्वत्वों की रक्षा करते आते थे। उस ज़माने में रिश्वत का बाज़ार खूब गरम था। अङ्गरेज़ लोग इसी महामंत्र के बल से नवाब और नवाब-दरबार के अमीर वज़ीरों को सर्वदा संतुष्ट रखते थे। नवाब को प्रसन्न रखने और उसकी दयादृष्टि को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वे प्रायः खूब ही अपव्यय करते थे। परन्तु इतना करने पर भी निश्चिन्त नहीं रह सकते थे। हुगली का फ़ौजदार उनसे २७००) रुपया वार्षिक टैक्स लेता था। ढाके में राजवल्लभ अङ्गरेज़ों की कोठियां बन्द करके, नावें रोककर, कोठीवालों को फाटक में देकर खाद्य-पदार्थों को बन्द करके मनमानी रिश्वत वसूल करता था। इन सब कारणों से अङ्गरेज़ लोग मुसलमानी शासन से पूर्णतया सहानुभूति नहीं रखते थे, और मुसलमान लोग भी केवल वणिकमात्र समझ-कर अङ्गरेज़ों का कुछ मान सम्मान नहीं करते थे। मुसलमान उस समय राजा थे और अङ्गरेज़ उनकी पदाश्रित प्रजा! पेट के वास्ते विचारे जन्मभूमि, भाई-बन्धु, सुख-शान्ति सब कुछ छोड़ एक अपरिचित देश में आकर, ग़ैर जातिवालों के साथ मिल मिलाकर, व्यापार-व्यवसाय कर रहे थे। अत-एव उनके मन में जो कुछ रहा हो, किन्तु वाह्य व्यवहारों से वे मुसलमान नवाबों पर अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने में किञ्चित् त्रुटि नहीं करते थे।

अलीवर्दी बङ्गाल के निवासियों में बहुत सरल-स्वभाव, प्रजाहितैषी और धर्मात्मा नवाब प्रसिद्ध था। परन्तु कलकत्ते के अङ्गरेज़ों में उसकी ऐसी प्रतिष्ठा न थी। १७३९ ई० में जनवरी महीने की पहली तारीख़ को कलकत्ते के प्रधान कर्मचारी बारवल साहब को नवाब के दरबार से निम्नलिखित पत्र मिला :—

"हुगली के सैयद, मुग़ल, अरमानी आदि सौदागरों ने दावा किया है कि तुमने उनके कई लाख के माल से भरे हुए कतिपय जहाज़ लूट लिये हैं। आन्टनि नामक एक सौदागर कई लाख के माल के साथ ही साथ हमें नज़र देने के वास्ते कुछ बहुमूल्य वस्तुएं लिये आ रहा था, सुना है कि तुमने वह जहाज़ भी लूट लिया! ये सब व्यापारी हमारे राज्य के शुभचिन्तक और हितैषी हैं। हम इनके दावे की उपेक्षा नहीं कर सकते। हमने तुमको वाणिज्य करने का अधिकार दिया है न कि डाका डालने और लूटमार मचाने का। यदि इस राजाज्ञा को पाते ही तुम इन सब व्यापारियों का हर्जा नहीं चुका दोगे तो हम बहुत कड़ी सज़ा का हुक्म देंगे।

यह पत्र पाकर कलकत्ते के अङ्गरेज़ों ने गुप्त सलाह मशवरा करके उसके प्रतिवाद में एक पत्र भेजा। जिसमें अपने अपराध को उन्होंने अस्वीकार किया, और इधर दावा करनेवाले महाजनों की खुशामद बरामद करके मुक्ति-पत्र (बाज़दावा) लिखा लेने के लिए तरह तरह की चेष्टाएं करने लगे। परन्तु किसी से कुछ न बन पड़ा। अङ्गरेज़ों की ओर से आज्ञापालन में विलम्ब देखकर नवाब ने उनका व्यापार बन्द कर दिया। निरुपाय होकर अङ्गरेज़ों ने जगत्-सेठ की शरण ली। इस घटना से सिराजुद्दौला को बड़ी प्रसन्नता हुई। इतने दिनों के बाद अङ्गरेज़ों को दण्ड देने का सुयोग पाकर वह नाना अलीवर्दी को उत्तेजित करने लगा। परन्तु जगत्-सेठ की अनुकम्पा से अङ्गरेज़ लोग इस बार बच गये, और बहुत कुछ अनुनय विनय करके ३ लाख रुपया अर्थ-दण्ड देने पर उन्हें फिर से वाणिज्य का अधिकार प्राप्त हुआ।

युवराज होने पर सिराजुद्दौला राज्य को देखने भालने के लिए निकला। उस समय तक अङ्गरेज़ों के पास फ़ौज नहीं थी। चाटुकारी और खुशामद बरामद से काम न निकलने पर रिश्वत का सहारा लेना पड़ता था। विलायत के अधिकारी भी इसी का समर्थन करते थे। नवाब के दरबार में किसी अफ़सर की पद-वृद्धि सुनकर अङ्गरेज़ लोगों का चेहरा सूखने लगता था; क्योंकि उसे प्रसन्न करने और उसकी दया-दृष्टि के पात्र बनने के लिए इन बेचारों को नज़र-भेंट देनी होती थी। अतएव सिराजुद्दौला के राज्य-परिभ्रमण की ख़बर से अङ्गरेज़ों को बड़ी चिन्ता हुई।

सिराजुद्दौला के हुगली में पदार्पण करते ही चारो ओर से स्वागत की धूम मच गई। फरासीसों और डेनिशों ने सबसे पहले हुगली में आकर सिराज का स्वागत किया। उस समय महाराज नन्दकुमार और ख़्वाजावाजिद हुगली के सर्वाधिकारी थे। उनकी कृपा से फरासीसों और डेनिशों ने सिराजुद्दौला की शुभ दृष्टि के भागी बनकर अपने को धन्य समझा। अङ्गरेज़ों को अनुपस्थित देखकर फ़ौजदार ने उन्हें भी तलब किया। अङ्गरेज़ों का मुखिया बहुत कुछ नज़र भेंट लेकर उपस्थित हुआ, और बड़े सम्मान-पूर्वक सिराज के सामने ज़ानू गिराकर बैठा। इस उपलक्ष में अङ्गरेज़ों का १५,५६०) रुपया ख़र्च हुआ। किस चीज़ में क्या ख़र्च पड़ा, इसके हिसाब का विवरण अंगरेज़ों ने यत्नपूर्वक लिख रक्खा है, जिससे उस समय के आचार-व्यवहार का बहुत कुछ परिचय मिलता है:—

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७५ मोहरें | ५७७) | एक हीरा | १४३६) |

| | | | |
|---|---|---|---|
| नक़द रुपया | ५५००) | २६ मोहरें अली-वर्दी की बेगम की नज़र के लिए | ४२६ |
| मोमबत्ती | ११००) | | |
| घड़ी | ८८०) | फ़क़ीरों की विदाई में | १८४) |
| दो जोड़ा आरसी | ५०) | हुगली के शेख़ों को | ७५६) |
| संगमर्मर के दोखंड | २२०) | हुगली के फ़ौजदार की | |
| एक पिस्तौल | ११०) | नज़र इत्यादि। | ७७०) |

नहीं मालूम सिराजुद्दौला इस सब सामान की नज़र से संतुष्ट हुआ या नहीं, परन्तु अङ्गरेज़ों को विश्वास हो गया कि वह हमसे बहुत राज़ी हुआ; और इससे अपने को कृतार्थ समझकर १८ सितम्बर सन् १७५२ को कलकत्ते के अङ्गरेज़ों ने एक पत्र-द्वारा यह शुभ संवाद विलायतको भेजा।

अङ्गरेज़ों के इस पत्र को पढ़ने से जान पड़ता है कि सिराजुद्दौला की मति-गति को फेरने के लिए बहुत कुछ नज़र-भेंट और घूस-रिश्वत देकर भी उन्हें भली भांति निश्चिन्त रहने का साहस न हुआ, और जो दिन ज़रा आराम से गुज़रे उन्हीं पर उन्होंने बड़ा हर्ष प्रकट किया।

इस वार राज्य-परिभ्रमण में भिन्न भिन्न स्थानों पर सिराजुद्दौला को जिस प्रकार बहुत सी नज़र-भेंटें प्राप्त हुईं, उसी प्रकार जहां तहां उसके और उसके अमले वालों के अत्याचार से लोगों को उसके प्राबल्य का भी भली भांति परिचय मिल गया। इधर महाराष्ट्र-युद्ध में रात दिन सफ़र करने और बाहर डेरों में रहने से अलीवर्दी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा, अतएव इस समय ही से सिराजुद्दौला ने अधिकांश राज्य-कार्य करना आरम्भ किया।

इस समय अङ्गरेज़ भारतवर्ष के राजा हैं। जिस देश की प्रजा-शक्ति को पद-दलित करके मुग़ल, पठान आदि मुसलमान बादशाहों ने कई शताब्दियों तक राज्य-शासन किया था, उस देश के लोगों को साधारण अत्याचार और अविचारों को चुपचाप सह लेने की आदत पड़ गई थी। अतएव राजा के द्वारा कोई सामान्य अत्याचार होने पर भी वे सहसा अपना असंतोष और दुःख प्रकट करने की चेष्टा नहीं करते थे। परन्तु उस समय के अङ्गरेज़ केवल वणिक होकर भी मौक़ा पाकर भोलीभाली प्रजा को सताने से नहीं चूकते थे। इस देश के निवासियों को आरम्भ ही से वे लोग "काला आदमी" कहकर नाक भौहें सिकोड़ा करते थे। काले आदमी बिचारे बड़ी मुसीबत में थे। उनकी यह ज़िल्लत देखकर सिराजुद्दौला उनके स्वार्थों की रक्षा के लिए अग्रसर हुआ। उसने प्रत्येक अड्डे पर अङ्गरेज़ों की नावें रोककर इसकी जांच पड़ताल करनी शुरू की कि ये वास्तव में कम्पनी की नौकाएं हैं अथवा अन्य धन-लोलुप अङ्गरेज़ सौदागरों की। इस जांच से जब यह ज्ञात हुआ कि कम्पनी के नाम की दुहाई देकर अङ्गरेज़मात्र निःशुल्क वाणिज्य करते चले आ रहे हैं तब तो जो वास्तव में कम्पनी की नौकाएं थीं उनपर भी सन्देह होने लगा, और अन्त में कम्पनी के अङ्गरेज़ भी बिना कुछ रिश्वत दिये छुटकारा न पा सके। इस सम्बन्ध में कलकत्ते की अङ्गरेज़ी अदालत में बहुत से दावे दायर होने लगे।

राज्य-कार्य की देखभाल के समय सिराजुद्दौला ने अङ्गरेज़ों के वाणिज्य-कौशल, कपट-व्यवहार और जाली कार्रवाइयों को पकड़कर उन्हें दण्ड देना शुरू किया। 'मेरी'

नामक एक जहाज़ की इस तरह बड़ी दुर्दशा की गई। जिससे पीड़ित होकर हालवेल साहब ने अङ्गरेज़ी दरबार में यह दावा किया कि "कम्पनी का जहाज़ न होने पर भी 'मेरी' ने निःशुल्क वाणिज्य करने का परवाना हासिल किया था, और इसी प्रकार अङ्गरेज़मात्र को निःशुल्क व्यापार के द्वारा रुपया पैदा करने का मौक़ा न देने पर उनकी दुर्दशा का अंत न रहेगा।" यही हालवेल का दावा था। निदान अब अङ्गरेज़मात्र ही सिराजुद्दौला के बैरी बन गये।

जब ये सब बातें धीरे धीरे विलायत के अधिकारियों के कानों तक पहुंची तो वे कम्पनी को पहली नीति का अनुसरण करने अर्थात् नवाब को संतुष्ट रखने के लिए कुछ अधिक रुपया ख़र्च करके झगड़ा फ़साद मिटाने की राय देने लगे।

विवश हो कलकत्ते के अङ्गरेज़ कुछ और नज़र-भेंट लेकर सिराजुद्दौला के पास हाज़िर हुए। परन्तु फिर भी दोनों पक्षों के बीच का मनोमालिन्य दूर नहीं हुआ। केवल वाह्य उत्पीड़न से अङ्गरेज़ों का कुछ दिन के लिए अवकाश मिल गया।

---

# सातवां परिच्छेद।

## इन्द्रिय-विकार।

सिराजुद्दौला के समाधि-मन्दिर की ओर लक्ष्य करके एक सुलेखक ने लिखा है :—

"अलीवर्दी के पास ही उसका प्रीतिभाजन दौहित्र सिराजुद्दौला सो रहा है। यही सिराजुद्दौला गर्भिणी स्त्रियों के उदरों को, गर्भस्थित संतान की दशा देखने के लिए, विदीर्ण करता था! राजमहल में बैठकर मृतःप्राय जनों का अंग-विक्षोभ देखकर प्रसन्न होने के लिए नाव में स्त्री पुरुषों को बंधवाकर उसे डुबाने की आज्ञा देता, अनेक उप-पत्नियों को महल के कमरों में जीते जी गाड़कर ईटों में दबा देता, पर-पुरुष-गामिनी माता के व्यभिचार का प्रतिशोध लेने के लिए स्त्रीमात्र के सतीत्व का नाश करता, तलवार और बर्छा-धारिणी तातार, जर्जिया और हबशी देश की स्त्रियों को अन्तः-पुर के द्वार पर रक्षा के लिए तैनात रखता, मुर्शिदाबाद की आम सड़कों पर खुले ख़ज़ाने नरहत्या करता एवं अनेक रमणियों के साथ सम्भोग और नरहत्या से पुण्य-संचय करके मोहम्मदीय मत के दो प्रधान उपदेशों का पालन करता हुआ इसलामी चरित्र के आदर्श-रूप में जगमगा रहा था!" इसमें सन्देह नहीं कि इस देश के साधारण निवासियों के मुखों से भी यही बातें सुनी जाती हैं, और इतने दिनों के बाद अब इन सब बातों के सत्यासत्य-विवेचन की चेष्टा

करना व्यर्थ ही है तथापि इन अफ़वाहों और जनश्रुतियों को सच्चा मान लेने से पहले दो एक बातों की आलोचना करना आवश्यक है।

जिन लेखक महाशय ने एक हतभाग्य राजा के समाधि-मन्दिर के जीर्ण फाटक पर खड़े होकर भी उसको और उसके धर्म-प्रवर्तक मोहम्मद को लक्ष्य कर लम्बे चौड़े वाक्य लिख सरसता और पदलालित्य का विकाश करने में क़लम तोड़ दी है वे आजकल के एक अङ्गरेज़ी शिक्षित नवयुवक हैं! तात्कालिक अङ्गरेज़ और बंगालियों ने मिलकर जिस सिराजुद्दौला को सिंहासनाच्युत किया था, वह परवर्ती अङ्गरेज़ और बंगालियों से भी न्यायोचित फ़ैसला न पा सका। बंगालियों ने सिराजुद्दौला को क्यों गद्दी से उतारा था, आज तक इस पर विचार नहीं हुआ! परन्तु इस देश में वाणिज्य करने के लिए आकर राजद्रोहियों के साथ गुप्त मंत्रणाओं में मिल अङ्गरेज़ों ने किस लिए सिराजुद्दौला के सर्वनाश में सहायता की थी--इङ्गलैंड के निवासियों ने इसपर विचार किया था। उसी विचार में अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए अङ्गरेज़ अभियुक्तों ने सिराजुद्दौला के विषय में जिन मिथ्या अपवादों और झूठे कलंकों की अफ़-वाहें उड़ाई थीं, उन्हीं को सच्ची घटनाएँ मानकर आजकल के इतिहास में आदर के साथ स्थान दिया गया है।

मुग़ल-साम्राज्य के अधःपतन-काल में भारतवर्ष के सभी प्रदेशों में न्यूनाधिक अराजकता का सूत्रपात हुआ। बङ्गाल में पुनः मराठों के उपद्रवों से अराजकता बढ़ने लगी। सुयोग पाकर अलीवर्दी ने बादशाह को कर देना बन्द कर दिया। ज़मींदार भी स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए अग्रसर हुए। यह

आरम्भ ही में जाना जा चुका था कि सिराजुद्दौला इस अराजकता को दबाकर बाग़ियों के साथ कड़ी दण्ड-नीति का प्रयोग करेगा, और ज़रूरत पड़ने पर दुष्टों का दमन करने में कोई दक़ीक़ा उठा न रक्खेगा। इसीलिए सब लोग मिलकर सिराजुद्दौला के सर्वनाश का उपाय सोचा करते थे! क्या अङ्गरेज़ क्या बङ्गाली अपने अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए आवश्यकतानुसार कोई कुछ कसर न करते थे। अतएव उनके अपवादात्मक कथनों को सत्य मानकर इतिहास ने सिराजुद्दौला के तनिक से पाप के प्रतिकार में बड़े भारी दण्ड की व्यवस्था की है।

अङ्गरेज़ों के इतिहास में प्रायः सिराजुद्दौला की अपकीर्ति और दुश्चरित्रों का उल्लेख है। यथास्थान हम उनकी आलोचना करेंगे। बङ्गालियों ने सिराजुद्दौला पर केवल इन्द्रिय-परायणता, अर्थ-लोलुपता और उद्दण्डता का दोष आरोपित किया है। यद्यपि इसमें भी कुछ अत्युक्ति है तथापि यह सरासर मिथ्या नहीं। परन्तु सत्य होने पर भी जिन कारणों से सिराजुद्दौला के हृदय में इन्द्रिय-विकार, अर्थ-लोलुपता इत्यादि दोषों का आविर्भाव हुआ था, उनके मूल का अनुसंधान करने की ज़रूरत है।

नाना के असंगत लाड़ प्यार के कारण सिराजुद्दौला के बाल्य-जीवन में सुशिक्षा का बीज न बोया जा सका। स्वार्थियों ने मौक़ा पाकर अपना मतलब गांठने के लिए अदूरदर्शी नौजवान को अनुचित प्रलोभनों के मार्ग में घसीट लिया! उस ज़माने के नवाबों में भोग-विलास कोई विशेष दोष नहीं माना जाता था। अतएव जिन्होंने सिराजुद्दौला के अन्तःपुर में हज़ारों बांदियां देखकर उसे बदनाम किया है उन्होंने

उस समय की समाज-नीति पर लक्ष्य रखकर सिराजुद्दौला के चरित्र की समालोचना नहीं की है।

उस ज़माने के राजा और बादशाह समाज के नियमों का उल्लंघन कर स्वेच्छा से जीवन बिताते थे। सामाजिक व्यवहारों में उनके साथ मिलने का अधिकार बहुत थोड़े आदमियों को प्राप्त होता था। प्रायः उनके दर्शन तक लोगों को नसीब नहीं होते थे। अन्तःपुर और विहार-भवनों के अन्दर पड़े हुए वे जिन निन्दनीय और धर्म-विरुद्ध कामों में फंसे रहते थे, उनका हाल बाहर के लोग- रंचमात्र भी नहीं जान सकते थे। अतएव कल्पना-लोलुप सर्वसाधारण अपनी कल्पित बातों से ही प्रायः तिल का ताड़ बनाते रहते थे।

अलीवर्दी के सदृश धार्मिकजीवन और पुण्य-आचरण की आशा सिराजुद्दौला से कोई न करता था। इन्द्रिय-विकार मुसलमान बादशाहों का एक साधारण दोष रहा है। सिर्फ़ दो ही एक बादशाह ऐसे हुए हैं जो इस कलंक से मुक्त रहकर लोक और समाज में आदरणीय हुए। परन्तु सभी बादशाहों के चरित्र में उस जितेन्द्रियता की आशा लोग नहीं करते थे। अस्तु, अन्य सद्गुणों के रहने पर केवल ऐयाशी और इन्द्रिय-परायणता के दोष को लेकर लोग बादशाहों के विषय में कुछ कहासुनी नहीं करते थे, बल्कि कोई कोई तो अपना स्वार्थ साधने के लिए बादशाहों को पाप-पथ में सहायता देकर धन पैदा करने में भी लज्जित नहीं होते थे, और न इसके लिए वे लोक और समाज में निन्दा-भाजन होते थे।

उस ज़माने के अङ्गरेज़ भी किसी क़दर ऐयाश हो गये थे। पलासी-युद्ध के अन्त में सिराजुद्दौला के शिबिर की बहुतेरी वेश्याओं को भागने का मौक़ा नहीं मिला। मीरजाफ़र

ने उन सबको आदर-पूर्वक बुलाकर क्लाइव की कोठी पर भेज दिया था। इच्छा न रहते हुए भी बड़े आदमियों को लोग पाप-पथ पर घसीट लेते हैं। ऐसे ही लोगों ने मिलकर सिराजुद्दौला को इन्द्रिय-विकार के पाप-पंक में लिप्त किया था।

स्वरूपवान्, नवयुवक, और नवाब अलीवर्दी का परम प्रीति-भाजन, होने के कारण सर्वसाधारण में सिराजुद्दौला का बड़ा मान था। जब लोगों को मालूम हुआ कि सिराजुद्दौला ही बङ्गाल, बिहार और उड़ीसे का भावी नवाब है तब वे विविध उपायों से सिराजुद्दौला पर अपना आधिपत्य जमाने की चेष्टा करने लगे। सिराज बड़ा उच्छृङ्खल, स्वाधीन-चित्त और तेजस्वी नौजवान था। किसी अन्य उपाय से उसे क़ाबू में लाना सहज न था, इसलिए लोगों ने यौवन के सुलभ दुराचरणों की सहायता से उसके साथ मिलना जुलना शुरू किया।

संग-दोष के कारण यौवनारम्भ से पहले ही सिराजुद्दौला धीरे धीरे थोड़ी बहुत शराब पीना सीख गया था। जिस समय शरीर और मन में यौवन-जल-तरंग की हिलोरें उठने लगीं तो कुसंग-दोष से अनुचित पाप-वासनाओं को चरितार्थ करना भी उसने सीख लिया! इसमें सिराजुद्दौला का जितना दोष है उससे कहीं अधिक अपराध उसके उन साथियों का है, जिन्होंने बुरे प्रलोभनों में फंसाकर उसे दुराचार के लिए उत्साहित किया था। ये लोग कौन थे, किस श्रेणी के आदमी थे और किस उद्देश्य से सिराजुद्दौला के साथ अहर्निश छाया की भांति रहा करते थे, इतिहास में इन बातों का कहीं ज़िक्र नहीं है। जो वास्तव में अप-

राधी थे वे तो कोरे निर्दोष छोड़ दिये गये, और उनके प्रलो· भनों के जाल में फंसनेवाले मोहान्ध बालक सिराज ही को उन सबके कलंक सर पर लादकर लोक और समाज में सौ सौ धिक्कारें और डाट-फटकारें सहनी पड़ीं।

जिन लोगों ने सिराजुद्दौला को लोक और समाज में पाप की मूर्ति प्रसिद्ध करके अपने स्वार्थ-साधन का मार्ग निष्कंटक बनाया था वे यदि प्राणपण से उसे बदनाम करने की चेष्टा न करते तो थोड़े ही दिन में लोग ये सब बातें भूल जाते। सम्राट् अकबर के समाधि-मन्दिर के निकट आज सभी श्रेणियों के हिन्दू और मुसलमान अपनी श्रद्धा और भक्ति समर्पण करते हैं। इसी सम्राट् के क़िले की लाल पत्थरवाली चारदीवारी के भीतर बने हुए संगमर्मर के महल में अनेक जातियों, अनेक धर्मों की कुल-कामिनियां उसकी विलास-वासना को चरितार्थ करती थीं, यह इतिहास से भली भांति प्रकट है। तेजस्विनी और अभिमानिनी राजपूत रमणी जोधाबाई का नाम लोगों को अच्छी तरह मालूम है, किन्तु वह भी अकबर की पटरानी होकर सिंहासन के अर्द्धांश की अधिकारिणी हुई थी! आगरे के क़िले में बने हुए नौरोज़ा बाज़ार के कमरे आज भी धूलि-धूसरित नहीं हुए हैं; वहां पर हर साल जिन कुकर्मों का अभिनय हुआ करता था वह भी लोक और समाज में छिपे नहीं हैं। जहांगीर ने कपट-जाल में फंसाकर शेरअफ़गन को मरवा डाला था, और उसकी परम सुन्दरी सहधर्मिणी नूरजहां को सिंहासन पर बैठाकर उसी के नाम का सिक्का जारी करके राज्य-पालन करता था। परन्तु ऐसे परस्त्रीगामी सम्राट् की भी लोग बड़ी इज़्ज़त करते, और दरबार में बड़े अदब के साथ जानू गिराकर उसके सामने

बैठते थे। निदान देखकर, सुनकर और सहकर भी लोग बादशाहों और नवाबों के गुप्त चरित्रों के विषय में कभी किसी तरह की आवाज़ नहीं उठाते थे।

हम सिराजुद्दौला के दुराचार की प्रशंसा नहीं करते हैं, न हम उसकी पाप-लिप्सा ही का समर्थन कर रहे हैं, बल्कि हम केवल उस समय के इतिहास को लेकर उसकी आलोचना कर रहे हैं। उसी इतिहास के कुछ आनुषंगिक प्रमाणों में से, जो इस समय भी पाये जाते हैं, सिर्फ़ दो एक की आलोचना करने ही से सच्ची अवस्था प्रकट हो जायगी।

महाराज मोहन लाल एक प्रसिद्ध आदमी था। बंगाली कवियों ने उसकी वीरता की प्रशंसा में जिन कविताओं की रचना की है, वे बंगाल में घर घर गाई जाती हैं। परन्तु हिन्दू होकर भी मोहनलाल ने किस उद्देश्य से सिराज के सिंहासन और जीवन की रक्षा के लिए अपने प्राण दे दिये थे, कवियों ने इसके मूल कारण पर कुछ विचार नहीं किया।

मोहनलाल एक साधारण आदमी था। नवाब के दरबार में उसकी कुछ प्रतिष्ठा न थी। जिस समय सिराजुद्दौला यौवन-मद में उन्मत्त हो रहा था उस समय अनेक दुराचारी लोग जो उसके साथी बन गये थे उन्हीं में एक मोहनलाल भी था। मोहनलाल की एक बहिन सर्वांगसुन्दरी थी। बंगाल की स्त्रियों में वह परम रूपवती प्रसिद्ध है। यौवन के आरम्भकाल में इसकी रूपराशि का क्रमशः विकाश होने लगा। वह सुन्दरी अत्यन्त क्षीणांगी थी, उसके शरीर का वज़न ३२ बत्तीस सेर से अधिक न था। उसके रूप-लावण्य की प्रशंसा अधिक दिनों तक सिराजुद्दौला से गुप्त न रह सकी, और शीघ्र ही वह सुन्दरी ललना सिराजुद्दौला के अन्तःपुर में प्रविष्ट हुई।

महाराज मानसिंह ने मुसलमानों को अपनी बहिन व्याह कर देश-विदेश में मुग़लों की विजय-पताका फहराई थी। उनके अनेक भाई-बन्धु, कोई सवारों और कोई पैदलों के सेनापति बनकर राज्य के ऊंचे ऊंचे पदों का उपभोग कर रहे थे। वीर मानसिंह का क्षत्रिय-रक्त कभी इस अपमान से उत्तप्त नहीं हुआ! एक बार राणा प्रताप ने इस निन्दनीय कार्य के लिए मानसिंह से कुछ व्यंग्य वचन कहे थे। परन्तु उनसे लज्जित होना तो दूर रहा, राणा प्रताप को इस अपराध का समुचित दण्ड देने के लिए मानसिंह ने सम्राट् अकबर को उत्तेजित किया, और राजपूत-गौरव-रवि महाराणा प्रतापसिंह को अनेक युद्धों में पराजित और उत्पीड़ित कर घर से निकाल और जंगलों में घुमाकर भी मानसिंह के मन का क्षोभ दूर नहीं हुआ। इसका एकमात्र कारण यही था कि मानसिंह ने जानबूझ कर ही मुग़लों को अपनी बहिन दी थी।

मोहनलाल का इतिहास भी ऐसा ही है। वह एक सामान्य पद से सिराजुद्दौला के प्रधानमंत्री के पद पर पहुंचा था। साधारण सैनिक होकर भी भविष्य में उसने "महाराज" की उपाधि पाई थी। उसका पुत्र पुर्निया का नवाब था, और जिस समय देश के सभी राजा एवं ज़मींदार सिराजुद्दौला को गद्दी से उतारने के लिए अग्रसर हुए, उस समय अकेले मोहनलाल ने असाधारण वीरत्व-कौशल दिखाकर सिराज के सिंहासन की रक्षा के लिए अपने प्राण दे दिये थे। मोहनलाल के सदृश वीर पुरुष ने यदि राज़ी से सिराजुद्दौला को अपनी बहिन न दी होती तो क्या वह मरते दम तक इस उत्साह से सिराज के कल्याण-साधन में सहायक हो सकता था?

इसी तरह और भी बहुतेरे लोगों ने सिराज पर अपना आधिपत्य जमाने की चेष्टा की थी। परन्तु इतिहास में उनका परिचय नहीं मिलता। राज्य-परिभ्रमण के अवसर पर सिराजुद्दौला जहां जहां जाता था वहां के ज़मींदार, रईस और फ़ौजदार लोग उसे प्रसन्न करने और उसकी दयादृष्टि के पात्र बनने के लिए अनेक सुन्दरी ललनाओं का सर्वनाश करने के लिए उसे मजबूर करते थे, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

छल से, बल से, अथवा धन के प्रलोभन से अनेक कुल-कामिनियां सिराज की अंकशायिनी हुई थीं। परन्तु सिराजुद्दौला उनको, रात्रि के अन्त में सुगन्ध से रहित पुष्पहार के समान, कूड़े के ढेर के साथ सड़क पर नहीं फेंक देता था, बल्कि वह उन सबको यथायोग्य सम्मान के साथ अन्तःपुर में रखता था, और इसी वास्ते उसके अन्तःपुर में हथियारबन्द, होशियार सिपाही महल की रक्षा के लिए द्वार पर तैनात रहते थे। सिराजुद्दौला के अधःपतन के बाद उसके अन्तःपुर में जो कई सौ रमणियां द्वारपालों से रक्षित रहकर निवास करती थीं, उनकी संख्या से अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक आश्चर्य-चकित हो गये थे। परन्तु वे किस की रमणी हैं और सिराजुद्दौला के महल में कैसे आईं, इसके रहस्य की खोज किसी ने नहीं की। कुछ समय के बाद जब उन स्त्रियों को अङ्गरेज़ों की कृपा से निर्वाह-वृत्ति दी गई तब कुछ वास्तविक अवस्था प्रकट हुई थी, और उनमें से अधिकांश सरफ़राज़ खां की बेगमें थीं, इसका उल्लेख अङ्गरेज़ों के राज्य-सम्बन्धी काग़ज़-पत्रों में हुआ था। परन्तु इतिहास-लेखकों को उक्त भ्रम के संशोधन की ज़रूरत नहीं पड़ी। सिराजुद्दौला के समकालीन अङ्गरेज़ और

मुसलमान इतिहास-लेखकों ने जो इतिहास लिपिबद्ध किया है उसमें सिराज की अनेक कुकीर्तियों का उल्लेख है, परन्तु उनमें भी गर्भिणी स्त्रियों का गर्भ विदारण करने, नाव पर सवार स्त्री-पुरुषों को गंगा में डुबोने इत्यादि अद्भुत अत्याचारों का कहीं ज़िक्र तक नहीं है। अतएव यही कहना पर्याप्त है कि वे सर्वथा निर्मूल और "कपोल-कल्पित" हैं।

---

# आठवां परिच्छेद ।

## ज़मींदारों को भय ।

मराठों के उपद्रवों को शान्त करने में अलीवर्दी का सारा ख़ज़ाना ख़ाली हो गया था। आवश्यक व्यय के लिए भी प्रायः ऋण लेना पड़ता था। आज वहां, कल वहां, कभी हाथी पर, कभी घोड़े पर, कभी उड़ीसे में, कभी बिहार में, तलवार लेकर शत्रुओं के पीछे दौड़ते दौड़ते वयोवृद्ध अलीवर्दी का शरीर अनेक व्याधियों से ग्रस्त हो गया। इतना करने पर भी वह मराठों का उपद्रव शान्त न कर सका। कभी यहां, कभी वहां निरन्तर बाहर डेरों में रहने के कारण राज्य-कार्य में योग देने का समय नहीं मिला। राजधानी में रहकर राज्य-प्रबंध की चेष्टा करने पर मराठों के उपद्रवों से नगर और देहातों में हाहाकार मचने लगता था। निदान अलीवर्दी प्रजा की रक्षा के लिए शत्रु-सेना के पीछे दौड़ते दौड़ते अंत में थक गया; परन्तु जिसके धन-मान की रक्षा के लिए इतने दिन प्राण देता रहा उस प्रजा के दुःख-जनित हाहाकार को वह एक वर्ष के लिए भी शान्त न कर सका। इधर मराठों के सिपहसालार ने भी अलीवर्दी के सदृश प्रबल प्रतिद्वंद्वी के साथ रातदिन युद्ध में फंसे रहने के कारण एक दिन भी दम लेने का मौक़ा न पाया था। अतएव सन् १७५१ में संधि का प्रस्ताव उपस्थित

हुआ, और दोनों पक्षों मे बड़े आनन्द और आग्रह के साथ इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया ।

बहुत बरसों के बाद युद्ध-कोलाहल शान्त हुआ । मराठों के साथ संधि हो गई । सुवर्णरेखा नदी उड़ीसा और बङ्गाल की सीमा निश्चित हुई । संधिपत्र में लिखा गया कि यदि महाराष्ट्र लोग सुवर्णरेखा नदी के पार आने की चेष्टा न करें तो नवाब उनको १२ लाख रुपया सालाना चौथ अदा करेगा।

संधि हो गई, परन्तु चौथ अदा करने का उपाय कुछ न हुआ । विवश हो अलीवर्दी ने ज़मींदारों से राय लेकर "चौथ मराठा" नामक एक नया कर क़ायम किया, और नवाब-सरकार का ख़र्च कम करने के लिए अधिकांश फ़ौज को बरख़ास्त कर दिया । देश में शान्ति स्थापित होगई ।

अलीवर्दी के पूर्ववर्ती नवाबों के ज़माने में ज़मींदारों का विशेष आधिपत्य नहीं था । यथासमय राज्य का कर न अदा करने पर उन्हें बड़े क्लेश भोगने पड़ते थे । कोई क़ैद होते थे, किसी की ज़मींदारी छीनकर दूसरों को दे दी जाती थी, किसी किसी को प्राणदण्ड तक दिया जाता था । परंतु अलीवर्दी ने ज़मींदारों ही की सहायता और जगत्-सेठ की कृपा से राज्य प्राप्त किया था, इसलिए उसके शासन-काल में ज़मींदार लोग ही वास्तव में सिंहासन के मालिक बन गये थे । अलीवर्दी उनके साथ मिलकर शत्रुओं से लड़ता था, और ज़मींदारों की राय लिये बिना किसी काम में हस्तक्षेप न करता था। सिराजुद्दौला को यह अच्छा न लगता था । ज़मींदारों को भी उसके लक्षणों से यह अच्छी तरह ज्ञात हो गया था कि सिंहा-सन पर बैठते ही सिराज स्वभावतः ही दुष्टों को दमन करने

की पूरी व्यवस्था करेगा। अतएव अलीवर्दी के बीमार होने पर स्वयम् सिराजुद्दौला को राज्य-कार्य में तत्पर हुआ देखकर ज़मींदार लोग बड़े भयभीत हुए।

इन सब ज़मींदारों में परस्पर मेल-मिलाप बढ़ने लगा। सभी को अपने भविष्य की चिन्ता लग गई। उस ज़माने में राजशाही की ज़मींदारी बंगाल में, बल्कि सारे भारतवर्ष में, सब से बड़ी ज़मींदारी थी। उसके चारो ओर घूमने में ३५ दिन लगते थे। इसी प्रदेश पर शासन करके प्रातःस्मरणीया रानी भवानी पुण्य-कीर्ति से अपना नाम सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध कर रही थी। उसके राज्य की सीमा के पास ही महाराज कृष्णचन्द्र की राजधानी थी। उसका राज्य समुद्र के किनारे तक फैला हुआ था। विद्या, बुद्धि, यश और गौरव से कृष्णचन्द्र भी बङ्गालियों में चिरस्मरणीय हो रहा था। इन प्रबल प्रतापी हिन्दू ज़मींदारों की विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता, शासन-कुशलता, शक्ति-शालीनता ऐसी बढ़ी हुई थी कि सहसा इन ज़मींदारों के गौरव और महत्व की उपेक्षा न करने और उनसे बिगाड़ न ठानने पर सिराजुद्दौला का शोचनीय इतिहास किसी और ही रूप में लिखा जाता !

उस वक्त इन ज़मींदारों के स्वार्थ और स्वत्वों की रक्षा के लिए कोई सभा-समिति नहीं थी। राज्य-कार्य के सम्बन्ध में कभी कभी मुर्शिदाबाद आने पर ये जगत्-सेठ के राजमहल में एकत्रित होते थे, और वहीं बैठकर देश की परिस्थिति और सुख-दुःखों की आलोचना किया करते थे। कुछ दिनों में यह सेठ-भवन बङ्गाल के ज़मींदारों का मन्त्रभवन बन गया था। इस समय यह सेठ-भवन गङ्गा के गर्भ में विलीन हो गया है। टूटा फूटा जैसा कुछ वर्तमान है वह भी जंगली वृक्ष-

लताओं से ढक गया है। चारों ओर मानो विषाद की एक ऐसी वायु बह रही है कि आज उस जगह जाकर आंसू बहाना कठिन हो जाता है! वह ऐश्वर्य किसी मंत्र-शक्ति से उड़ाये हुए नदी-किनारे के रेत की तरह एक दम विलीन हो गया। महिमापुर की उस उज्ज्वल महिमा ने मानो किसी के शाप से भयावनी काली मूर्ति धारण की है! जो राजभवन रत्न और मणियों की ज्योति से जगमगा रहा था, अब शाम को उसमें एक साधारण दीपक भी प्रज्ज्वलित नहीं होता। चारों ओर टूटे हुए स्तूप खड़े हैं। उन्हीं के बीच में कई एक टूटे फूटे कमरों में पड़े हुए, इतिहास-विख्यात जगत्-सेठ के वंशज अंगरेज़ों की दी हुई मासिकवृत्ति पर निर्भर रहकर ज्यों त्यों अपना जीवन बिता रहे थे, आज वे भी नहीं हैं।

जगत्-सेठ तथा अन्यान्य ज़मींदारों की बढ़ी हुई शक्ति से सिराजुद्दौला मन ही मन क्षुभित हो रहा था; अतएव ज़मींदार भी उससे असंतुष्ट हो रहे थे। यदि सिराजुद्दौला सादर-सम्भाषण और मधुर वचनों से इन ज़मींदारों का सत्कार करता तो यह असंतोष भविष्य में दूर हो जाता, और उनकी सहायता एवं सहानुभूति प्राप्त करनी भी उसके लिए असम्भव न होती। परन्तु स्वभाव-दोष से सिराजुद्दौला ने मौक़ा हाथ से निकाल दिया। बस, इन्हीं दो कारणों से अलीवर्दी के जीवन-काल ही में सब ज़मींदार सिराजुद्दौला के शत्रुओं के साथ मिल गये।

रानी भवानी विधवा थी। गंगावास के लिए वह मुर्शिदाबाद के पास बड़नगर के राजमहल में रहा करती थी। यह राजमहल अब जीर्ण हो चुका है, परन्तु रानी भवानी के बड़े यत्न से बनवाये हुए देवमन्दिर आज भी साधू-सन्यासियों के निकट बड़े गौरव की वस्तु हैं। रानी भवानी का नाम बङ्गाल

के हिंदुओं में प्रातःस्मरणीय हो गया है। विद्याभिरुचि, स्वदेश-प्रेम, शासन-कुशलता, दानशीलता और दरिद्र-पालन इत्यादि सद्गुणों के कारण अपने देश के निवासियों में वह पूजनीया देवी प्रसिद्ध थी। रानी भवानी की इकलौती कन्या बाल-विधवा तारा भी उसी के साथ बड़नगर में गंगावास करती थी। वह सर्वांगसुन्दरी थी, उसके रूप-लावण्य की सर्वसाधारण में बड़ी प्रशंसा थी। माता के सदाचार का अनुसरण करती हुई, पर-सेवा के हेतु जीवन समर्पित कर बङ्गालियों में शुक्लाम्बरधारिणी, ब्रह्मचारिणी प्रसिद्ध होकर वह सर्वसाधारण की आदरणीया हो गई थी। वैधव्य के कठोर ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन से उसकी सुन्दरता तनिक भी मलीन न होकर और भी अधिक उज्ज्वल हो गई थी। उसके अनुपम रूप-लावण्य की कहानी बहुत दिनों तक सिराजुद्दौला से गुप्त न रह सकी। एक दिन महल के शिखर पर टहलते टहलते राजकुमारी तारा आजानुलम्बित केश-पाशों को खोल-कर स्वच्छन्दतापूर्वक वायु-सेवन कर रही थी। उसी समय सिराजुद्दौला की, भोग-विलास के साज सामानों से परिपूरित नौका क्रीड़वाहिनी गंगा की धारा में धीरे धीरे बहती चली जा रही थी। दुर्भाग्य से उस अनुपम रूप की चमकती हुई ज्योत्स्ना पर, चकोर की भांति, सिराजुद्दौला की पापदृष्टि जा पड़ी। सिराजुद्दौला नौजवान था, उसके हृदय का वेग दुर्द-मनीय था ही, तिसपर संगी साथियों की उत्तेजनाओं के कारण वह सदा ही घमंड में चूर रहता था। निदान वह इस सुन्दरी को हस्तगत करने के लिए उन्मत्त हो उपाय सोचने लगा। मुसलमान इतिहास-लेखकों ने सिराज के इस कलंक का उल्लेख नहीं किया है; परन्तु

हिन्दुओं में इसका क़िस्सा परम्परागत चला आरहा है। यदि सारा राज्य देकर भी सिराजुद्दौला के इस कुविचार का सुधार सम्भव होता तो रानी भवानी उसे दे डालने में भी तनिक आनाकानी न करती। परन्तु सिराज के नाम से सभी के दिल दहल गये। अन्त में रानी भवानी के चतुर मंत्रियों ने एक बड़े समारोह के साथ गंगा के किनारे पर एक चिताकुंड प्रज्ज्वलित किया। धुएं के गुंगाड़ों से किनारों पर अन्धकार छा गया। साथ ही चारो ओर यह अफ़वाह उड़ा दी गई कि राजकुमारी तारा का परलोकवास हो गया। इस युक्तिपूर्ण चाल से तारा का धर्म तो बच गया, परन्तु सिराज की पाप-लिप्सा का नाश हुआ या नहीं, कौन कह सकता था? असली हाल कबतक छिपा रहता? सिराजुद्दौला जिस वक्त सुनता कि तारा अब भी जीवित है तो उसके प्रचण्ड क्रोध को कौन रोकता? अतएव ज़मीदार लोग गुप्तरूप से सिराजुद्दौला के सर्वनाश की चिंता करने लगे। उन्होंने सोचा कि यदि इसके बाद भी सिराजुद्दौला को नवाबी सिंहासन पर बैठने का अवसर दिया जायगा तो वे अपने धर्म और जाति की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ हो जायँगे। सिराज ने न तो वास्तव में किसी निष्कलंक कुल को कलंकित किया था और न यही सम्भव था कि अनेक शत्रुओं के रहते हुए सिंहासन पर बैठकर उसे इन घृणित अत्याचारों को चरितार्थ करने का अवसर मिलता। परन्तु लोगों ने समझा कि वह नवाब होते ही हमारी जाति और धर्म में हस्तक्षेप करेगा, इसी आशंका में वे व्याकुल होने लगे। रानी भवानी के सदृश यशस्विनी, प्रतापशालिनी, परम बुद्धिमती, वीर रमणी भी जिसके भय से नगर छोड़कर भाग गई, बिचारे दुर्बल ज़मीं-

दार यदि उसके डर से जीते हुए मृतक हो रहे थे तो आश्चर्य ही क्या ? सरफ़राज़ खां ने जिस समय जगत्-सेठ की पुत्र-बधू का अपमान किया था तो बङ्गाल के ज़मींदारों ने जगत्-सेठ की मानहानि को अपना ही अपमान समझकर एकप्राण और एकमन होकर सरफ़राज़ के सर्वनाश में सहायता की थी। ज़मींदार लोग जगत्-सेठ के आश्रित थे और जगत्-सेठ की समृद्धि और गौरव की वृद्धि के मूल-कारण भी ज़मींदार ही थे। अतएव चाहे अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए और चाहे स्वदेश के हित-साधन के लिए, जगत्-सेठ को ज़मींदारों की सहायता करनी पड़ी, और सिंहासन पर पदार्पण करने के पहले ही ये लोग सिराजुद्दौला की क़ब्र खोदने का इन्तज़ाम करने लगे।

जगत्-सेठ के प्रताप की महिमा सभी जानते थे। वस्तुतः सारे भारतवर्ष में उसके ऐश्वर्य की अफ़वाहें उड़ रही थीं। वही ऐश्वर्य जगत्-सेठ के मान और गौरव का कारण था। बादशाह फ़र्रुख़सियर तख़्त पर बैठने से पहले कुछ दिन बङ्गाल का राज-प्रतिनिधि रहा था उस समय उसकी दशा बड़ी शोचनीय थी। उसी समय दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार जमाने के लिए उसने जगत्-सेठ की शरण ली थी। शाहज़ादे की प्रार्थना पूरी करने के लिए जगत्-सेठ ने धन से उसे बड़ी सहायता दी। उसी अर्थ-शक्ति के द्वारा फ़र्रुख़सियर ने दिल्ली के सिंहासन को प्राप्त किया। और सेठ-वंश के उपकार को याद कर "जगत्-सेठ" की उपाधि से युक्त एक रत्न मोहर और शाही फ़रमान प्रदान किया। इसके अनुसार जगत्-सेठ को बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के नवाब के बायें पार्श्व में बैठने का मान प्राप्त हुआ, और इस आशय का एक शाही हुक्म

जारी हुआ कि नवाब लोग जगत्-सेठ की इच्छा के विरुद्ध किसी कार्य में हस्तक्षेप न करें। नवाब मुर्शिदकुलीख़ां पहले नवाब का दीवान था। बादशाह उसको किसी तरह नवाब नाज़िम का पद भी प्रदान करने के लिए राज़ी न था; परन्तु अन्त में जगत्-सेठ की कोशिश से मुर्शिदकुलीख़ां नवाबी पद पर आरूढ़ हुआ था। मुर्शिदकुलीख़ां की नवाबी सनद में भी इस बात का उल्लेख है। इन सब कारणों से जगत्-सेठ का मान और गौरव प्रायः नवाब ही के सदृश हो गया था। राजकर संग्रह करने का भार जगत्-सेठ ही के ऊपर था। प्रतिवर्ष बहीखाते के तबादिले के अवसर पर ज़मींदार लोगों को जगत्-सेठ के महल में इकट्ठा होना पड़ता था। राजकर अदा करने में असमर्थ होने पर जगत्-सेठ ही के पास से क़र्ज़ लेकर उसे चुकाना होता था। जगत्-सेठ ही के यहां टकसाल भी थी। इन सब कारणों से जगत्-सेठ के यहां रुपये की बड़ी आमदनी थी, और इसलिए कि पीछे किसी समय कोई अत्याचारी नवाब इस धन-भाण्डार को लूट न ले, जगत्-सेठ के वेतन-भोगी २००० सवार हर समय उसके महल की रक्षा के लिए तैनात रहते थे।

देश में अराजकता फैलने, नवाब के अत्याचार करने अथवा ज़मींदार लोगों के बाग़ी होने पर सब से पहले जगत्-सेठ ही के सर्वनाश की सम्भावना थी। संचित सम्पत्ति लुट जाय अथवा धन के आगम का द्वार ही बन्द हो जाय, जो कुछ भी हो, हर तरह से जगत्-सेठ ही को अधिक भय लगा रहता था; अतएव ज़मींदारों को असंतुष्ट और बाग़ी होते देखकर अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए ही जगत्-सेठ को उनके साथ मिल जाना पड़ा, और उस समय सब लोग

मिलकर सिराजुद्दौला की राज्य-प्राप्ति में बाधा डालने के लिए विविध चालबाज़ियों से गुप्त सलाहें करने लगे।

सिराजुद्दौला मोहान्ध नौजवान था। मुसलमान के घर में जन्म ले और उन्हीं के सहवास में ऐश आराम के साथ पलकर एवं दुराचारी यार दोस्तों से घिरे रहने के कारण उसने हिन्दू-हृदय के गूढ़ मर्म को समझने का मौक़ा कभी नहीं पाया। उसे हिन्दुओं की सामाजिक रीतियों का कुछ भी ज्ञान न था। वह यह नहीं जानता था कि हिन्दुओं में विधवा-विवाह प्रचलित नहीं। मुसलमानों के स्पर्शमात्र के प्रायश्चित्त में उनके यहां गङ्गास्नान की व्यवस्था का प्रचार है। विधवा का ब्रह्मचर्य पूर्णतया प्रतिपालन हो या न हो, पर उसके धर्म-पथ की रक्षा करने के लिए शास्त्र, लोकाचार एवं कर्त्तव्य-बुद्धि ने सभी को समान-भाव से बाध्य कर रक्खा है। विधवा के घूंघट को भेदकर उसके अङ्गों की ओर पाप-दृष्टि से निहारने और उसकी लाज के ग्राहक होने पर, एक दुराचारी, नीच और नाचीज़ हिन्दू भी लाठी लेकर मरने मारने को तैयार हो जायगा, यह सिराजुद्दौला को मालूम न था। उसका विश्वास था कि अपना मतलब गांठने के लिए बहुतेरे खुदग़रज़ हिन्दुओं ने अपनी बहिन-बेटियां देकर मुग़लों की मनोकामनाएं पूरी कीं, अतएव सिंहासन का भावी उत्तराधिकारी होने की दशा में मैं भी उनसे जो कुछ चाहूँगा, भय से अथवा भक्ति से वे तत्काल ही उसे लाकर मेरे क़दमों पर निछावर करेंगे। केवल इस अन्धविश्वास के कारण ही उसने परम ऐश्वर्य-शालिनी रानी-भवानी से उसके अनुपम सौन्दर्य को धन के विनिमय में ख़रीदने का साहस किया था।

इसीसे सिराजुद्दौला के दुर्दमनीय हृदय-वेग का परिचय मिलता है। यदि यह दुर्दमनीयता न होती तो कौन कह सकता है कि उससे ऐसी भूल होती या नहीं ? कुछ दिन में लोग सिराजुद्दौला के इस कुत्सित विचार की बात भूल जाते ! जो पाप-कल्पना केवल कल्पना ही मात्र थी वह इतिहास से सर्वथा ही दूर रहती; परंतु अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए सिराजुद्दौला के सर्वनाश के उपायों में लगे हुए जिन खुदग़रज़ों ने उसके विरुद्ध सर्वसाधारण के चित्त को बिगाड़ रक्खा था उन्होंने इस मौक़े को हाथ से न जाने दिया। स्वयम् रानी-भवानी ने इस विषय में कुछ कहा सुनी नहीं की, बल्कि इस निन्दास्पद बात को तूल न देकर इतने ही से रफ़ा दफ़ा कर देने की चेष्टा की थी। परन्तु राजबल्लभ इत्यादि प्रधान राज-कर्मचारी यह जानते थे कि सिराज के विरुद्ध हिन्दुओं के हृदय में विद्रोह का विष भरने के लिए ऐसा मौक़ा बार बार न मिलेगा। रानी भवानी जो इस देश की प्रातः-स्मरणीया देवी है। जिस देश के निवासी रानीभवानी की उदारता और दानशीलता का स्मरण करके सुबह शाम दोनों हाथ उठाकर उसकी जय मनाते हैं उस देश में सिराजुद्दौला की इस पाप-कल्पना को ख़ूब नमक मिर्च लगाकर प्रसिद्ध करने पर निश्चय है कि सहज ही में सर्वसाधारण को यह विश्वास हो जायगा कि सिराजुद्दौला घोर पापिष्ठ और नर-पिशाच है। राजबल्लभ और जगत्-सेठ को इस युक्ति पर पूरा विश्वास था। अतएव सब लोगों ने बड़े प्रयत्न और आग्रह के साथ सारे देश में यह अफ़वाह फैला दी। परिणाम यह हुआ कि सिंहासन पर बैठने से पहले ही सिराजुद्दौला के नाम को सुनकर लोगों के दिल दहलने लगे।

# नवां परिच्छेद ।

## धन-तृष्णा ।

भारतवर्ष के एक तत्वज्ञानी दार्शनिक ने लिखा है:—

" अर्थमनर्थं भावयनित्यं
नास्ति ततः सुख लेशः सत्यम् ।"

"पात्राधारे घृतम् अथवा घृताधारे पात्रम्" इसी के कूट रहस्य का निराकरण करने में जो लोग सारे दिन अपनी मस्तिष्क-शक्ति का व्यय करते रहते हैं, जो न्याय-शास्त्र के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयों पर टीका-टिप्पणी करने ही में अपनी सारी ज़िन्दगी गुज़ार देते हैं, उनके निकट शायद अर्थ, अनर्थ का मूल है ! "असारे खलु संसारे" जन्म-मरण, निद्रा जागरण के दुःखों से पीड़ित सांसारिक जीवन की अवहेलना करके सूत्र-भाष्यों के सिन्द्धान्तानुकूल जगत् की अपेक्षा भयंकर जीवों से व्याप्त घने जंगलों ही में जीवन बिताना जिन लोगों ने श्रेष्ठ समझा है, उनके निकट शायद धन ही सब पापों की जड़ है ! परन्तु संसार में रहनेवाले लोग जीवन-संग्राम की अनेक असहनीय विपत्तियों में फंसकर प्रबल वायु के झकोरों से उड़ी हुई धूल की तरह देश-विदेश में मारे मारे फिरते और अपना तथा अपने बाल-बच्चों का पेट भरने के लिए अन्न पैदा करने में मस्तक का पसीना बहाकर संसार की सेवा करते हुए पल पल में हृदय का रक्त बहाया करते हैं। वे दार्शनिक तत्व और वैज्ञानिक व्याख्या नहीं जानते।

उनके लिए धन ही सर्वस्व है, अर्थ ही परमार्थ है। जीवन स्थिर रखने के लिए, आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, अपनी रक्षा के लिए, अपना अधिकार जमाने के लिए इस संसार में धन की बड़ी आवश्यकता है। इसीलिए सांसारिक मनुष्यों के जीवन की समालोचना करने पर दार्शनिक व्याख्या को ताक़ में रख संसार-विज्ञान की दैनिक अभिज्ञता को लेकर वास्तविक तत्व का विचार करना पड़ता है।

ख़ाक की ज़मीन पर जन्म लेकर, क्षणभंगुर सिंहासन के लिए सिराजुद्दौला क्यों इतना लालायित है? पानी के बुलबुले की तरह दो दिन में यह सब राजपाट अतलस्पर्शी जीवन-समुद्र की जल-राशि में सहसा विलीन हो जायगा। यह राजसिंहासन, यह चतुरंग-सेना से सुरक्षित रण-पताका गेंद की तरह बात की बात में दूसरों के हाथ में चली जायगी। फिर क्यों सिराजुद्दौला उसकी प्राप्ति के लिए इतनी मग़ज़पिच्ची कर रहा है? जिन्होंने इन बातों पर ध्यान रखकर सिराजुद्दौला के जीवन की समालोचना की है उन्होंने सारे दोष उसी के मत्थे मढ़ दिये हैं। परंतु जिन्होंने संसार-तत्व पर विचार-कर पृथ्वी के अन्यान्य स्वाधीन राजाओं के चरित्रों को सिराजुद्दौला के अपराधों के साथ तराजू में तोला है, उन्होंने यही कहा है कि केवल पिंजराबद्ध सिंह की तरह अन्याय और उच्छृङ्खलतापूर्वक सिराज ही की हत्या नहीं हुई, बल्कि उसका नाम उसकी स्मृति, उसका इतिहास भी अन्याय-पूर्ण आक्रमणों से तोड़ मरोड़कर नाश कर दिया गया! बङ्गालियों ने सिराज पर जो तलवार उठाई उसके दो ही मुख्य कारण हैं, इन्द्रिय-विकार और धन का लालच। पहले की आलोचना हो चुकी, दूसरे की भी होनी आवश्यक है।

मुर्शिदाबाद के सन्निकट मोतीझील थी। इस जगह का पूर्व सौभाग्य अब विलुप्त हो गया है। इस समय वह कांटों के जंगल से घिरी हुई है। परंतु बंगाल के इतिहास में मोतीझील का नाम अमर है। किंडारलि नाम्नी एक अङ्गरेज़ महिला ने १७६६ ई० में मोतीझील के रमणीय स्थान की सैर करके विलायत को जो पत्र लिखा था, उसका कुछ अंश यहां भी पाया जाता है। मूल पत्र इङ्गलैंड के 'ब्रिटिश अजायब घर' में में सुरक्षित है। इस मोतीझील के राजप्रासाद के निर्माण में न जाने कितना रुपया ख़र्च हुआ था। आनन्द-महल के कमरों को सजाने के लिए न जाने कितनी और कहां कहां से लाकर बहुमूल्य विलास-वस्तुएं एकत्रित की गई थीं। परंतु क्या कोई स्वप्न में भी यह जानता था कि भविष्य में किसी दिन यह महल अङ्गरेज़ों का निवास-स्थान होगा, और वे लोग इसे मनमाने रूप में परिणत कर डालेंगे; एवं पीछे से क्रिश्चियन लोग आकर सुअर के मांस से इसे अपवित्र करेंगे, नवाबी परिवार के लोग केवल अङ्गरेज़ों की दी हुई निर्बाह-वृत्ति से गुज़र करेंगे, और देश में आज के साधारण वणिक-अङ्गरेज़ों के प्रबल प्रतापी शासन का डङ्का बजेगा। इस प्रासाद के कोठों में भ्रमण करते समय अङ्गरेज़ महिला किंडारलि उसे बड़े विस्मय और आश्चर्य की दृष्टि से देख रही थीं, और उसके पुरातत्व का स्मरण करते हुए उनके दोनों नेत्र आंसुओं से भर गये थे।

मोतीझील का यह नवाबी महल अब धूलिधूसरित हो चुका है। काले पत्थर का सुरचित विशाल फाटक अब भी टूटा फूटा पड़ा है, परन्तु वह भी सघन वृक्ष-लताओं में दबा हुआ है। गंगा के जल का प्रवाह अब उसकी गोद में

नहीं बहता है, सुन्दर पद्म खिलानेवाले झील के नील जल की अब वह शोभा नहीं है! किनारे पर खड़े हुए वृक्षों में भरी हुई वायु आठों पहर सनसन करती हुई मानों किसी गम्भीर मर्मवेदना पर हाहाकार मचाती बह रही है! झील का जल कीचड़ और शैवाल से गंदला रहता है, लता-निकुंज कांटों से परिपूर्ण हैं! जंगली जंतुओं के सिवा अब वहां मनुष्यों की आबादी भी नहीं है! जिस दिन लार्ड क्लाइव ने दीवानी सनद की घोषणा करके मोतीझील के महल में पहले पहल नज़राना और मालगुज़ारी की अदायगी की सूचना ज़मींदारों को दी थी, और उसके सूने कमरों में वारन् हेस्टिंग्स और सर जान शोर इत्यादि अङ्गरेज़ कर्मचारियों ने अपना वास-स्थान निर्दिष्ट किया था, उस दिन भी किसी को यह न मालूम था कि इस उच्च राजप्रासाद का अन्तिम परिणाम कैसा शोचनीय होगा। जिस प्रकार आज इसलामी राज्य केवल इतिहास ही में रह गया है उसी प्रकार मोतीझील के राजमहल की बातें भी अब केवल इतिहास-गत रह गईं। उसको प्राचीन गौरव से गौरवान्वित देखने का अब कोई उपाय नहीं।

नवाज़िश मोहम्मद ने बहुत रुपया ख़र्च करके अपने रहने के लिए यह महल बनवाया था। जिस पुस्तक में निज़ामत की अर्ज़ियां और चिट्ठियां आदि संग्रहीत हैं, उसके एक पत्र में लिखा है कि नवाज़िश मोहम्मद ने १७४३ ई० में यहां पर एक मसजिद, एक पाठशाला और एक धर्मशाला बनवाई थी। मसजिद तो अबतक सुरक्षित चली आ रही है। मराठों के उत्पातों के भय से नवाज़िश मोहम्मद कभी गोदागाड़ो में और कभी मुर्शिदाबाद में रहता था, और इसीलिए उसने मोतीझील में यह महल बनवाया था। जिस समय

उसने सुना कि अलीवर्दी ने अपने बाद सिराजुद्दौला को अपना उत्तराधिकारी नियत किया है तो उसी वक़्त से वह इसमें बाधा डालने के लिए कटिबद्ध हुआ, और इसी उद्देश से वह मुर्शिदाबाद में आकर रहने लगा।

इस प्रकार स्थायी-रूप से मोतीझील में रहने के समय नवाज़िश मोहम्मद दीन दुखियों की बड़ी सहायता करता था। भूखों को अन्न देता था, रोगियों के लिए ओषधि की व्यवस्था करता था। वह बड़ा सरल-स्वभाव था। उसका व्यव हार विनम्र और सदय था। इन्हीं सब उत्तम गुणों के कारण थोड़े ही दिनों में हिन्दू और मुसलमान सब उसकी बड़ी प्रतिष्ठा करने लगे थे। उसका स्वामिभक्त प्रतिनिधि राजबल्लभ ढाके से जो राजकर वसूल करके भेजता था, नवाज़िश मोह-म्मद उसे ऐसे ही पुण्य-कामों में ख़र्च कर डालता था। इन बातों से लोग उसके गुलाम बन गये थे। अलीवर्दी की ज़िन्दगी का किनारा जितना ही निकट आता गया, नवाज़िश मोह-म्मद की गुप्त अभिसंधि का उतना ही विकाश होता गया। धीरे धीरे राजबल्लभ भी अपने पुत्र कृष्णबल्लभ को ख़ज़ाना वग़ैरा सौंपकर ढाके से मुर्शिदाबाद चला आया। अब सब ने समझ लिया कि अलीवर्दी की इच्छा कुछ भी क्यों न हो, उनका दम निकलते ही निकलते राजबल्लभ की सहायता से बलवान और समृद्धिशाली नवाज़िश मोहम्मद ही बंगाल, बिहार और उड़ीसा की राजगद्दी पर बैठेगा। सिराज के उद्दण्ड व्यवहारों से जो लोग पीड़ित हो रहे थे वे नवाज़िश के दयालु व्यवहार से परम प्रसन्न थे। सिराज अल्पवयस्क बालक और नवाज़िश मोहम्मद प्रौढ़ अनुभवी और परिणाम-दर्शी पुरुष था। जिन लोगों को यह भय था कि तख़्त पर

बैठते ही एवं स्वाधीनतापूर्वक राज-दण्डों के प्रयोग करने का अवसर पाते ही सिराजुद्दौला दुष्टों का दमन करने के लिए मनमाने कठोर दण्डों का प्रयोग करेगा, उन्होंने सोचा कि नवाज़िश ही हमारे मन का नवाब है। जो न कुछ कानों से सुनता है और न आंखों से देखता है। राज्य-कार्य के संबंध में उसके शासन में किसी प्रकार का कोई झगड़ा-फ़साद उठने की सम्भावना नहीं। स्वार्थी कर्मचारी भी सहज ही में नवाजिश के पक्ष में हो गये। मौक़ा देखकर नवाज़िश भी ख़ूब खुले हाथों रुपया ख़र्च करने लगा। ज़मींदार लोग भी प्रायः नवाज़िश ही के दरबार में जाने आने लगे। लोगों ने देखा कि सिराजुद्दौला को जो मासिक वृत्ति मिलती है उसमें जब उसीके आहार विहार का ख़र्च अच्छी तरह पूरा नहीं पड़ता तो उससे क्या कोई सहायता पायेगा। फिर यह किस का साहस होगा जो इच्छा होने पर सिराज़ुद्दौला के सिंह-विवर (राजदर्बार) के सन्मुख जा सके! नवाज़िश के राजमहल का द्वार सर्वदा ही सब के लिए उन्मुक्त है। उसमें प्रवेश करने के लिए न वैसी कोई असुविधा है और न किसी तरह की रोकटोक ही। वहां सब बेधड़क जा सकते हैं। वहां न मान सम्मान के नाज़ नख़रे हैं न तकल्लुफ़ों की भरमार। जो गया वह जो चाहा वहां बैठ गया। न छोटे बड़ों के आसन में कोई अन्तर है और न स्वामी एवं सेवक में कोई भेद-भाव। आगन्तुक अतिथि वास्तव में मोतीझील के स्वामी से होकर रहते हैं और नवाज़िश उनका एक तुच्छ सेवक। निदान इन स्वभावों पर रीझकर लोग दिनोंदिन नवाज़िश ही के सहायक और पक्षपाती बनने लगे।

इन सब कारणों से सिराज़ुद्दौला को बहुत रंज होने लगा।

मराठों के साथ सन्धि संस्थापित करके निर्द्वन्द राज्य-सुख भोगने के लिए अलीवर्दी राजधानी में वापस आया। समय पर बिना खाये और बिना सोये शत्रु-सेनाओं के पीछे दौड़ते दोड़ते उसका पुष्ट और बलिष्ठ शरीर भी अनेक रोगों में ग्रस्त हो गया। वृद्ध अवस्था तिसपर रोग से जर्जरित, ऐसी दशा में अलीवर्दी को राज्य-कार्य में योग देने का मौक़ा नहीं मिला। उसकी इच्छा के अनुसार सिराजुद्दौला ही ने सब राजकाज करना शुरू किया। किन्तु राज्य कार्य में हाथ डालते ही डालते सिराज की मोह-निद्रा भंग हो गई। जिस सिंहासन पर वीर अलीवर्दी बड़ी दृढ़ता और निश्चलता के साथ विराजमान रहता था, जिस का भावी उत्तराधिकारी होने के कारण दाई की गोद में सिराजुद्दौला बड़े लाड़ प्यार से पाला गया था, उस सिंहासन पर एक दिन के लिए भी सिराजुद्दौला का पदस्पर्श होगा, इसका निश्चय ही क्या था ? कर्मचारी-गण अपना मतलब गांठने के लिए सब नवाज़िश के पक्षपाती हो गये थे। राजवल्लभ प्रभूत धन-भांडार लेकर नवाज़िश के हितसाधन में तत्पर हो रहा था. सिराज के विरुद्ध सर्वसाधारण के चित्त में विद्वेष-विष भरने के लिए विविध उपाय करने में कोई त्रुटि नहीं की जाती थी। इस ओर सिराजुद्दौला की आशा का एकमात्र अवलम्ब अन्तिम शय्या पर पड़ा हुआ वृद्ध नवाब, राजकोष धन-शून्य, देश दुश्मनों से भरा हुआ। ऐसी नाज़ुक स्थिति में सिराजुद्दौला बाहुबल से सिंहासन की रक्षा करने के लिए गुप्त रूप से यथोचित प्रबन्ध करने लगा। नवाज़िश ढाके का नवाब और राजवल्लभ उसका प्रतिनिधि, इन दोनों ने बहुतसा धन संचित किया था, और सिराजुद्दौला की दृष्टि में दोनों ही प्रधान राज-विद्रोही थे। सब लोगों को यह

दृढ़ निश्चय हो गया कि यदि एक बार भी किसी प्रकार सिराजुद्दौला को सिंहासन पर पैर रखने का मौक़ा मिल गया तो वह सब से पहले नवाज़िश और राजबल्लभ की ख़बर लेगा। इस लिए अब आत्मरक्षा करने और अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए नवाज़िश और राजबल्लभ प्रकट-रूप से अपना पक्ष सबल करने लगे।

सिराजुद्दौला के भविष्य का आकाश काली घनघटाओं से घिरने लगा। उसने ख़ूब समझ लिया कि बल-प्रयोग के अतिरिक्त सिंहासन के प्राप्त करने का दूसरा कोई उपाय नहीं। परन्तु केवल अपने ही शारीरिक बल से तो काम चलने का नहीं, इसके लिए रणविज्ञ, साहसी और विश्वसनीय सेनापतियों की ज़रूरत है। युद्ध में जय-लाभ करने के लिए पर्याप्त सेना आवश्यक है, एवं इतना धन चाहिये जिससे सिपाहियों को अन्न-वस्त्र और वेतन देकर उनका प्रतिपालन किया जा सके। सिराजुद्दौला के पास यह कुछ भी सामान न था।

राजधानी में जो धनवान् वणिक और ज़मींदार लोग आबाद थे वे जानते थे कि देश में विचार-व्यवस्था ठीक नहीं। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली मसल चरितार्थ हो रही है, जिसके हाथों में ताक़त हो, छीन ले। अथवा नवाब की इच्छा ही एकमात्र प्रवल शक्ति है, वही जो चाहे, करे। ऐसे विचारों के कारण ये लोग मुंह से अपने को नवाब के अधीन कहने पर भी कार्य-रूप से एक दूसरे को परास्त करने की फ़िक्र में अपने पास आवश्यक सेनाओं का संग्रह रखते थे, और एक होशियार संतरी की तरह अपनी और अपने पास-

पड़ोस की रक्षा करते थे। सिराजुद्दौला को यह समझने में देर न लगी कि सिंहासन के लिए नवाज़िश के साथ युद्ध छिड़ने पर उक्त श्रेणी के नागरिक वणिक और ज़मींदार भी इशारा पाते ही नवाज़िश के पक्ष में जा मिलेंगे।

युद्ध के व्यवसायियों (फ़ौजी काम करनेवालों) की देश में कुछ कमी न थी। आज जो बङ्गाली बिना राजाज्ञा के एक फटी टूटी तलवार भी नहीं बांध सकते, और काले हबशियों की अपेक्षा भी अस्त्र-व्यवहार के अयोग्य समझे जाते हैं, एवं क़ानून की कठिन ज़ंजीरों से जकड़े पड़े हैं, वे बङ्गाली भी उस समय सवारों और पैदलों की सेना में भर्ती होकर अपनी प्रकाण्ड वीरता का परिचय देने और प्रबल प्रतिभा एवं रणकुशलता की बदौलत सेनापति के पदों पर अभिषिक्त होते थे। हिन्दू-मुसलमानों के अतिरिक्त पुर्तगीज़ और फ़रासीसी सिपाहियों के दल के दल सेनाओं में प्रवेश करने के लिए देश भर में घूमते फिरा करते थे। रुपया पास रहते हुए एक हफ़्ते में हज़ारों रंगरूट फ़ौज में भर्ती किये जा सकते थे। ये लोग किसी फ़ौज में स्थायी-रूप से नहीं रहते थे, युद्ध छिड़ने पर आवश्यकतानुसार लोग पर्याप्त धन देकर तत्काल ही इन सिपाहियों की सहायता ख़रीद सकते थे। नवाब और बादशाहों के आसन्न-मृत्यु होने पर ये सैनिक लोग चारो ओर लूटमार मचाते और राजधानियों पर आक्रमण करते थे। इनकी सहायता से भारतवर्ष के अनेक पुरुष राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारियों को गलियों का भिखारी बनाकर स्वयम् दिल्ली के बादशाह बन बैठे थे। सिराजुद्दौला यह जानता था, और इसे जानकर ही वह अपनी नाज़ुक अवस्था से नवाज़िश के प्रभूत अर्थ-बल की तुलना

करके दांतों अंगुली चबा रहा था। रुपया पास होने पर वह भी अपने पक्ष में बहुतेरी सेना एकत्रित कर सकता था, परन्तु रुपये कहां ? निदान अब सिराजुद्दौला रुपये के लिए व्याकुल होने लगा, और यही उसकी अर्थ-पिपासा का मूल कारण था।

धन की तृष्णा में व्याकुल होकर सिराजुद्दौला शिकारी की भांति चारो ओर ताक रहा था कि इतने में एक और भीषण विपत्ति आ उपस्थित हुई। नवाज़िश के हितैषियों में से राजबल्लभ और हुसेनकुली ख़ां, जो बङ्गाल के इतिहास में भली भांति प्रसिद्ध हैं, दोनों ही अपनी विद्या-बुद्धि और कुटिल-नीति के कारण विशेष शक्तिशाली हो गये थे। नवाज़िश का ख़ज़ाना हुसेनकुली के हाथ में था; अतएव नवाज़िश के घर में हुसेनकुली ख़ां का यथेष्ट प्रभुत्व था। परन्तु भाग्य-दोष से हुसेनकुली ख़ां अपने इस महत्व का सदुपयोग न कर सका, और गृहदासियां नवाज़िश की बीवी घसीटी-बेगम के साथ हुसेनकुली ख़ां के अनुचित सम्बन्ध की काना-फूंसी करने लगीं। बात बढ़ती गई। सब लोग जान गये। परन्तु उद्धत-स्वभाव सिराजुद्दौला से हिम्मत बांधकर यह बात कोई न कह सका। अन्त में जब यह पारिवारिक कलंक बहुत फैल गया, और चारो ओर बदनामी होने लगी तो इस कलंक का प्रतिकार करने के लिए अलीवर्दी की बेगम ने एक दिन गुप्त रीति से यह पाप-वार्ता सिराजुद्दौला से कह सुनाई। सिराजुद्दौला इसे सुनकर आग बबूला बन गया। वह क्रोध में अपने को न संभाल सका, और शीघ्र ही मुर्शिदाबाद का राजपथ हुसेनकुली ख़ां के हृदय-रक्त से कलङ्कित हुआ। उसके बदन को खंड खंड कर हाथी पर रखाकर सब के देखते देखते सिराजुद्दौला के सिपाही

शहर के आम रास्ते से लेकर चल दिये! इस घटना की ख़बर पाकर नवाज़िश और अलीवर्दी ने किंचित् शोक या असन्तोष प्रकट नहीं किया*, परन्तु इससे भविष्य के लिए राजबल्लभ का अन्तरात्मा कांप उठा! तत्कालीन अङ्गरेज़ लेखक 'अर्मी' ने उसके विषय में भी ऐसे ही कलंक का उल्लेख किया है। वह लिखता है कि "हुसेनकुली की मृत्यु के बाद नवाज़िश के प्रधानमंत्री राजबल्लभ का विधवा घसीटी-बेगम पर पूरा प्रभुत्व रहा, और उसके साथ राजबल्लभ का भी वह अनुचित सम्बन्ध रहा जो उसके पद और धर्म के सर्वथा विरुद्ध था।"

राजबल्लभ, सिराजुद्दौला को मिथ्या बदनाम करने के लिए और उसके विरुद्ध प्रधान एवं गण्यमान्य वीर सेनापतियों को उत्तेजित करने के लिए बहुतेरी झूठी अफ़वाहें उड़ाने लगा। ये अफ़वाहें इस समय भी इतिहास में पाई जाती हैं, और उन्हीं की नींव पर वर्तमान इतिहास-लेखकों ने भी रचना-लालित्य का विस्तार करने के लिए लिखा है कि "सिराजुद्दौला के निरंकुश स्वभाव का और क्या परिचय दें, उसके डर से मुर्शिदाबाद की आम सड़कों पर लोग निर्द्वन्द्व चल फिर नहीं सकते थे। वह अपने हाथों से सड़क पर जाते हुए बिचारे निरपराध नागरिकों को काटकर टुकड़े टुकड़े करके फेंक देता था।"

---

* हुसेनकुली के साथ नवाज़िश की बीवी और सिराज की माँ दोनों ही के अनुचित सम्बन्ध की बदनामी उड़ रही थी। 'मुतख़रीन' में लिखा है कि अलीवर्दी और नवाज़िश दोनों ही ने हुसेनकुली ख़ां को मार डालने की राय दी थी।

हुसेनकुली ख़ां के हत्याकांड की जनश्रुति लोगों में फैलते फैलते दूसरे ही रूप में परिणत हो गई। उसका उल्लेख करते हुए एक सुलेखक महाशय एक मासिकपत्रिका में लिखते हैं:—

"हुसेनकुली ख़ां सिराजुद्दौला का अध्यापक था, और वह बुरी तरह उसे बेतों से पीटा करता था। अतएव सिराजुद्दौला जब तख़्त पर बैठा तो अपना बदला लेने के लिए उसे सर्व-साधारण के सामने क़त्ल कर डाला!" निःसन्देह यह सर्वथा ही कपोलकल्पित है।

लोग कुछ भी कहें, पाप सदा ही पाप है। हुसेनकुलीख़ां को क़त्ल कराकर सिराजुद्दौला मरते दम तक इस पाप की जिस याद को न भूला था, उसका वर्णन आगे आयेगा। परन्तु जिस दुर्घटना-चक्र में पड़कर सिराजुद्दौला इस हत्या-कांड में प्रवृत्त हुआ था, उस में सिराजुद्दौला ही क्या, एक महा सीधासादा दरिद्र गृहस्थ भी चुप नहीं बैठ सकता, और मरने मारने को तैयार हो सकता था।

एक बार इङ्गलैंड के धर्मात्मा पादरियों और धार्मिक भावों से प्रेरित स्त्री-पुरुषों ने अपने देश के अनुदार शासन के अनुचित और कठोर आघातों को सहन करने में असमर्थ होकर भिन्न भिन्न दलों के रूप में घर से निकल सदा के लिए स्वदेश और स्वजाति का माया मोह छोड़, जन्मभूमि की पवित्र सीमा का उलंघन कर अमेरिका की नई खोजी हुई उर्वरा भूमि में डरते डरते क़दम रक्खा था? अमेरिकन इतिहास-लेखकों ने बड़ी कारुणिक भाषा में अङ्गरेज़ों की उस वक़्त की मुसीबतों का वर्णन किया है। अब यूरोप में अनुदार शासन नहीं है। एक दिन जिन्होंने घर से भागकर

सैकड़ों क्लेश सहते हुए एक असभ्य देश में अपना जीवन विसर्जन किया था, आज इङ्गलैंड के लोग उन्हें "अमेरिका के तीर्थयात्री" कहकर बड़े आदरपूर्वक याद करते हैं ! परन्तु इङ्गलैंड के जिन तीर्थयात्री पादरियों और धर्मात्मा अंगरेज़ों ने अमेरिका के सागर-चुम्बित शीतल साम्राज्य में इस घोर आफ़त मुसीबत के समय आश्रय-लाभ किया था, उन्होंने थोड़े ही दिन बाद धीरे धीरे अपने आश्रयदाता अमेरिका के प्राचीन निवासियों के जान-माल का सर्वनाश कर डाला था, परन्तु इस कुकृत्य के लिए इतिहास ने उनपर तो किंचित् रोष प्रकट नहीं किया। क्या उनकी अपेक्षा अपरिणामदर्शी सिराज़ुद्दौला का उक्त हत्या-सम्बन्धी अपराध अधिक असह्य है ?

---

# दसवां परिच्छेद ।

## अङ्गरेज़ों का चरित्र ।

हुसेनक़ुली ख़ां की हत्या से कलंक ही कलंक सिराजुद्दौला के हाथ लगा ! राजबल्लभ चौकन्ना हो गया, और अपना पक्ष सबल करने के लिए अनेक उपाय करने लगा । रोग-शय्या पर पड़ा हुआ वृद्ध नवाब सिराजुद्दौला के भावी आकाश को काली घन घटाओं से व्याप्त देखकर हाथों सर पीटने लगा ! और विविध उपदेशों से सिराज के चरित्र को सुधारने और उसके कल्याण-साधन की चेष्टाएं करने लगा । अलीवर्दी सिराजुद्दौला को प्राणों से भी अधिक प्यार करता था, मुसलमान इतिहास-लेखकों ने बारबार इस बात का उल्लेख किया है । परंतु जवानी के नशे में सिराजुद्दौला उसकी बातों को प्रायः अस्वीकार करता था। अलीवर्दी ने इन सब बातों को याद करके ही सिराजुद्दौला को एक बार लिखा था कि "जो संसार-संग्राम में स्नेह का अत्याचार सहन करें, वेही यथार्थ में वीर हैं ।"

जब स्नेह-परायण अलीवर्दी ने उदरी-रोग से पीड़ित होकर रोग-शय्या का आश्रय लिया, और अपना मतलब गांठने के लिए षड़यन्त्र-निपुण राजबल्लभ, नवाज़िश मोहम्मद को नवाबी सिंहासन पर बैठाकर सिराजुद्दौला का सारा अभिमान चूर्ण करने की चेष्टा करने लगा तब सिराजुद्दौला को जान पड़ा कि वास्तव में एकमात्र अलीवर्दी ही मेरा सुहृद, शुभ-

चिंतक और मुक्त निराश्रय का आश्रय-स्थल है। अब सिराजुद्दौला का दुर्दमनीय हृदय-वेग ढीला पड़ने लगा। ऐयाशी कम होती गई, खुशामदी यारों का नाच-रंग बन्द होगया, हीरा-झील के प्रमोद-भवन में शराबियों के ठट्ठे और खिलखिल-बाज़ियां एकदम लुप्त हो गईं, तान-लय-परिपूरित बाजों की झनकार और आशिक़ाना रागों के तराने जो लोग गारहे थे वे एकाएक जहां के तहां चुप हो रहे। सिराजुद्दौला ने रोग-ग्रस्त अलीवर्दी के पास बैठकर भावी शासन-नीति और कार्य-पद्धति का उपदेश ग्रहण करना आरम्भ किया।

मराठों के साथ संधि हो जाने के कारण देश में शान्ति विराज रही थी; परंतु उड़ीसा-प्रदेश नवाब के शासन से निकल गया था। पुर्निया में सैयदअहमद राज्य कर रहा था, वहां सिराज का शुभचिंतक कोई हो ही क्या सकता था, ढाका राजबल्लभ के अधिकार में था, वहां सिराज के पक्ष में खड़े होने का साहस ही किसे था? बिहार-प्रदेश का कुछ भाग महाराष्ट्रों को समर्पित किया गया था, और राजा रामनारायन उसपर शासन कर रहा था। परंतु वहां भी रामनारायन का आधिपत्य भली भांति संस्थापित न हो सका था। निदान सिराजुद्दौला ने देखा कि केवल मुर्शिदाबाद-प्रदेश पर ही नवाब की शासन-शक्ति का थोड़ा बहुत प्रभाव है। परन्तु इस प्रदेश की प्रसिद्ध प्रतिभाशालिनी शासनकर्त्री रानीभवानी, धनकुबेर जगत्-सेठ तथा उद्योग-शील अङ्गरेज़ों से विपत्ति के समय में सहायता मिलने की सम्भावना नहीं जान पड़ती। राजबल्लभ की कोशिशों से सभी सामर्थ्यवान् व्यक्ति थोड़े या बहुत परिमाण में सिराज के शत्रुओं के हितसाधक बन गये! सिराजुद्दौला फिर क्या

रहा ? एकमात्र स्नेह-परायण नाना अलीवर्दी, वह भी आसन्न-मृत्यु, रोग-शय्या को त्यागकर अब पुनः उसके उठने की सम्भावना नहीं। सिराजुद्दौला रात दिन उसकी पाटी पकड़े बैठा रहने लगा।

इसका अनुमान सहज ही में किया जा सकता है कि अलीवर्दी के सदृश धर्मपरायण, प्रजाहितैषी और प्रतिभाशाली नवाब के आदर्शगुणों का अनुकरण करने पर सिराज का चरित्र बहुत कुछ संभल जाता, और बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा का इतिहास किसी दूसरे ही रूप में वर्तमान होता। परन्तु मुसलमानों के शासन-सौभाग्य के दिन पूरे हो चले थे, शायद इसीलिए समय रहते सिराजुद्दौला की मोह-निद्रा भंग नहीं हुई।

इसलामी धर्म से सिराजुद्दौला ने अपना विश्वास कभी नहीं हटाया। धर्मानुराग से प्रेरित हो उसने बड़े यत्न और बहुत ख़र्च से अरब देश के मदीना नगर की पवित्र मिट्टी मंगाकर उसके ऊपर जो एक मसजिद बनवाई थी वह बहुत दिनों तक गंगा के किनारे खड़ी हुई उसके धार्मिक विश्वास की साक्षी दे रही थी। परंतु पक्का मुसलमान होते हुए भी सिराजुद्दौला जवानी में कुसंगति के कारण शास्त्र की आज्ञाओं का उल्लंघन कर शराबी हो गया था, और कुसंगियों ने उसे शराबख़ोरी और ऐयाशी में फंसाकर बाल्यजीवन ही से उसकी आत्मशक्ति का सर्वनाश कर डाला था! अलीवर्दी ने उस पाप-प्रवृत्ति को रोकने की अबतक एक बार भी चेष्टा न की। अब मृत्यु का समय जितना ही निकट आने लगा, सिराज के परिणाम की चिंता में अलीवर्दी की व्याकुलता उतनी ही बढ़ती गई। अन्त में एक दिन अलीवर्दी

ने पार्श्व में बैठे हुए सिराजुद्दौला से कुरान की क़सम लेकर उसे धर्म-प्रतिज्ञा में आबद्ध किया। उस दिन से सिराजुद्दौला ने सदा के लिए सुरापान का परित्याग कर दिया! दुर्दमनीय इच्छाओं के वशीभूत होकर अपनी क़ब्र अपने ही हाथों खोदने के लिए सिराज ने शैशव काल ही में शराब के जिस प्याले को हाथ में लिया था, आज तेजस्वितापूर्वक वीरों की भांति वृद्ध नाना की अंतिम शय्या को स्पर्श करके सिराज ने उस प्याले को टूक टूक करके फेंक दिया। हा! इसीका नाम है भाग्य-विडम्बना, कि आमरण अन्यायी और दुर्नीति-परायण रहते हुए भी इङ्गलैंड के राजा द्वितीय जेम्स ने इतिहास में धर्मात्मा और आदर्श राजा कहलाकर प्रशंसा पाई, और मोहान्ध सिराजुद्दौला जो अपने अपरिणत जीवन में केवल इने गिने दिनों पाप-पंक में लिप्त रहा और समय आने पर दुराचारों को तिलांजलि देकर अपना सुधार कर लेने में कृतकार्य हुआ उसे संसार ने, इतिहास ने, और स्वदेशी हिन्दू मुसलमानों ने घृणा की दृष्टि से देखा, और शराबी, नीच, पाखंडी एवं दुराचारी कहकर तिरस्कृत किया!

अधिकांश लोग यह नहीं जानते हैं कि राज्य-कार्य में हाथ डालकर सिराजुद्दौला ने राजधर्म का कैसा प्रतिपालन किया था। वह केवल कुछ महीने ही सिंहासन पर बैठा, और सो भी अनेक कलह-विवादों और लड़ाई-झगड़ों में बीते; निश्चिन्त होकर राजकाज करने का मौक़ा उसके हाथ नहीं लगा। पदार्थ सिराजुद्दौला के शासन-कार्य की समालोचना करने के लिए उस समय के इतिहास की समालोचना करनी आवश्यक है जब वह अलीवर्दी की रुग्णावस्था में उसके प्रतिनिधि रूप से शासन कर रहा था। उस इतिहास में सिराजुद्दौला

और अङ्गरेज़ सौदागर पृथक् पृथक् अपने चरित्र का कैसा परिचय दे गये हैं, उसके मूल का अनुसंधान न करके बहुतों ने योंही लिख मारा है कि "अङ्गरेज़ उस समय के देवता थे और सिराज दैत्य ! इसी दैत्य का सर्वनाश करने के लिए पलासी के समर-क्षेत्र में कंधों पर संगीन रक्खे हुए अङ्गरेज़ देवता अवतरित हुए थे !"

अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने बड़े प्रयत्न और आग्रह से सिराजुद्दौला को जैसा दुश्चरित्र बताया है, अङ्गरेज़ी दफ़्तर के काग़ज़-पत्रों में उसके वैसी दुश्चरित्रता का कोई प्रमाण ही नहीं मिलता। सिराज अङ्गरेज़ों पर विश्वास नहीं करता था, उन्हें देख नहीं सकता था, उनके छल-चातुर्य और दग़ा-फ़रेब के कामों पर उन्हें उचित दण्ड देता था। यह सब सही है। परन्तु राज्य-कार्य को हाथ में लेकर उसी सिराजुद्दौला ने कभी अङ्गरेज़ों को छल-फ़रेब और जाल-दग़ाबाज़ी के अपराध में कठिन दण्ड नहीं दिया। उन्हें अपदस्थ करने अथवा उनका सर्वनाश करने की कभी चेष्टा नहीं की, बल्कि किसी किसी मामले से तो यह स्पष्ट जाना जा सकता है कि जब राजा और ज़मींदार अङ्गरेज़ों को कुछ भी सताते और उत्पीड़ित करते थे तो ज़मींदारों को कड़ी सज़ाएं देकर वह अंगरेज़ों के वाणिज्य की रक्षा और सहायता करता था। इसके दो एक उदाहरण अब भी मिलते हैं।

आजकल जिस प्रकार कलकत्ता नगर विविध प्रदेशों के धनवान, समृद्धिशाली लोगों की संतान की विहार-स्थली के रूप में परिणत हो गया है, उस ज़माने में इस तरह के उत्कट प्रलोभन और साज-सामान कलकत्ते में नहीं थे। कोई वाणिज्य- व्यवसाय के द्वारा धन पैदा करने के लिए और कोई

मराठों के उपद्रवों से अपनी रक्षा होने की सम्भावना से समय समय पर आकर कलकत्ते में रहने लगे थे। वर्धमान के महाराज तिलकचंद ने बहुत दिनों तक मराठों से लड़ने भिड़ने के बाद अन्त में तंग आकर कलकत्ते ही में अपने लिए एक राजमहल बनवाया था। अवकाश के समय कभी कभी आकर वे उसमें दस बीस दिन रहते थे, किन्तु अधिकांश समय उनके कर्मचारी ही उसकी देखभाल के लिए कलकत्ते में बने रहते थे। महाराज के कर्मचारियों में रामजीवन कविराज नामक एक व्यक्ति तहसीलदार था। वह गुप्त-रूप से अंगरेज़ों के साथ मिलकर वाणिज्य-व्यवसाय के द्वारा रुपया पैदा करता था। एक बार रामजीवन जान वुड नामक एक अंगरेज़ सौदागर का क़र्ज़दार हो गया, और वुड साहब ने कलकत्ते की "मेजर कोर्ट" नाम्नी अदालत से रामजीवन पर अपने ९३५७) रुपये की डिग्री करा ली। वर्धमान-राज्य से इस रुपये का कोई सम्बन्ध नहीं था; परन्तु अंगरेज़ी सौदागरों को जब रामजीवन से रुपया वसूल न हो सका तो अङ्गरेज़ी अदालतों की, उस समय में प्रचलित, न्याय-व्यवस्था के अनुसार रामजीवन के ऋण की अदायगी के लिए उन्होंने महाराज वर्धमान के कलकत्तेवाले राजमहल की कुर्की करवा-कर उसमें ताला डाल दिया! इस आकस्मिक अत्याचार से महाराज वर्धमान को बहुत दुःख हुआ, और उद्दण्ड अङ्गरेज़ वणिकों को दण्ड देने के लिए उन्होंने अपने अधिकृत स्थानों के अङ्गरेज़ व्यापारियों की सब कोठियों में ताला डलवाकर उनके गुमाश्तों को क़ैद कर लिया। वर्धमान-प्रदेश में अङ्ग-रेज़ों का व्यापार बिलकुल बन्द हो गया। अलीवर्दी के शासन-काल में ज़मींदारों को अपने अधिकृत स्थानों पर

पूरी स्वाधीनता प्राप्त हो गई थी। अतएव वर्धमान-राज्य का इस कार्य में कोई विशेष अपराध नहीं था। पर दोष किसका है, इसपर कुछ भी विचार न करके अङ्गरेज़ी कौंसिल ने निश्चय किया कि महाराज का यह व्यवहार नितान्त असंगत और अपमान-जनक है। जिस तरह से हो, इसका प्रतिकार करना होगा। अङ्गरेज़ सौदागरों ने नवाब की कचहरी में दावा किया। सिराजुद्दौला ही उस समय वास्तविक नवाब था, अलीवर्दी के नाम से वही बंगाल का शासन कर रहा था। वह ज़मींदारों की स्वाधीन शक्ति का नाश करने के लिए लाला-यित हो ही रहा था, अतएव इस दावे को सुनकर महाराज वर्धमान को भली प्रकार नीचा दिखाने का मौक़ा उसके हाथ आया। रामजीवन के ऋण की अदायगी के लिए महा-राज के माल को कुर्क़ कराना अङ्गरेज़ों की सर्वथा अनुचित कार्रवाई थी। परन्तु यह बात तो अलग रही, नवाब के दरबार में इस बात पर विचार हुआ कि महाराज तिलक-चन्द ने नवाब के दरबार में दावा न करके स्वयम् ही क्यों अङ्गरेज़ों के कृत्य का प्रतिकार किया? इस विचारमें महाराज वर्धमान हार गये। नवाब दरबार की आज्ञा से उन्हें शीघ्र ही अङ्गरेजों के व्यापार की रक्षा करनी पड़ी। इस मुक़दमें की जो तजवीज़ नवाबी दरबार से प्रकाशित हुई थी, अङ्गरेज़ों ने उसका अनुवाद करवाकर सुरक्षित रख छोड़ा।

इस व्यवहार के साथ राजबल्लभ के व्यवहार की तुलना करनी आवश्यक है। राजबल्लभ को अङ्गरेज़ लोग अपना भाई मानते थे। अङ्गरेज़ जिस समय प्रकट रूप से सिरा-जुद्दौला के साथ शत्रुता करने में लिप्त हुए तो उस समय राजबल्लभ के पुत्र कृष्णबल्लभ ने अङ्गरेज़ी क़िले में आश्रय

लिया था। परन्तु राजवल्लभ जिस समय ढाके का नवाब था उस समय उसने अकारण ही अङ्गरेज़ों की दुर्दशा का अन्त कर डाला था। उसने एक बार अङ्गरेज़ों से नज़र तलब की, अङ्गरेज़ों ने इसपर कुछ ध्यान नहीं दिया। बस, इसी पर राजबल्लभ ने अङ्गरेज़ गुमाश्तों को कारागार में ठेल दिया। अङ्गरेज़ों का वाणिज्य बन्द कर दिया, और वाकरगंज से ढाका-प्रदेश में नावों के द्वारा अङ्गरेज़ व्यापारियों का धान, चावल इत्यादि जो माल आता था उसे रोक दिया। राजबल्लभ के शासन में लोग अङ्गरेज़ सौदागरों की नौकरी करने का साहस न करते थे। करों अथवा नज़रों की अदायगी के बहाने से राजवल्लभ इन लोगों के साथ प्रायः इसी प्रकार का व्यवहार किया करता था। उसके मुर्शिदाबाद चले आने पर उसका पुत्र कृष्णबल्लभ कुछ दिनों तक ढाके की नवाबी करता रहा। कृष्णबल्लभ को अधीनता में मीर अबुलतालिब नामक एक व्यक्ति उसका नायब था। वह डच सौदागरों के गोरे चमड़ेवाले एक कर्मचारी को भी क़ैदख़ाने में ठेले बिना नहीं मानता था, और उन्हें बहुत सताता था। ये सब बातें अङ्गरेज़ लेखकों ने अपने काग़ज़-पत्रों में लिख रक्खी हैं; परन्तु सिराजुद्दौला के विरुद्ध तलवार उठाने और क़लम चलाने के समय इन बातों के याद रखने की आवश्यकता उन्हें नहीं जान पड़ी।

राजवल्लभ और कृष्णबल्लभ के अत्याचारों से यूरोपियन सौदागर कभी २ ऐसे दुखी होते थे कि प्रायः इसके लिए सभी श्रेणियों के यूरोपियन सौदागर नवाब के दरबार में अपना दावा पेश करके परित्राण लाभ करते थे। परन्तु वही अङ्गरेज़ अपने आश्रयदाता नवाब के साथ ज़रा ज़रा सी

तुच्छ बातों पर कलह-विवाद ठान देने में भी तनिक नहीं चूकते थे ! कलकत्ते के किसी हिन्दू या मुसलमान के निःसन्तान मर जाने पर नियमानुसार यदि नवाब-सरकार से उसकी सम्पत्ति को नवाबी ख़ज़ाने में दाख़िल करने का प्रबन्ध किया जाता तो कोई न कोई बहाना करके अंग्रेज़ लोग चट उसमें बाधा डालने के लिए तैयार हो जाते थे। फ़रासीसों के साथ अङ्गरेज़ों का मेल-मिलाप भी बड़ा था और शत्रुता भी परले सिरे की थी। अलीवर्दी के शासन-काल के अन्त-समय में यूरोप में अङ्गरेज़ और फ़रासीसों में युद्ध छिड़ने का सूत्रपात हुआ। इसी बहाने से अङ्गरेज़ लोग कलकत्ते में भी एक क़िला बनवाने और सेना संगठित करने की चेष्टा करने लगे। उन्होंने नवाब के आश्रय में, नवाब के राज्य में निर्द्वन्द और बेखटके वाणिज्य-व्यापार करने एवं धन पैदा करने का जो अधिकार पाया था, उसके लिए कृतज्ञ होना तो दूर रहा, वे प्राणपण से इस बात का प्रयत्न करते थे कि कलकत्ते में नवाब की शासन-क्षमता न जमने पाये।

अलीवर्दी इसे जानता था। परन्तु मराठों के झगड़ों में फंसे रहने के कारण जानते और सुनते हुए भी वह कुछ चीं चपड़ न करता था। परन्तु अब अङ्गरेज़ों की धृष्टता और निर्भीकता पर लक्ष्य करके सिराजुद्दौला को सावधान करते समय वह स्पष्टतः कहने लगा कि अङ्गरेज़ों की रण-शक्ति का नाश किये बिना बंगाल के राज्य का कल्याण कदापि नहीं होगा। इतने दिनों के बाद अलीवर्दी जैसे अनुभवी और धर्मशील राजा को भी अपने पक्ष का समर्थन करते देखकर सिराजुद्दौला को बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु वह प्रसन्नता केवल प्रसन्न हो लेने भर ही को थी। जब प्रभूत सेना थी, पर्याप्त धन था,

अलीवर्दी के प्रबल प्रताप के आगे शत्रुओं के हृदय कम्पित होते थे, उस समय जो कुछ हो सकता वह अब नहीं हो सकता था। अब वह दिन न रह गया था।

अङ्गरेज़, फ़रासीसी और डच सभी विदेशी सौदागर नवाब की अनुकम्पा से बंगाल में वाणिज्य कर रहे थे। ये जातियां यूरोप में परस्पर शत्रु हों या मित्र, वहाँ इनमें आपस में संधि हो या विग्रह, उसके साथ बंगाल का भी कुछ सम्बन्ध हो सकता है, यह सिराजुद्दौला न समझ सका। अङ्गरेज़ और फ़रासीसों से यूरोप में लड़ाई छिड़ने पर बंगाल में अङ्गरेज़ों की दुर्ग-सज्जा का प्रयोजन क्या? यूरोप में लड़ाई होने के कारण क्या फ़रासीस लोग कलकत्ते में लूटमार मचा सकते हैं? सिराजुद्दौला ने समझ लिया कि क़िला तैयार कर लेना ही अङ्गरेज़ों का मूल उद्देश है। फ़रासीसों से युद्ध की आशंका, यह केवल बहानामात्र है। इधर अङ्गरेज लोग केवल क़िला बनवा कर ही नहीं रहे बल्कि विलायत के अधिकारियों की आज्ञा पाकर उन्होंने कलकत्ते की रक्षा के लिए सैन्य-दल संगठित करना शुरू किया। इस ओर अलीवर्दी सिराजुद्दौला को यह उपदेश दे रहा था कि अङ्गरेज़ों की शक्ति का सर्वनाश किये विना बंगाल के राज्य का कदापि कल्याण नहीं, और उधर अङ्गरेज़ लोग अपनी रण-शक्ति को बराबर बढ़ाते चले जाते थे। सिराजुद्दौला चुपचाप रहकर इसे सहन न कर सका. और प्रायः नित्य ही नाना अलीवर्दी के पास अङ्गरेज़ों के विरुद्ध अभियोग उपस्थित करने लगा।

राजबल्लभ अङ्गरेज़ों के व्यवहार-बर्त्ताव और उनकी कूट-नीति एवं कार्य-प्रणाली से भली भांति परिचित था। उसने क़ासिमबाज़ार की अङ्गरेज़ी कोठी के गुमाश्ता वाट्स साहब

को अपने हाथ में कर लेने का उद्योग आरम्भ किया। वाट्स साहब कलकत्ते के अङ्गरेज़ी दरबार को प्रायः रोज़ ख़बरें भेजा करते थे। अतएव मुर्शिदाबाद के नवाबी दरबार की एक एक बात अङ्गरेज़ी गवर्नर को रोज़ घर बैठे मालूम होती रहती थी। वाट्स साहब को अपने हाथ में कर लेने पर कलकत्ते का अङ्गरेज़ी दरबार भी राजवल्लभ की मुट्ठी में आगया। इन सब बातों का पता पाकर सिराजुद्दौला शत्रुता के पूर्व लक्षणों को भली भांति समझ गया। परन्तु अब समझने से क्या? अली वर्दी का रोग क्रमशः असाध्य होने लगा था! आसन्न मृत्यु नवाब के अन्त-समय में युद्ध कैसे ठन सकता था, राजवल्लभ और अङ्गरेज़ सौदागरों ने समय और सुयोग पाकर परस्पर प्रीति-बंधन को दृढ़ करना और शक्ति बढ़ाना आरम्भ किया। सिराजुद्दौला की क्रोधाग्नि शान्त न होकर दिनोंदिन अधिक प्रज्ज्वलित होने लगी।

---

## ग्यारहवां परिच्छेद।

## नवाब अलीवर्दी का अन्तिम उपदेश।

दुर्भाग्य से राजवल्लभ की सारी चेष्टाएं निष्फल हुईं। अलीवर्दी की जिन्दगी ही में—सन् १७५६ ई० में—नवाज़िश-मोहम्मद की मृत्यु हो गई! राजवल्लभ पर घोर विपत्ति आ पड़ी, उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया! मुसलमान इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि:—"सब लोग मिलकर जिस समय नवाज़िश के शव को हाथोंहाथ उठाकर समाधिस्थल के निकट पहुंचे तो उस समय चारो ओर से हज़ारों आदमियों के मुखों से ऐसा घोर करुण क्रन्दन मचा कि आजतक किसी समाधिस्थल पर वैसा शोकपूर्ण आर्तनाद कभी सुनने में नहीं आया।" सर्वनाश हो गया! नवाज़िश की बीवी घसीटी बेगम मोतीझील में विविध विलाप करने लगी, और यह सोचकर वह बहुत ही शोकाकुल हुई कि अब सिराजुद्दौला मेरी मनमानी दुर्दशा करेगा! इसके थोड़े ही दिन बाद पुर्निया का अधिकारी सैयदअहमद भी मर गया। उसका पुत्र शौकतजंग पुर्निया का नवाब हुआ। शौकतजंग अभी नौजवान था, और घसीटी बेगम महल के भीतर रहनेवाली एक अबला रमणी थी। अतएव सिराज का कंटक दूर हुआ समझकर अलीवर्दी को कुछ आश्वासन मिला ही था कि इतने में राजवल्लभ ने एक नये प्रतिद्वन्द्वी को खड़ा किया।

नवाज़िश के कोई संन्तान न थी। इसलिए उसने सिराजुद्दौला के छोटे भाई को गोद लिया था। नवाज़िश की ज़िन्दगी ही में इस दत्तकपुत्र का भी देहान्त हो गया! परन्तु उसका एक अल्पवयस्क पुत्र वर्तमान था। राजबल्लभ ने उसी बालक को गद्दी पर बैठाकर घसीटीबेगम के नाम से स्वयम् बङ्गाल, बिहार और उड़ीसे का शासन करने की कल्पना की।

अलीवर्दी के जीवन की आशा भंग होने लगी। बड़े बड़े पारंगत राजवैद्य वृद्ध नवाब की ओर आंसुओं भरी दृष्टि से देख व्यथित चित्त हो निराश लौटने लगे। सिराजुद्दौला हर घड़ी अलीवर्दी की चारपाई से लगा बैठा रहता था। राजबल्लभ ने सोचा कि यही मौक़ा अच्छा है। उसने कृष्णबल्लभ को समाचार भेजा कि "अब क्या देखते हो, ढाके से सब माल-असबाब और परिवार को लेकर नावों पर सवार हो कलकत्ते को भाग जाओ।" कलकत्ते पहुंचने पर कृष्णबल्लभ को अङ्गरेज़ों के यहां आश्रय मिलने के लिए राजबल्लभ ने वाट्स साहब से बहुत कुछ अनुरोध किया। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों का कथन है कि "वाट्स साहब का कुछ भी अपराध नहीं था। सब लोग कह रहे थे कि वृद्ध नवाब का दम निकलने भर की देर है, राजबल्लभ के रहते हुए सिराजुद्दौला के हाथ सिंहासन पर बैठने का अवसर कभी न आयेगा। घसीटी बेगम की पोष्य संतान ही गद्दी पर बैठेगी। ऐसी दशा में घसीटी बेगम के चिरसेवक और विश्वास-भाजन मंत्री राजबल्लभ के अनुरोध की अवहेलना किस प्रकार की जाती? वाट्स ने जिस समय यह अनुरोध-पत्र गवर्नर ड्रेक के पास भेजा उस समय गवर्नर ड्रेक स्वास्थ्य-लाभ के लिए बालेश्वर बन्दर पर जल-वायु-परिवर्त्तन के निमित्त गये थे। उन

की अनुमति की प्रतीक्षा न करके अङ्गरेज़ों ने कलकत्ते में कृष्णवल्लभ को आश्रय देना स्वीकार कर लिया।" इस ओर कृष्णल्लभ ने पुरुषोत्तमधाम की तीर्थयात्रा का बहाना करके परिवार के सहित ढाके का सारा ख़ज़ाना और माल-असबाब नावों पर लादकर कूच किया, और उसकी नौकाएं तीर्थयात्रा का मार्ग छोड़ पद्मा और जलंगी को पारकर भागीरथी में आ दाख़िल हुईं। लोगों को ख़बर भी न हुई, कृष्णवल्लभ कलकत्ते के बन्दर पर पहुँच गया।

सिराजुद्दौला को निर्दयी और अत्याचारी नवाब समझ-कर राजवल्लभ भयभीत नहीं हुआ। वह जानता था कि सिराजुद्दौला ही वास्तव में नवाब है। वह अलीवर्दी का परम प्रीतिभाजन, प्रतिभाशाली और तेजस्वी युवक है। सिंहासन पर बैठने के बाद ढाके की नयाबत के लिए उपयुक्त नवाब को निर्वाचित करने और ढाके के पूर्व-नवाब नवाज़िश मोहम्मद से और मुझसे निकासी का सारा हिसाब वसूल करने का पूरा अधिकार उसे ही होगा। फिर, नवाब नाज़िम की हैसि-यत से हो अथवा नवाज़िश के उत्तराधिकारी की हैसियत से, शास्त्र की आज्ञानुसार नवाज़िश की सम्पत्ति पर मेरी अपेक्षा सिराजुद्दौला ही का विशेष अधिकार है, इसे कोई अस्वीकार न कर सकेगा। इस अधिकार के अनुसार सिराजुद्दौला यदि अपने चाचा नवाज़िश की छोड़ी हुई सम्पत्ति तथा नवाज़िश की स्त्री अर्थात् अपनी चाची घसीटीबेगम को अपने राजमहल में लेजाकर उसका प्रति-पालन करना चाहेगा तो मुझे उसमें बाधा डालने का क्या मजाज़ होगा? और अन्यान्य लोग भी क्या कह सकेंगे? हां-सिराजुद्दौला यदि सिंहासन पर न बैठ सके तो इन सब बातों

की कोई सम्भावना नहीं। इस विचार-परम्परा के बाद अंत में राजबल्लभ मोतीझील में सैन्य-संग्रह करके बाहुबल और छल-चातुर्य से सिराजुद्दौला को दबाने की चेष्टा करने लगा।

उस ज़माने में पथ और घाटों की यथेष्ट सुविधा नहीं थी। नावों के द्वारा लोग देश-विदेश जाते आते थे। सैनिक सिपाही नौकाओं पर चढ़कर युद्ध-यात्रा करते थे, सौदागर और वणिक नावों के द्वारा ही वाणिज्य-व्यापार चलाते थे, ऐयाश और विलास-प्रिय लोग नावों पर चढ़ चढ़कर जल-विहार किया करते थे। पद्मा और भागीरथी के मार्ग से लोग सहज ही में मुर्शिदाबाद आ सकते थे। कई एक फाटकों के अतिरिक्त मुर्शिदाबाद में कोई क़िला अथवा चारदीवारी नहीं थी। राजधानी बिलकुल अरक्षित दशा में पड़ी हुई थी। देश अरक्षित था, प्रजा निरपेक्ष थी, ज़मींदार असंतुष्ट थे। इस दशा में यदि साहस करके कोई देश पर आक्रमण कर देता तो सहज ही में विजय-लाभ कर सकता था। निदान जगत्-सेठ और समस्त ज़मींदार मिलकर मनमाने नवाब को निर्वाचित करने की चेष्टा करने लगे। यद्यपि अलीवर्दी ने पहले ही सिराजुद्दौला को सिंहासन पर बैठाने की घोषणा कर दी थी, और इसीके अनुसार सिराजुद्दौला को युरोपियन सौदागरों से भी नज़र नज़राने मिलने लगे थे, तथापि मुसलमान इतिहास-लेखक सैयद गुलाम हुसेन ने इस बात को स्वीकार नहीं किया है। वह लिखता है कि "सैयद अहमद के साथ अलीवर्दी का बड़ा मेलजोल था, वह प्रायः उसके दरबार में आया जाया करता था। मृत्यु के पहले तक सैयद अहमद को यह विश्वास था कि मैं ही अलीवर्दी के सिंहासन पर बैठूंगा।" उसके मर जाने पर उसका पुत्र शौकतजंग बहादुर पुर्निया का नवाब

हुआ था, और अलीवर्दी के सिंहासन पर भी उसकी लोभ-दृष्टि लगी हुई थी। लोग इन सब बातों को जानते थे। राजवल्लभ अनन्योपाय होकर एक अबोध बालक को सिंहासन पर बैठाने की कल्पना कर रहा था, किन्तु अब सब लोगों ने मिलकर शौकतजंग को नवाब बनाने का प्रस्ताव उठाया। वे लोग तरह तरह की कल्पनाएं करने लगे :—

रुपया ख़र्च न करना होगा, न भीषण संग्राम में तेज़ तलवारों की मारकाट से मौत के मुंह में जाने के लिए शरीर का रक्त बहाना पड़ेगा, जीत हार की विकराल चिंता में व्यथित-हृदय और विनिद्र आखों से समय की प्रतीक्षा भी न करनी होगी; जो जहां हैं, जिस तरह हैं, जिन मान और प्रतिष्ठा के पदों पर नियुक्त हैं वे सब ज्यों के त्यों उन्हीं स्थानों पर बने रहेंगे। सिर्फ़ एक ज़रा सी बात में सारा क़िस्सा तमाम हो जायगा, शौकतजंग आवे और सिराजुद्दौला का शिर काट कर सिंहासन पर बैठ जाय। बस, ज़मींदारों को इसमें विवाद हो ही क्या सकता था? सहज ही में वे सब इस परामर्श से सहमत हो गये।

शौकतजंग ने भी इसे स्वीकार किया, परन्तु उसके चतुर मंत्री इस बात से एक बड़े असमंजस में पड़ गये, और अन्त में उनकी राय से इस विषय में दिल्ली से एक सनद प्राप्त करने का उपाय करना निश्चित हुआ। इस काम के लिए दिल्ली में प्रचुर धन की वर्षा होने लगी।

जो लोग सिराजुद्दौला को पदच्युत करने के लिए इन सब षड़यंत्रों में लगे हुए थे, वे सभी शौकतजंग और उसके पिता सैयदअहमद को अच्छी तरह जानते थे। सैयदअहमद पहले

उड़ीसे का शासक था। जब इसने उत्कल-प्रदेश की परम सुन्दरी ललनाओं के सौन्दर्य में अपने को भूलकर उनके सतीत्व का सर्वनाश करने की ठानी तो धर्मात्मा अलीवर्दी ने उसे उड़ीसे से अलग कर दिया था। उसी सैयदअहमद का दृष्टान्त और उपदेश पाकर शौकतजंग के चंचल हृदय ने भी सदाचार-शिक्षा का अवसर न पाया। इसकी अपेक्षा सिराज पढ़ा लिखा था, समय २ पर राज्य-कार्य की देखभाल से वह पूरा राजनीतिज्ञ बन गया था। ज़रूरत पड़ने पर तलवार लेकर युद्ध-क्षेत्र में सम्मुख वीरों की भांति लड़कर प्राण दे देने के लिए भी वह कातर नहीं था। अनेक बार वह अपनी प्रकाण्ड वीरता का परिचय दे चुका था। परन्तु शौकतजंग में ये कोई भी गुण नहीं थे। फिर लोग क्यों सिराजुद्दौला के बजाय शौकतजंग को चुनकर उसे राजगद्दी पर बैठाने के लिए आतुर हो रहे थे? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि ये लोग देश की भलाई के लिए अथवा जनता के कल्याण के लिए आतुर नहीं थे बल्कि सभी अपने अपने स्वार्थ में अंधे हो रहे थे, अपना मतलब गांठने की फ़िक्र में थे। इसीलिए इन्हें योग्य अयोग्य का विचार ज़रूरी न समझ पड़ा, और इन्हीं ने भविष्य में सिराजुद्दौला को मुफ़्त बदनाम करके अपने पापों को छिपाने की चेष्टा की।

नवाज़िश और सैयदअहमद की मृत्यु के पहले ही विलायत से एक समाचार आया था कि फ़रासीस लोग अनेक फ़ौजी जहाज़ लेकर भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए आ रहे हैं। यह ख़बर सच रही हो या झूठ, परन्तु कलकत्ते के अंगरेज़ों ने इसी बहाने से कलकत्ते में एक क़िला बनवाने के लिए विलायत से दो चार अच्छे अच्छे कारीगर भेज देने

के लिए वहां के अफ़सरों को एक प्रार्थनापत्र लिखा था। इससे पहले कर्नल स्काट ने जब एक बार क़िला बनवाने के लिए ७५०००) रुपये की मंजूरी का प्रस्ताव पेश किया था तो उस समय उसे किसी ने स्वीकार नहीं किया, परन्तु अब बड़ी शीघ्रता के साथ सभी अंगरेज़ क़िला बनवाने के लिए व्याकुल होने लगे।

फ़रासीसों के साथ लड़ाई झगड़े की सूचना पाने पर विलायत के अङ्गरेज़ अफ़सरों ने इस देश के अङ्गरेज़ों को सावधान करने के लिए २६ दिसम्बर सन् १७५५ ई० को एक पत्र लिखा था, जिसका आशय यह था :—

"हम बड़े ज़ोरों के साथ तुम्हें यह अनुमति दे रहे हैं कि तुम बड़ी होशियारी से रहो, और बंगाल में यदि तुम अपनी सम्पत्ति और स्वत्वों को सुरक्षित रखना चाहते हो तो अपनी रक्षा के लिए नवाब से प्रार्थना करो। हमारी राय में तुम्हारे व्यापार-व्यवसाय और माल-असबाब की रक्षा का इसके अतिरिक्त और कोई अच्छा उपाय नहीं है। नवाब के आश्रय ही में तुम्हारा कल्याण है, इसे निश्चय जानो।"

इस पत्र की राय के अनुसार कलकत्ते के अङ्गरेज़ों को नवाब की शरण लेकर उसी के आश्रय में आत्म-रक्षा करनी चाहिये थी, और ऐसा होने पर नवाब-सरकार और अङ्गरेज़ों के साथ किसी प्रकार के युद्ध-विग्रह की सम्भावना भी न रहती; परन्तु कलकत्ते के अङ्गरेज़ सिराजुद्दौला से सहायता मांगने की आज्ञा पाकर भी उसके शत्रुओं को सहायता देने के लिए अग्रसर हुए, और बिना ही नवाब की अनुमति के कलकत्त में क़िला बनवाने लगे।

अब अलीवर्दी के अधिक दिन जीने की आशा न रही थी। एक तो वृद्धावस्था दूसरे उदरी सा असाध्य रोग। कुछ दिनों तक वैद्यों का उपदेश पालनकर अन्त में अलीवर्दी ने ओषधि-सेवन ही बिलकुल छोड़ दिया। सभी को ज्ञात हो गया कि अलीवर्दी का जीवन-प्रदीप अब अधिक दिन प्रज्ज्वलित नहीं रह सकता।

अलीवर्दी का अन्त समय जितना ही निकट आता गया, सिराजुद्दौला के भविष्य का आकाश उतना ही काली घनघटाओं से घिरने लगा। अन्त में एक दिन वृद्ध नाना अपने प्रिय दौहित्र को शान्तिप्रद वचनों से धैर्य और सान्त्वना देने के लिए सब के समक्ष यों कहने लगा :—

"तलवार हाथ में लेकर अपनी सारी ज़िन्दगी केवल युद्ध-क्षेत्र ही में गुज़ार अब मैं इस दुनिया से कूच कर रहा हूं। किन्तु मैं जन्मभर किसके लिए इतनी लड़ाइयां लड़ता रहा, और किसके लिए विविध उपायों से प्राणपण के साथ इस राज्य की रक्षा करके आज मर रहा हूं? वत्स! तुम्हारे ही लिए यह सब किया।

मेरे न होने पर तुम्हारी कैसी दुर्दशा होगी, इसके सोच में मैंने कितनी ही रातों पलक नहीं लगाया, तुमने यह कुछ भी नहीं जाना। मेरे न होने पर कौन किस तरह से तुम्हारा सर्वनाश कर सकता है, इसे मैं भली भांति जानता हूं।

हुसेनकुली ख़ां विद्वान, बुद्धिमान एवं प्रभावशाली पुरुष था, शौकतजंग पर उसका बड़ा प्रेम हो गया था। आज यदि हुसेनकुली ख़ां जीवित होता तो तुम्हारा मार्ग और भी कंटकाकीर्ण था; परन्तु वह हुसेनकुली अब नहीं है।

दीवान मानिकचंद तुम्हारा घोर शत्रु बन बैठता; परन्तु हमने इसीलिए उसे एक इलाक़ा देकर सन्तुष्ट कर रक्खा है।

इस समय और क्या कहूं, मेरा अंतिम उपदेश सुनो। यूरोपियन सौदागरों की शक्ति किस प्रकार बढ़ रही है, इसे हर घड़ी नज़र में रखना। वेही एकमात्र तुम्हारी आशंका की जड़ हैं।

यदि भगवान मेरी ज़िन्दगी को कुछ दिन इस दुनिया में और क़ायम रखता तो मैं तुम्हारी इस आशंका को भी निर्मूल कर डालता; परन्तु यह नहीं हुआ। अब यह काम अकेले तुम्हीं को करना होगा।

इन्होंने तैलंग प्रदेश की लड़ाई में अपनी जिस कुटिलनीति का परिचय दिया था, उसे लक्ष्य में रखते हुए तुम्हें सदा होशियारी से रहना पड़ेगा। इन लोगों ने उस प्रदेश के निवासियों में परस्पर लड़ाई झगड़ा करवा के सारा प्रदेश आपस में बांट चूंटकर प्रजा का सर्वस्व लूट लिया।

परन्तु समस्त यूरोपियन सौदागरों को एक ही साथ नीचा दिखाने की चेष्टा न करना। अङ्गरेज़ों ही की शक्ति बहुत ज़्यादा बढ़ गई है। देखो, उस रोज़ वे अंग्रिया देश को विजय करके आये हैं। सब से पहले इन्हीं का दमन करना।

अङ्गरेज़ों के नीचा देखने पर अन्यान्य यूरोपियन सौदागर सर उठाने या किसी तरह का उत्पात करने की हिम्मत न करेंगे। अङ्गरेज़ों को क़िला बनवाने अथवा सेना एकत्रित करने का मौक़ा कभी न देना, अगर दिया तो समझ लो कि "यह देश फिर तुम्हारा नहीं रहेगा।"

हम जिस समय की बात कह रहे हैं उस समय क़ासिम-बाज़ार की अङ्गरेज़ी कोठी में फ़ोर्थ नामक एक व्यक्ति डाक्टर था। वह केवल दवाइयों का सामान अपने पास रखता था, परन्तु ज़रूरत पड़ने पर कम्पनी का सब काम करने के लिए तैयार रहता था। उस ज़माने में यही रवाज सा हो रहा था। आज जो मालगोदाम में बैठे हुए बहीखाता लेकर हिसाब किताब लिख रहे हैं, कल वेही आवश्यकता आ पड़ने पर क़लम दवात ताक़ में रखकर कम्पनी के व्यापार की रक्षा के लिए बन्दूक़ों पर संगीन चढ़ाकर युद्धक्षेत्र में शत्रुओं का सामना करने के लिए अग्रसर होते थे। इसी प्रथा का अनुसरण करके डाक्टर साहब भी कभी कभी अङ्गरेज़ों के प्रतिनिधि बनकर नवाब के दरबार में आते जाते थे। अलीवर्दी जिस वक्त चारपाई से लग गया था, उठने की ताब न रह गई थी, उन दिनों डाक्टर साहब को प्रायः रोज़ ही नवाबी दरबार का भेद लेने के लिए नवाब के पास जाना पड़ता था। उस समय यही उनका मुख्य कार्य हो रहा था। वह हकीम और अलीवर्दी बीमार, अतएव रोगी अलीवर्दी के घर का द्वार वैद्य फ़ोर्थ के लिए खुला ही था। वे प्रायः इसी बहाने से रोज़ नवाब के पास हाज़िर होते थे, और जो कुछ सुनते थे उसका पूरा पूरा विवरण यत्नपूर्वक लिख रखते थे। इस स्थल पर उसके कुछ अंश को उद्धृत करना आवश्यक है।

पहले ही कह चुके हैं कि क़ासिम बाज़ार के अङ्गरेज़ों के साथ राजवल्लभ का बहुत कुछ मेल जोल हो गया था, और इसी कारण से कृष्णवल्लभ ने कलकत्ते में अङ्गरेज़ों से आश्रय पाया था। राजवल्लभ घसीटी बेगम के पक्ष में था, बल्कि एकमात्र राजवल्लभ ही असहाय अवस्था में उस समय घसीटी बेगम

का सहायक और आश्रयदाता था। अब उसी राजबल्लभ के साथ अङ्गरेज़ों का मेल बढ़ता हुआ देखकर सिराजुद्दौला को यह दृढ़ विश्वास होगया कि अङ्गरेज़ लोग भी घसीटी बेगम के पक्ष में जा मिले हैं। जो महाशय निष्पक्ष-भाव से इतिहास की आलोचना करेंगे उन्हें यह अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि सिराजुद्दौला ही ने अङ्गरेज़ों को मिथ्या बदनाम करने के लिए इस बात की चर्चा नहीं फैलाई बल्कि अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने भी उसे दूसरे रूप में इस प्रकार लिखा है:—"सभी लोगों का ख़याल था कि अलीवर्दी के न होने पर राज्य पर घसीटीबेगम का अधिकार होगा, इसलिए उसके प्रधान साथी और सलाही राजा राजबल्लभ को अपने हाथ में रखने के लिए कलकत्ते के अङ्गरेज़ कृष्णबल्लभ को आश्रय देने के लिए बाध्य हुए थे।" परन्तु डाक्टर फ़ोर्थ इस बात को स्वीकार नहीं करते हैं, उन्होंने सिराजुद्दौला ही को लोक और समाज में कलह-प्रिय चंचल नौजवान प्रमाणित करने की चेष्टा की है। वे लिखते हैं:—

"मैं नित्य प्रातःकाल नवाब को देखने जाया करता था। मृत्यु के पंद्रह दिन पहले जब मैं एक रोज़ उसे देखने गया तो उस वक़्त सिराजुद्दौला ने आकर नवाब से अर्ज़ किया कि मुझे ख़बर मिली है कि शायद अङ्गरेज़ों ने घसीटीबेगम की सहायता करनी मंज़ूर की है।

वृद्ध नवाब फ़ौरन ही मेरी ओर देखकर पूछने लगा कि "क्या यह बात ठीक है?"

मैंने कहा, "नहीं, यह कदापि ठीक नहीं। हमें अपदस्थ करने की आशा से हमारे अशुभचिंतक शत्रुओं ने इस तरह की

अफ़वाह उड़ाई होगी। अङ्गरेज़ों की कम्पनी सौदागरों की है, सैनिकों की नहीं। देश के राष्ट्र-विप्लव में वह कैसे सहायता दे सकती है ? देखिये, १०० वर्ष से अधिक ज़माना गुज़र गया, हम लोग वाणिज्य करते चले आते हैं, और हमेशा केवल वाणिज्य-लाभ ही में संतुष्ट रहते हैं। राष्ट्र-विप्लव के मामलों में हम कभी किसी के पक्ष का समर्थन नहीं करते।"

इस पर नवाब ने प्रश्न किया कि क़ासिमबाज़ार में तुम्हारी कोठी है या क़िला ? वहां कितने सैनिक रहते हैं ?

मैंने कहा कि नियम से अधिक नहीं रहते। कर्मचारियों को मिलाकर लगभग सब ४० आदमी हैं।

क्या कभी इससे ज़्यादा नहीं रहते ?

ज़्यादा रहे थे, सिर्फ़ मराठों के उपद्रवों के समय में। परन्तु अब वे सब झगड़े शान्त हो जाने पर अतिरिक्त सिपाही सब कलकत्ते चले गये हैं।

तुम्हारे फ़ौजी जहाज़ कहां रहते हैं ?

"बम्बई।"

वे जहाज़ क्या इधर कभी नहीं आयेंगे ?

यह हम नहीं कह सकते। वर्तमान में तो उनके आने का कोई कारण दिखाई नहीं देता।

तीन महीने पहले भी क्या तुम्हारे कोई जहाज़ यहां नहीं आये थे ?

आये थे। इस तरह से दो एक जहाज़ तो प्रायः हर साल ही आया करते हैं। वे केवल रसद पहुंचाने के लिए आते हैं।

इस प्रदेश में लड़ाकू जहाज़ लाने का क्या प्रयोजन है ?

कम्पनी के वाणिज्य की रक्षा और फरासीसों से युद्ध छिड़ने की आशंका का निवारण करना ही एकमात्र हमारा उद्देश है।

फ़रासीसों के साथ क्या फिर तुम्हारा युद्ध छिड़ गया है ?

नहीं अभी नहीं, पर शीघ्र छिड़ जाने की आशंका है।

उक्त प्रश्नोत्तर डाक्टर साहब के हस्तलिखित विवरण का अनुवाद है। डाक्टर फ़ोर्थ ने कम्पनी की नमकहलाली में कोई कसर उठा न रक्खी, उनकी निज की बातें ही इस का अकाट्य प्रमाण हैं। उन्होंने अङ्गरेज़ों को बिलकुल सीधा, सरलस्वभाव, ऐसे कि मानो भेड़ के बच्चे प्रमाणित करने के लिए कितनी ही बातें कह डालीं। परन्तु हमें अङ्गरेज़ ऐतिहासिकों के लेखों ही से यह प्रमाण मिल रहा है कि अङ्गरेज़ों ने नवाब को बिना ही रज़ामंदी के क़िला बनवाना शुरू कर दिया राजवल्लभ और घसीटीबेगम की सहायता करने के लिए कृष्णवल्लभ को कलकत्ते में आश्रय दिया, विलायत के अफ़सरों की आज्ञा पाकर भी नवाब की शरण लेने के बजाय उसके शत्रुओं का आश्रय ग्रहण किया, फ़रासीसों के साथ युद्ध छिड़ने का झूठा बहाना कर सैन्य-संग्रह और युद्ध की तैयारियां कीं। परन्तु सिराजुद्दौला ने नवाब के पास आकर जब यह अभियोग उपस्थित किया कि अङ्गरेज़ लोग घसीटीबेगम के पक्ष का अवलम्बन कर रहे हैं तो अङ्गरेज़ों के प्रतिनिधि फ़ोर्थ साहब फ़ौरन् ही बड़ी तेज़ी के साथ बोल उठेः—"ऐं! यह क्या बात? अङ्गरेज़ तो केवल बनिये हैं, वे क्या

राजनैतिक लड़ाई झगड़ों में कभी किसी के पक्ष का अवलम्बन कर सकते हैं ? वास्तव में ये सब बातें हमारे शत्रुओं की मनगढ़न्तें हैं ।"

अलीवर्दी का अन्त-समय निकट आगया । असाध्य रोग से दुर्बल शरीर निःसत्व होता गया, और १७५६ ई० के अप्रैल महीने में प्रजावत्सल, शान्तस्वभाव नवाब अलीवर्दी ने चिरशान्ति की शीतल गोद में विश्राम लिया ।

---

# बारहवां परिच्छेद ।

## अङ्गरेज़ वणिकों का उद्धत स्वभाव ।

१७५६ ई० के अप्रैल महीने में "नवाब मंसूरुलमुल्क सिराजुद्दौला शाहकुली खां मिर्ज़ा मोहम्मद हैबत जंग बहादुर" बङ्गाल, विहार और उड़ीसे के तख़्त पर बैठा। दुश्मनों के दिलों का भाव चाहे कुछ रहा हो, परन्तु प्रकटरूप से किसी ने बाधा डालने का साहस न किया। जो जहां थे, सब ने अपनी राजभक्ति प्रदर्शित करने में कोई त्रुटि नहीं की। यूरोपियन सौदागरों ने भी सिराजुद्दौला ही को नवाब स्वीकार कर लिया, और यथासमय इङ्गलैंड को यह ख़बर भेजकर पूर्ववत् अपने व्यापार-व्यवसाय में लगे रहे।

सिराजुद्दौला जिस समय सिंहासन पर बैठा, उस समय कलकत्ते की दशा बड़ी शोचनीय थी। एक तो अङ्गरेज़ों की संख्या वैसे ही बहुत कम थी, उसमें भी प्रायः प्रतिवर्ष हज़ारों अङ्गरेज़ अकाल ही में कालकवलित हो जाते थे। अधिकांश कलकत्ते के जलवायु का प्रकोप नहीं सह सकते थे। अङ्गरेज़ों के प्रयत्न से वहां एक ख़ैराती शफ़ाख़ाना खुल गया था, जिसमें बड़े आग्रह के साथ हज़ारों रोगी प्रविष्ट होते थे; परन्तु आसन्नमृत्यु होकर प्राण बचाने के लिए जो लोग वहां आते थे, उनमें से अधिकांश को ज़िन्दा लौटने का सुअवसर नहीं प्राप्त होता था।

बरसात के दिनों में मलेरिया ज्वर से सैकड़ों आदमी बीमार पड़ जाते थे। जिन लोगों के बरसात के दिन किसी तरह ज्यों त्यों करके कुशलपूर्वक बीत जाते थे, वे हरसाल १५ अक्टूबर को शरद ऋतु की परमोज्ज्वल चांदनीवाली प्रशान्त रजनी में एकत्र होकर प्रीतिभोज में सम्मिलित होते और बड़े प्रेम एवं सम्मान से एक दूसरे को गले लगाकर विविध आनन्द मानते थे।

मराठों के उपद्रवों से नगर की रक्षा करने के लिए अङ्गरेज़ों और बङ्गालियों ने मिलकर नगर के आसपास एक खाई—मराठा-खाई—खोद रक्खी थी। उसके भीतर पड़े हुए ग़लीज़ और दुर्गन्धित पदार्थों की बदबू शहर के लोगों की नाकों में भरी रहती थी। सड़क और घाट कुछ भी ठीक-ठाक नहीं थे। जो थे भी, वे कभी तो धूल और कभी कीचड़ से भरे हुए निरन्तर वमनकारी मैले पदार्थों से परिपूर्ण रहते थे। उस ज़माने में लालदीघी नामक बाग़ ही को लोग "पार्क" कहा करते थे; परन्तु उसमें पड़े हुए मैले पदार्थों की दुर्गंध भी दूर दूर तक के पथिकों को परेशान कर डालती थी।

आजकल जिस जगह सफ़ेद चमड़े के नर-शार्दूल परमोज्ज्वल चौरंगे महलों में सशरीर स्वर्ग के सुख का उपभोग कर रहे हैं, उस ज़माने में वहां केवल वन-शार्दूलों की भयानक आवाज़ से व्याप्त काले और सघन वन वृक्षों का समूह खड़ा था। १७५१ ई० में ईंटों की तैयारी के लिए उस जङ्गल का कुछ अंश निर्मूल कर दिया गया था; परन्तु उस सघन वन का बिलकुल ही विनाश नहीं हुआ; नगर के बीच में भी अनेक स्थानों पर वन-जात वृक्ष-लताएं स्वच्छंदतापूर्वक अपनी

स्वाभाविक शोभा का विकाश करके बड़े गौरव के साथ शाखा-समूह का विस्तार कर रही थीं। लोग केवल वाणिज्य-लाभ के लोभ अथवा मराठों के भय से ऐसे जंगली स्थान में आकर रहने लगे थे। परन्तु आभ्यंतरिक अवस्था चाहे जितनी शोचनीय रही हो, भागीरथी के तीर पर बसा हुआ, सुन्दर और विशाल महलों की श्रेणियों तथा प्रभूत जन-संख्या और शोभा के कारण कलकत्ता नगर एक महानगर प्रसिद्ध हो रहा था।

इस नवीन महानगर में अङ्गरेज़ों के प्रबल प्रताप की प्रतिष्ठा दिनों दिन बढ़ती जाती थी। ये लोग नवाब के राज्य में रहने पर भी कलकत्ते में अपनी स्वाधीनता का परिचय देने से तनिक भी नहीं चूकते थे। इनकी अनुमति से धीरे धीरे बहुत से पुर्तगीज़, अरमानी, मुग़ल और हिन्दू सौदागर कलकत्ते में अपने मकान बनवाकर वाणिज्य-व्यापार के द्वारा ख़ूब रुपया कमा रहे थे।

अरमानी सौदागरों में ख़्वाजा वाजिद के नाम ने विविध कारणों से बङ्गाल के इतिहास में स्थान प्राप्त किया है। वह नमक के व्यापार का एकाधिकार प्राप्त करके अपनी प्रतिष्ठा और समृद्धि के कारण सब लोगों का सम्मानपात्र बन गया था, और नवाब के दरबार से "फ़ख़रुलतज्जार"—वणिकों का गौरव—की उपाधि प्राप्त करके विशेष शक्तिशाली होगया था।

हिन्दू सौदागरों में उमाचरण—उमीचन्द—का नाम अङ्गरेज़ लेखकों के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। अङ्गरेज़ों ने इसे, धूर्तता की मूर्ति बताकर, लोक और समाज में

निन्दाभाजन बनाने के लिए पूरी कोशिश की है, और लालित्य एवं माधुर्य-पूर्ण वाक्यों की रचना में निपुण लार्ड मेकाले ने तो अपने वर्णन को सर्वांगसुन्दर बनाने के लिए "धूर्त बंगाली" लिखकर उस विचार का परिचय देने में भी तनिक आनाकानी नहीं की है। उमीचन्द बंगाली नहीं था। वह भारतवर्ष के पश्चिमी प्रदेश का एक हिन्दू बनियां था। बंगाल और बिहार में वाणिज्य-व्यापार करने के लिए यहां रहने लगा था। केवल वणिक शब्द ही से उमीचन्द का परिचय समाप्त नहीं होता, बल्कि सैकड़ों विशाल महलों से सजी हुई उसकी सुन्दर राजधानी, तरह तरह की पुष्प-वेलियों से सुशोभित उसका परम प्रसिद्ध उद्यान, मणिरत्नों से परिपूरित उसका बृहत् राजभाण्डार, सशस्त्र सैनिकों से सुरक्षित उसके महल का विशाल फाटक देखकर औरों की बात तो अलग रही, स्वयम् अङ्गरेज़ भी उसे एक राजा मानते थे। सेठों में जिस प्रकार जगत्-सेठ का बड़ा गौरव और सम्मान था उसी प्रकार सौदागरों में उमीचन्द की नवाब के दरबार में इज़्ज़त और प्रतिष्ठा थी। विपत्ति पड़ने पर अङ्गरेज़ लोग सर्वदा ही उमीचन्द की शरण लेते थे। अनेक बार उमीचन्द ही के अनुग्रह की बदौलत अङ्गरेज़ों की शरम और इज़्ज़त बची थी, इसका अब भी कुछ न कुछ प्रमाण मिलता है। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक अर्मी ने लिखा है:—

"उमीचन्द का महल बहुत ही आलीशान था। उसके भिन्न भिन्न विभागों में सैकड़ों कर्मचारी हर वक़्त काम किया करते थे। फाटक पर पर्याप्त सेना उसकी रक्षा के लिए तईनात रहती थी। वह कोई मामूली सौदागर नहीं था, बल्कि राजाओं की भांति बड़ी शान शौकत से रहता था। नवाब के

दरबार में उसका बड़ा आदर था, और नवाब उसे इतना मानते थे कि कोई आफ़त-मुसीबत आने पर नवाब-सरकार से किसी तरह की सहायता लेने के लिए लोग प्रायः उमीचन्द ही की शरण लेते थे।"

अङ्गरेज़ों ने उमीचन्द ही की सहायता से बंगाल में वाणिज्य-विस्तार करने का सुभीता पाया था। उसीके सहयोग से अङ्गरेज़ लोग गांव गांव में 'दादनी' बांटकर कपास तथा रेशमी वस्त्र की ख़रीद में ख़ूब रुपया पैदा करते थे। यदि ऐसी सुविधा न होती तो शायद ही अङ्गरेज़ लोगों को एक अपरिचित देश में अपनी शक्ति बढ़ाने या प्रतिष्ठा प्राप्त करने का मौक़ा मिलता। परन्तु कुछ दिन में इस देश के निवासियों के साथ परिचय होते ही भाग्य-विडम्बना से उन्होंने उमीचन्द की अवहेलना और उपेक्षा करनी शुरू की। सिराजुद्दौला जिस वक्त गद्दी पर बैठा तो अङ्गरेज़ लोग पहले की तरह उमीचन्द पर विश्वास नहीं करते थे। दोनों पक्षों में अनबन और मनोमालिन्य का जो सूत्रपात हुआ था, वह बहुत ही बढ़ चुका था।

उस ज़माने में यहां के लोग बड़े सरल-स्वभाव थे। अतएव वे अङ्गरेज़ों की उद्योगशीलता, निर्भीकता, विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता का परिचय पाकर बिना किसी सन्देह के उनपर विश्वास करने लगे थे, और उनके पक्षपाती बन गये थे। इसीसे अङ्गरेज़ों का मार्ग कुछ और भी सुगम होगया था।

सिराजुद्दौला अङ्गरेज़ों को अच्छी तरह पहिचान गया था। राज्य-कार्य में लिप्त होने पर अङ्गरेज़ों की कुटिल नीति का परिचय पाकर वह बहुत जलने लगा था। अङ्गरेज़ों

ने नवाब की बिना ही अनुमति के क़िला बनवाना प्रारंभ कर दिया था, जिससे सिराजुद्दौला की भभकती हुई क्रोधाग्नि में मानो घी की आहुति पड़ गई थी। उसने सिंहासन पर बैठते ही नाना अलीवर्दी के अन्तिम उपदेश का स्मरण करके अङ्गरेज़ों को दण्डित करने के लिए उनकी क़ासिमबाज़ार-वाली कोठी के गुमाश्ता वाट्स साहब को बुला भेजा।

वाट्स साहब के आने पर सिराजुद्दौला ने उनसे कोई बात छिपाई नहीं। उसने साफ़ लफ़्ज़ों में उनसे समझाकर कहा कि "मैं तुम लोगों के व्यवहार से बहुत ही असंतुष्ट हूँ। सुना है कि तुम मेरी आज्ञा की कुछ परवा न करके कलकत्ते के पास एक क़िला बनवा रहे हो। मैं तुम्हारे ऐसे कामों का समर्थन कदापि न कर सकूंगा। मैं तुमको केवल वणिक ही जानता हूं। यदि तुम बनियों की भांति शान्तभाव से रहना चाहो तो मैं तुम्हें आदर के साथ आश्रय दूंगा। परन्तु यह अच्छी तरह समझे रहना कि मैं ही इस देश का नवाब हूँ, यदि क़िले की चारदीवारी गिराने में ज़रा भी कोर कसर की गई तो मुझे फिर किसी तरह भी संतुष्ट न कर सकोगे।"

वाट्स साहब इन सब बातों का कोई ठीक जवाब न दे सके। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक ओर्मी ने लिखा है:—"वाट्स साहब ने सिराजुद्दौला की बातों से, उसके चित्त में अङ्गरेज़ों के प्रति द्वेषभाव और शत्रुता का परिचय पाकर भी यह बात अङ्गरेज़ी दरबार में प्रकट नहीं की, और केवल इसी कारण से भविष्य में इतना भारी अनर्थ उठ खड़ा हुआ।" परन्तु वाट्स साहब ने यथासमय यह सब वृत्तान्त कलकत्ते के अङ्गरेज़ों को लिख भेजा था, इसका प्रमाण आज भी प्राप्त है। हेस्टिंग्स के लिखे हुए जो काग़ज़ात इंगलैंड के अजायब-

घर में संग्रहीत हैं उनमें से एक पत्र का आशय है कि "क़ासिम-बाज़ार पर आक्रमण होने से पहले वाट्स साहब ने अङ्गरेज़ी गवर्नर और कौंसिल को सूचित किया था कि सिराजुद्दौला के असन्तोष का प्रबल कारण यह है कि कलकत्ते में अङ्गरेज़ लोग उसकी बिना ही आज्ञा और अनुमति के क़िला बनवा रहे हैं। वह अङ्गरेज़ों को केवल साधारण सौदागरों की भांति रखना चाहता है, और इस दशा में वह उन्हें हर तरह से मदद देने को तैयार है, परन्तु वह अंगरेज़ों के राजाओं के से ठाठ बाट जोड़ने का प्रबल विरोधी है, और ऐसा करने पर वह हमारे नये क़िले की इमारत वग़ैरह सब गिरवा देना चाहता है।"

सिराजुद्दौला के असंतोष के वास्तविक कारण को सभी अंगरेज़ अच्छी तरह जानते थे। उनके दोषों को छिपा रखने के लिए इतिहास के पृष्ठों में चाहे कुछ लिखा गया हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि आश्रित वणिक होते हुए भी नवाब की इच्छा और आज्ञा के प्रतिकूल क़िले की बुनियाद डालकर अङ्गरेज़ों ने अपनी निरंकुशता का पूरा परिचय दिया था। यह कहना सत्य का सरासर अपमान करना है कि कलकत्ते के अंगरेज़ी दरबार के लोग इस साधारण सी बात को बिलकुल जानते ही न थे। वे भली भांति जानते थे, समझते थे और उन्हें यह भी विश्वास था कि सिराजुद्दौला अङ्गरेज़ों से द्वेष रखता ही है, अतएव सरलतापूर्वक आज्ञा मांगने से वह हमें क़िला बनवाने की इजाज़त कभी न देगा। इसलिए उन्होंने जानबूझकर भी सिराजुद्दौला की आज्ञा की जो उपेक्षा की, उसके लिए ऐतिहासिक निर्णय में अङ्गरेज़ों ही को दोषी होना पड़ेगा।

सिराजुद्दौला का कथन अरण्य-रोदन हुआ। न तो वाट्स साहब ने और न कलकत्ते की अङ्गरेज़ी कौंसिल ने उसकी बातों का ठीक जबाब दिया। सिराजुद्दौला यदि "उच्छृङ्खल-स्वभाव का अशान्त युवक" होता तो तत्काल अनर्थ हो जाने में देर न लगती; परन्तु सिराजुद्दौला ने मर्मपीड़ित होकर भी सहनशीलता से काम लिया। जिस दुर्दमनीय हृदय-वेग ने यौवन के आरम्भ-काल में उसे भयानक पाप-पंक में फांस लिया था, वह सिंहासन पर बैठते ही बिलकुल ठंडा पड़ गया था, अन्यथा अङ्गरेज़ों के एक नाचीज़ गुमाश्ता वाट्स साहब की दुर्दशा में देर ही क्या लगती? निदान सिराजुद्दौला ने उनसे कुछ नहीं कहा, और साक्षात-रूप से अङ्गरेज़ी दरबार का स्पष्ट उत्तर पाने के लिए उसने एक राजदूत को कलकत्ते भेजने का प्रबन्ध किया।

इस समय से सिराजुद्दौला ने अपने अभीष्ट मार्ग में जिस प्रकार बड़ी सावधानी से धीरे धीरे पग बढ़ाना शुरू किया था, इतिहास में उसकी यथोचित आलोचना नहीं हुई है। इसी लिए कुछ लोगों ने तो अनजान में और कुछ ने अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए उसे मिथ्या कलंकों से कलंकित किया है। सब लोग जानते थे कि अङ्गरेज़ यों ही सहज में क़िले की चारदीवारी गिरा देने के लिए राज़ी नहीं होंगे, परन्तु सिराजुद्दौला भी यह अच्छी तरह जानता था कि चाहे जो हो, यदि इन्होंने एक बार मुसलमान नवाब की कमज़ोरी का मौक़ा पाकर इसलामी राज्य में क़िला बनवा लिया तो फिर सहसा साधारण वणिक-मंडली की भांति इन्हें शासित रखना सहज न होगा। इसीलिए किसी सामान्य राजदूत को न भेजकर एक बुद्धिमान, प्रतिष्ठित, चतुर और प्रतिभाशाली व्यक्ति से

यह काम कराने के लिए ख़्वाजावाजिद को इस दूत-कार्य का भार सौंपा गया। सिराजुद्दौला को आशा थी कि शायद ख़्वाजा-वाजिद के परामर्श और उपदेश से अंगरेज़ों का मति-भ्रम दूर हो जायगा, और बिना ही रक्तपात के शान्तिपूर्वक सारे कलह-विवादों का निपटारा हो जायगा।

ख़्वाजावाजिद ने कोशिश में कोई कसर न की। उसने यथासमय कलकत्ते के अङ्गरेज़ी दरबार में जाकर सारी बातें समझाकर कह सुनाईं। पर उसकी बातों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया, बल्कि परिणाम उलटा हुआ। अङ्गरेज़ों ने नवाब के पत्र का कुछ उत्तर न देकर उस प्रतिष्ठित राजदूत को अनेक तरह से पीड़ित और अपमानित करके शहर से बाहर निकाल दिया! ये बातें किसी की कपोलकल्पित नहीं हैं। विलायत के अजायबघर में सुरक्षित हस्तलिखित पुराने काग़ज़-पत्रों में इनका उल्लेख मिलता है। उन्हीं में के एक पत्र का आशय है कि "नवाब की ओर से अङ्गरेज़ी गवर्नर के पास ख़्वाजा-वाजिद (फ़ख़रुलतज्जार) एक संदेशा लेकर आया था। वह ऐसी शर्तों को मंज़ूर कराने के लिए भेजा गया था जिन्हें अङ्ग-रेज़ लोग कदापि स्वीकार नहीं कर सकते थे। इसलिए उस-की बातों की कुछ क़द्र नहीं की गई, और बिना ही कुछ जवाब दिये, निरादर के साथ उसे शहर से बाहर निकाल दिया गया।"

परन्तु सिराजुद्दौला इसपर भी अधीर नहीं हुआ। उसने अङ्गरेज़ों के उद्दण्ड स्वभाव का भली भांति परिचय पाकर केवल यही निश्चय कर रक्खा कि अब या कुछ दिन बाद अङ्ग-रेज़ों के प्रबल रोग का उत्कट इलाज अवश्य ही करना होगा।

परन्तु सहसा इस तरह की कोई व्यवस्था न करके वह फिर एक बार दूत भेजने की चेष्टा करने लगा।

सिराजुद्दौला की अधीनता में राजा रामरामसिंह गुप्तचर-विभाग के सर्वोच्च पद पर नियुक्त था। मराठों की लड़ाई के अन्तिम समय में राजा रामरामसिंह ने मेदिनीपुर की फ़ौजदारी के पद पर तईनात रहकर अपनी स्वामिभक्ति का पूरा परिचय दिया था। इसलिए नवाब अलीवर्दी ने प्रसन्न होकर उसी के पुरस्कार में राजा रामरामसिंह को चराधिपति—जासूसों का सरदार—बना दिया था। नवाब अलीवर्दी और सिराजुद्दौला दोनों ही राजा रामरामसिंह पर बड़ी श्रद्धा रखते थे, और विश्वासपात्र कर्मचारी समझकर प्रायः अनेक मामलों में उससे सलाह लिया करते थे। सिराजुद्दौला ने इन्हीं राजा रामरामसिंह को दूत भेजने का भार सौंपा। ख़्वाजावाजिद के अपमान की बात चारों ओर प्रसिद्ध होगई थी। जिन्होंने ख़्वाजावाजिद जैसे सम्मानित राजदूत को इस तरह अपमानित कर शहर से बाहर निकाल देने में तनिक भी दरेग़ नहीं किया वे अन्य किसी के साथ भी ख़ातिर से पेश आयेंगे, इसकी कुछ सम्भावना न थी।

राजा रामरामसिंह बड़ा चतुर था। उसने सोचा कि शायद पहले से किसी तरह पता लग जाने पर अंगरेज़ लोग राजदूत को कलकत्ते में घुसने भी न दें, इसलिए उसने एक नये उपाय का अवलम्बन किया। अपने भाई को इस दूत-कार्य पर नियुक्त करके उसे फेरीवालों के कपट-वेश में एक छोटी सी नाव पर सवार कराके कलकत्ते भेज दिया। इस युक्ति से उसे कोई न पहिचान सका, और उसने सकुशल कलकत्ते

पहुंचकर उमीचंद के मकान में आश्रय लिया, एवं उसी के साथ अंगरेज़ी दरबार में उपस्थित होकर उसने अपने को प्रकट किया। परन्तु अंगरेज़ी दरबार ने उसकी भी बड़ी दुर्दशा की!

इन पुरानी बातों को पढ़कर स्वतः यह जानने की इच्छा होती है कि अंगरेज़ लोग ऐसे निरंकुश क्यों बन गये थे? अथवा इन वर्णनों को नितान्त मिथ्या और झूठी अफ़वाहें समझ लेने में क्या हानि है? जो पदाश्रित विदेशी वणिक थे उनमें यह स्पर्द्धा, यह साहस और यह बल कहां से आया? वास्तव में पूर्वापर समस्त घटनाओं की भली प्रकार आलोचना न करने पर इन सभी बातों को सरासर मिथ्या और झूठी किम्बदंतियां समझकर छोड़ देने की इच्छा होती है। परन्तु ये किम्बदंतियां नहीं हैं, इनके गूढ़ रहस्य को प्रकट कर देने पर किसी को भी आश्चर्य और विस्मय का कोई कारण न रह जायगा।

सिराजुद्दौला ने यद्यपि बिना किसी झगड़ा-फ़साद के सिंहासन पर पदार्पण किया था तथापि अधिकांश लोगों का यह विश्वास था कि राजबल्लभ के रहते हुए सिराजुद्दौला की ख़ैर नहीं। चाहे जिस तरह हो, सिराजुद्दौला को शीघ्र ही सिंहासनच्युत करके घसीटीबेगम के नाम से महाराज राजबल्लभ ही बंगाल, बिहार और उड़ीसे की नवाबी करेगा। अलीवर्दी की ज़िन्दगी ही में अङ्गरेज़ों को यह प्रतीत होने लगा था, और इसी कारण राजबल्लभ को किसी तरह अपने हाथ में रखने के लिए उसके सारे पूर्व अत्याचारों को भुलाकर अङ्गरेज़ों ने उसके भागे हुए पुत्र कृष्णबल्लभ को कलकत्ते में आश्रय दिया था। वाट्स साहब प्रायः रोज़ ही लिखा

करते थे कि "सिराजुद्दौला के तख़्त पर बैठ जाने से भी क्या होगा, अभी तक घसीटीबेगम की आशा निर्मूल नहीं हुईहै।" अतएव अङ्गरेज़ लोगों ने राजवल्लभ को हाथ से निकाल कर सिराजुद्दौला का पक्षावलम्बन करने का साहस नहीं किया।

भविष्य में जब राजवल्लभ की सारी आशाएं और इच्छाएं एकदम निर्मूल हो गईं, और सिराजुद्दौला ही ने बड़ी शान के साथ राज्य-शासन आरम्भ किया, तब उस समय का इतिहास लिखते हुए अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक विचारे सन्न रह गये। उन्होंने आद्योपांत सारी बातों को गोलमाल करके अङ्गरेज़ों की तरफ़ से सिर्फ़ इतना ही लिख रक्खा कि "एक राजदूत आया था, यह ठीक है; परन्तु उसे सिराजुद्दौला ही ने भेजा था यह हम कैसे जान सकते थे? राजदूत ने एक साधारण फेरीवाले का रूप बनाकर नगर में क्यों प्रवेश किया, और हमारे घोर शत्रु उमीचंद के यहां वह क्यों ठहरा? उमीचंद से हमारी शत्रुता थी, इसलिए हमने सोचा कि उमीचंद ने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए यह कपट-जाल फैलाया है। इसीलिए तो हमने राजदूत की अवहेलना की थी, अन्यथा यदि हम किंचित्मात्र भी यह जानते कि सिराजुद्दौला ने स्वयम् यह राजदूत भेजा है,—छिः छिः, भला, क्या हम पागल थे जो उसे इस प्रकार अपमानित करते?"

पीछे के इतिहास-लेखक चाहे कुछ कहें, परन्तु एक समकालीन अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक "अर्मी" इन सब बातों को एकदम अस्वीकार नहीं कर सका। वह लिखता है कि "राजा रामराम सिंह का भाई जिस दिन कलकत्ते में आया था, उस दिन गवर्नर ड्रेक साहब राजधानी में नहीं थे। शहर-कोतवाल हालवेल साहब के साथ ही उस राजदूत का पहला साक्षात्

हुआ। उसके दूसरे दिन ड्रेक साहब के आ जाने पर मंत्रि-मण्डल का अधिवेशन हुआ। जो लोग उपस्थित थे, उन सब ने यही कहा कि यह सब उमीचंद की जाली कार्रवाई है। कारण यह था कि क़ासिमबाज़ार से ख़बर आई थी कि घसीटीबेगम की आशा अभी निर्मूल नहीं हुई है। ऐसी दशा में राजदूत जो पत्र लाया था वह सभी की नज़रों में संदेहात्मक समझा गया, और किसी ने उसका उत्तर देना आवश्यक न समझा। राजदूत को चले जाने की आज्ञा दी गई; परन्तु उद्दंड एवं अशिक्षित नौकरों ने कुछ और ही कर उठाया, उन्होंने राजदूत को विशेष रूप से अपमानित करके बाहर निकाल दिया।" इस व्यवहार से पीछे सिराजुद्दौला असंतुष्ट होगा, अतएव सावधान रहने के लिए शीघ्र ही वाट्स साहब को एक उपदेशपूर्ण पत्र लिखा गया।

सब बातों की एक साथ समालोचना करने से ज्ञात होता है कि किसी बात का किसी के साथ ऐक्य नहीं, सबमें परस्पर विरोध है। यदि उमीचंद के कुटिल कौशल ही का निश्चय हो गया था तो वाट्स साहब को ख़बरदार करने के लिए पत्र लिखने की क्या ज़रूरत थी? घसीटीबेगम की राज्य-प्राप्ति की आशा अभी निर्मूल हुई या नहीं, इस सम्बन्ध में उसपर विचार करने की आवश्यकता ही क्या थी? विचार करने से जान पड़ता है कि अङ्गरेज़ लोगों ने भविष्य में अपने दोषों को दबाने के लिए जिन कूट वर्णनों की रचना की है, कार्य के समय उन्होंने उनके प्रति कभी विश्वास-स्थापन नहीं किया था। राजबल्लभ भी मुट्ठी में रहे और सिराजुद्दौला भी उत्तेजित न हो। जान पड़ता है, यही उस समय अङ्गरेज़ों का मूलमंत्र हो रहा था।

सिराजुद्दौला के पास इस अनुचित अपमान की ख़बर पहुंचते ही अङ्गरेज़ों के प्रतिनिधि वाट्स साहब एक वकील को साथ लेकर दरबार में उपस्थित हुए, और वकील के मुख से पूर्व-शिक्षित मीठी मीठी बातों का पाठ पढ़वाकर बड़े अदब के साथ आसन ग्रहण किया। अङ्गरेज़ लोग जिस सिराजुद्दौला को दुर्दान्त नर-पिशाच बतलाने से भी नहीं चूके हैं उसी युवक सिराजुद्दौला ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्रबल प्रतापान्वित मुग़लों के राजसिंहासन पर बैठकर अपने पदाश्रित वणिकों की इतनी बड़ी गुस्ताख़ी का परिचय पाकर भी उनके प्रति किंचित् रोष प्रकट नहीं किया। उसने समझ लिया कि ये अङ्गरेज़ सौदागर केवल हमारी घरू लड़ाई और पारस्परिक विद्रोह के कारण ही अपने उद्दण्ड और उच्छृङ्खल स्वभाव का भरपूर परिचय दे रहे हैं। इसलिए वह सबसे पहले घसीटीबेगम के षड़यंत्र का सर्वनाश करने की चेष्टा करने लगा।

घसीटीबेगम विधवा थी। सिराजुद्दौला के अतिरिक्त उसका कोई सुहृद् सम्बन्धी न था। अतएव वैधव्य की दशा में मोतीझील के राजमहल में एकाकिनी रहकर उसका स्वाधीन-भाव से इधर उधर घूमना सिराजुद्दौला को अनुचित ज्ञान पड़ता था। इसलिए उसने एक बार बड़े विनीत वचनों में घसीटीबेगम से, अपनी माता तथा अलीवर्दी की बेगम के साथ एक ही महल में एकत्र रहने के लिए निवेदन किया। परन्तु इससे राजवल्लभ की स्वार्थ-सिद्धि का सहज मार्ग सदा के लिए अवरुद्ध होता देखकर महल के विशाल फाटक पर उसने बड़े गाजे बाजे के साथ सेना संगठित करनी शुरू की। सिराजुद्दौला ने इससे क्रुद्ध न होकर उसे राजमहल में बुलाया;

और उसके समस्त कुचरित्रों और दुराचारों को जानते हुए भी उसके सम्मान और प्रतिष्ठा में तनिक भी कमी न की। एवं इस प्रकार विना ही युद्ध-कलह और रक्तपात के मोती-झील पर अधिकार करके पितृव्य-रमणी घसीटीबेगम को अपने अन्तःपुर में ले आया। इस चातुर्य-कौशल से बिना ही खूनखराबे के कलह की भभकती हुई आग सहज ही में शान्त हो गई। परन्तु इतिहास-लेखकों ने इसके लिए भी सिराजुद्दौला की प्रशंसा नहीं की, वल्कि वास्तविक बातों को छिपाकर उन्होंने यह लिख रक्खा कि "सिराजुद्दौला के विषय में अधिक क्या कहें; उसने सिंहासन पर बैठते ही अपनी पितृव्य-रमणी घसीटीबेगम का सर्वस्व अपहरण कर लिया था!

---

# तेरहवां परिच्छेद ।

## क़ासिमबाज़ार का अवरोध ।

मुसलमानों की पुरानी राजधानी मुर्शिदाबाद के बढ़े चढ़े सौभाग्य की बातें समय के परिवर्तन से अब केवल जन-श्रुतियों के रूप में शेष रह गई हैं। परन्तु सिराजुद्दौला के समय में उसकी अवस्था बड़े गौरव की अवस्था थी। गंगा के तट पर सुन्दर पुष्पोद्यान और दोनों किनारों से सटे हुए विशाल महलों की क़तारें उस ज़माने की इस इसलामी राज-धानी को वर्तमान की गर्वोन्नत ब्रिटिश राजनगरी लन्दन के समान ही शोभायमान और समृद्धिशालिनी बना रही थीं, बल्कि लन्दन की अपेक्षा मुर्शिदाबाद की साम्पत्तिक अवस्था उन दिनों बहुत बढ़ी चढ़ी थी। तत्कालीन अङ्गरेज़ राजपुरुषों ने भी मुक्तकंठ से इसे स्वीकार किया है। १७७२ ई० में लार्ड क्लाइव ने एक बार 'हौस आफ़ कामन्स' में कहा था कि "मुर्शिदाबाद लन्दन ही के सदृश प्रतापी शहर है, बल्कि मुर्शिदाबाद में लन्दन की अपेक्षा अधिक धनाढ्य और समृद्धि-शाली मनुष्य आबाद हैं।"

इस राजधानी में कोई क़िला नहीं था। कई एक फाटकों के सिवाय नगर की रक्षा के लिए कोई चारदीवारी भी नहीं थी, और न इस तरह की बात किसी की कल्पना में भी समाती थी कि मुग़लों के प्रबल प्रताप को चूर्ण करके सहसा कोई इस राजधानी पर अधिकार जमाने का साहस करेगा।

राजधानी की ऐसी अरक्षित अवस्था का पता पाकर महाराष्ट्रों की लुटेरी सेना जब वास्तव में राजधानी पर आक्रमण करके जगत्-सेठ का सारा ख़ज़ाना तक लूट लेगई, तब किसी किसी को कुछ होश हुआ। किन्तु अलीवर्दी ने फिर भी इसपर ध्यान न दिया, और अपने अपने जान-माल की रक्षा के लिए सर्वसाधारण प्रजा को स्वाधीनता दे देना ही उसने पर्याप्त समझा। राजधानी की रक्षा का कोई बन्दोबस्त नहीं किया गया। परन्तु, और कोई कुछ करे या न करे, बुद्धिमान् अंगरेज़ सौदागरों ने मौक़ा पाकर उसी समय अपनी क़ासिमबाज़ार की कोठी के चारो ओर चारदीवारी बनवा ली थी, और तोपों से फाटक को सजाकर एक छोटामोटा क़िला सा तैयार कर लिया था। कालक्रम से अब यह क़िला धूलिधूसरित हो गया है। केवल स्थान-निर्देश के लिए अब वहां कुछ स्वच्छन्द वनजात जंगली वृक्ष बड़े गौरव के साथ आकाश में अपनी डालें फैलाकर दृढ़ता से क़दम जमाये खड़े हैं। भागीरथी की धारा ने सम्मानपूर्वक वहां से दूर हटकर अंगरेज़ों के इस धूलिधूसरित क़िले की नींव के स्थान को और भी अधिक भयंकर बना डाला है।

यह क़िला समचतुष्कोण न होने पर भी देखने में प्रायः चतुष्कोण जान पड़ता था। चारो ओर बड़ी मज़बूत चारदीवारी थी। चारदीवारी से सटे हुए चार विशाल बुर्ज थे। प्रत्येक बुर्ज पर दस दस तोपें लगी थीं, और नदी की ओरवाली दीवार पर क़तार क़तार में बासठ तोपें लगी हुई थीं। फाटक के दोनों ओर दो बृहदाकार तोपें निरंतर अपना भयंकर मुंह पसारे अङ्गरेज़ सौदागरों के समर-कौशल का परिचय दे रही थीं। सलामी की तोपों के बहाने से और भी अनेक तोप

जाकर अंगरेज़ों ने इस क़िले के भीतर सजा रक्खी थीं। युद्ध के समय इनसे भी गोले बरसाने का काम निकल सकता था। निदान इन सब कारणों से क़ासिमबाज़ार के अङ्गरेज़ी क़िले पर सहज ही में किसी के अधिकार जमा लेने की सम्भावना न थी।

विलियम वाट्स, कलेट, वाट्सन, साइकस, पईच, वाट्स चेम्बर्स, वारन् हेस्टिंग्स इत्यादि अङ्गरेज़ कर्मचारी इसी क़िले में रहकर कम्पनी के वाणिज्य-व्यवसाय की रक्षा कर रहे थे। क़िले की रक्षा के लिए लेफ्टिनेंट इलियट की मातहती में बहुत से गोलंदाज़ सिपाही हरवक़्त क़िले के भीतर टहलते रहते थे।

एक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक ने लिखा है कि सिराजुद्दौला के क़ासिमबाज़ार पर आक्रमण करते ही अङ्गरेज़ों ने बिना किसी दंगा-फ़साद के क़िला छोड़ नवाब के पास जाकर आत्मसमर्पण किया था। परन्तु यह बात सर्वांश में ठीक नहीं है। विलायत के अजायबघर में क़ासिमबाज़ार के अवरोध का एक हस्तलिखित इतिहास मौजूद है। कुछ लोग कहते हैं कि वह वारन् हेस्टिंग्स का लिखा हुआ है। मुर्शिदाबाद के भूतपूर्व अफ़सर बिवारिज महोदय ने उसका कुछ अंश प्रकाशित करके अधिकांश लोगों का भ्रम दूर कर दिया है। अस्तु, वह चाहे जिसने लिखा हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि वह तात्कालिक अङ्गरेज़ों की स्वहस्तलिखित आत्मकहानी है। वह यद्यपि शृङ्खलाबद्ध इतिहास नहीं है तथापि किसी मत-विशेष का समर्थन करने के हेतु अथवा एक का दोष दूसरे के मत्थे मढ़ने के लिए उसमें किसी तरह की कोई चेष्टा नहीं की गई है। उसी ज़माने के अङ्गरेज़ों की लेखनी से लिखा हुआ वह इतिहास वास्तव में अधिक प्रामाणिक और माननीय है।

क़ासिमबाज़ार के सभी अंगरेज़ सौदागर अपने को घसीटी-बेगम का सहायक और पक्षपाती समझते थे। अतएव उन्हें मालूम ही था कि आज में या कल में, अथवा दस दिन बाद, बूढ़े नवाब अलीवर्दी की मानव लीला समाप्त होते ही सिराजुद्दौला के साथ हमारे घोर युद्ध का सूत्रपात होगा। इसीलिए अवसर पाकर गुप्तरूप से उन्होंने क़ासिमबाज़ार के क़िले में यथाशक्ति गोलों और हथियारों का संग्रह करने में कोई कसर न की। इस तरह से क़ासिमबाज़ार में युद्ध का जो बहुत सा सामान इकट्ठा किया गया था, भविष्य में कप्तान ग्रान्ट साहब ने उसके विषय में कितने ही आक्षेप किये हैं। वह लिखते हैं :—"क़ासिमबाज़ार के छिन जाने ही से हमारे ऊपर सारी मुसीबतें आईं। वहां से हमारे शत्रुओं को गोला-बारूद इत्यादि सामान ही नहीं मिल गया, बल्कि उससे उनका साहस बढ़ गया, और वे सहज ही हमारे बड़े क़िले को फ़तह करने में समर्थ हुए।

घसीटीबेगम को वश में कर लेने पर भी सिराजुद्दौला को चैन से बैठने का मौक़ा नहीं मिला। उत्तर में पुर्नियां का शासक शौकतजंग और दक्षिण में कलकत्ते के उद्धत अंगरेज़ उस समय भी ईर्ष्या और स्पर्द्धा से सिराजुद्दौला की राजशक्ति का उपहास कर रहे थे। इसलिए सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद के षड़यंत्र का निवारण करके फ़ौरन ही पुर्नियां के झगड़े को भी दूर कर देने के लिए सेना के साथ युद्ध-यात्रा करके राजमहल होता हुआ पुर्नियां की ओर बढ़ा। चलते समय उसने कलकत्ते के निरंकुश अङ्गरेज़ों को पुनः बड़ी डाटडपट के साथ लिख भेजा कि "यदि इस पत्र को पढ़ते ही अंगरेज़ी गवर्नर

ड्रेक साहब क़िले की चारदीवारी नहीं गिरा देंगे तो मैं स्वयम् कलकत्ते आकर उन्हें गंगा में फेंक दूंगा।"

यथासमय यह पत्र अंगरेज़ी दरबार में पहुंचा। अंगरेज़ों ने अबतक राजवल्लभ और घसीटीबेगम पर भरोसा रखकर सिराजुद्दौला के भेजे हुए प्रतिष्ठित राजदूत को अपमानित करके नगर से बाहर निकाल देने में तनिक भी दरेग़ नहीं किया, और नवाब की चिट्ठी पाकर भी उसका जवाब देना ज़रूरी नहीं समझा, परन्तु अब की बार सिराजुद्दौला के इस क्रोधपूर्ण पत्र को पढ़कर सभी अंगरेज़ भयभीत हो गये। इस बार चिट्ठी का उत्तर भेजा गया, परन्तु उसमें असल बात का कोई जवाब नहीं दिया गया।

महामति ड्रेक ने लिख भेजा कि "यह सब झूठ बात है! किसने कहा है कि अंगरेज़ लोग कलकत्ते में नगरप्राचीर निर्माण करा रहे हैं? फ़रासीसों के साथ युद्ध छिड़ने की सम्भावना है। उन्होंने मदरास पर अधिकार जमा लिया है, और सम्भव है कि वे बंगाल पर भी आक्रमण करें, इसी आशंका से हम नदी के तीर पर तोपें लगाने के कुछ स्थानों की केवल मरम्मत करा रहे हैं। नगर को मराठों की लूटपाट से सुरक्षित रखने के लिए कुछ दिन पहले सर्वसाधारण की इच्छा के अनुसार हमने वहां पर एक 'मराठा खाई' खोदी थी, और उसके लिए नवाब अलीवर्दी की आज्ञा लेली गई थी। उसके अतिरिक्त हम कोई नया क़िला नहीं बनवा रहे हैं।" ड्रेक साहब के इस जवाब से अंगरेज़ इतिहास-लेखक भी संतुष्ट नहीं हो सके, उन्होंने भी लिखा है कि "जब सिराजुद्दौला अंगरेज़ों पर इतना लालताल होकर तलवार

उठाने को तैयार हो गया था तो ऐसे अवसर पर इस तरह का उत्तर लिख भेजना युक्तिसंगत नहीं था ।"

"सवाल दीगर जवाब दीगर" अंगरेज़ों ने बाग़बाज़ार के पास पेरिंग नामक एक नया क़िला बनवाया था, और अपनी इच्छानुसार कलकत्ते के अंगरेज़ी क़िले की मरम्मत करवा रहे थे; परन्तु किसी कार्य के लिए भी उन्होंने नवाब की अनुमति नहीं ली । सिराजुद्दौला ने उनसे पुराने क़िले को गिरा देने के लिए नहीं कहा था, बल्कि कलकत्ते में बाग़बाज़ार के पास जो नया क़िला बनवाया जा रहा था उसको गिरा देने के लिए कहा था; परन्तु ड्रेक साहब ने उसके विषय में 'सत्य-कृष्ण' कुछ भी न कहा ।

उद्दण्ड अंगरेज़ अपनी कूट चालबाज़ियों से सिराजुद्दौला की तीक्ष्ण दृष्टि में धूल न झोंक सके । वह जिस समय राजमहल तक पहुंचा तो वहीं ड्रेक साहब का पत्र उसके हस्तगत हुआ । पत्र को पढ़ते ही सिराजुद्दौला आग बबूला हो गया । मित्र, सम्बन्धी, आत्मीय तथा मंत्री इत्यादि जो पास खड़े थे, किसी को भी अपनी बात पूरी करने का साहस न हुआ, सब जहां के तहां चुप हो रहे । लात से मारी हुई अभिमानिनी काली सांपिन अपने ज़हरीले फन को फैलाती हुई शिर ऊंचा कर जिस प्रकार ज़ोर से गरज उठती है, उसी प्रकार सिराजुद्दौला प्रचंड क्रोधावेग में गरजने लगा । उसकी आज्ञा पाते ही हाथी, घोड़ा, रथ तथा पैदलों की समस्त सेना तत्काल ही डेरा-डंडा उठाकर घोर निनाद करती हुई मुर्शिदाबाद की ओर बढ़ी । सब ने निश्चय कर लिया कि बस, अबकी बार अंगरेज़ों की ख़ैर नहीं । इसी घड़ी से सिराजुद्दौला के इति-

हास का रुधिर-पंक में कलंकित होना प्रारम्भ हुआ। राज-महल के डेरे में उद्दण्ड अंगरेज़ों की निरंकुश लेखनी ने सिराजुद्दौला के भावी क्षेत्र में जिस विषवृक्ष का बीज बोया था, सिराजुद्दौला का परवर्ती इतिहास केवल उसी विषवृक्ष के क्रमशः विकाश का शोचनीय इतिहास है।

संसार के स्वाधीन राजाओं के साथ तुलना करते हुए जो लोग सिराजुद्दौला के उक्त राजरोष की समालोचना करेंगे, उन्हें उसकी निन्दा और भर्त्सना करने का कोई मौक़ा न मिलेगा। उसने जैसी दशा में क्रुद्ध होकर अंगरेज़ों के विरुद्ध तलवार उठाई थी उसकी अपेक्षा कितनी ही तुच्छ बातों को लेकर अँगरेज़ राजाओं ने, उज्ज्वल ज्ञान और नवीन सभ्यता तथा तर्क और नई २ युक्तियों का विकाश करनेवाली उन्नीसवीं शताब्दी में भी कितने ही देशों में रोमांचकारी युद्धों की भयंकर दावाग्नि को प्रज्ज्वलित किया था। राजशक्ति सर्वोपरि शक्ति है। शत्रु हो या मित्र, उसका प्रतिद्वन्द्वी चाहे कोई बड़ा प्रभावशाली स्वाधीन नरेश हो चाहे सर्वथा निर्बल और पदाश्रित, जो कोई भी समुन्नत राजशक्ति को उपेक्षा और अवहेलना की दृष्टि से देखेगा, उसे नीचा दिखाने और पददलित करने के लिए राजाओं का क्रोध अवश्य ही उत्तेजित हो उठेगा। सभी देशों का यही राजधर्म है। सिराजुद्दौला ने भी इसी राजधर्म की मान-मर्यादा को सुरक्षित रखने के हेतु पदाश्रित अङ्गरेज़ सौदागरों की धृष्टता का यथोचित प्रतिकार करने के लिए अपनी सेना को, उनके क़ासिमबाज़ार वाले छोटे क़िले पर, आक्रमण करने की आज्ञा दी।

लगातार किन किन घटनाओं से नितान्त उत्पीड़ित होकर सिराजुद्दौला क़ासिमबाज़ार पर आक्रमण करने के लिए

बाध्य हुआ था, अधिकांश इतिहास-लेखकों ने अनेक कारणों से उनके मूल का अनुसंधान करना ज़रूरी न समझा, और न उनकी स्पष्ट विवेचना की। इस दशा में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उनके लिखे हुए इतिहास में क़ासिमबाज़ार पर आक्रमण करने की बाबत सिराजुद्दौला के मत्थे बहुतेरे मिथ्या कलंक मढ़ दिये गये हैं। परन्तु सिराजुद्दौला ने अत्यन्त क्रोधित होकर भी कैसी बुद्धिमत्ता, चतुरता और सहिष्णुता-पूर्वक बिना ही रक्तपात और मारकाट के क़ासिम-बाज़ार पर अधिकार कर लिया था, उसकी आलोचनामात्र करने से सत्य का निर्णय करने के लिए विशेष कष्ट न उठाना पड़ेगा।

१७५६ ई० के मई मास की २४ तारीख़ को सोमवार के दिन तीसरे पहर उमरबेग जमादार ३००० घुड़सवार सिपाही लेकर क़ासिमबाज़ार में पहुँचा, और वहां चुपचाप डेरे डाल दिये। नवाब के और भी सिपाही प्रायः इसी प्रकार क़ासिम-बाज़ार के पड़ाव में आकर ठहरते गये। उस रोज़ किसी ने कुछ दंगा-फ़साद नहीं किया। सवेरा होते होते दो सौ और अश्वारोही सिपाही एवं अनेक बरकंदाज आकर उमरबेग के साथ शामिल हो गये। संध्या के पहले ही दो सुशिक्षित लड़ाके हाथी झूमतेझामते क़ासिमबाज़ार में आ पहुंचे। इस कैफ़ियत को देखकर अङ्गरेज़ों के प्राण कांपने लगे। यह किसी को भी अज्ञात नहीं था कि उन्होंने किस प्रकार एक प्रतिष्ठित राजदूत को निरादर के साथ कलकत्ते से निकाल दिया था। अतएव अपनी करतूतों से भयभीत होकर दो दो एक एक करके अङ्गरेज़ कोठीवालों ने इधर उधर भागना शुरू किया। विवारिज ने लिखा है कि हेस्टिंग्स भी इस अवसर

पर क़ासिमबाज़ार ही में था, और आक्रमण के समय उसके दीवान कान्ता बाबू ने उसे अपने मकान में छिपा लिया, जिससे वह सहीसलामत बच गया। जो अङ्गरेज़ क़िले के भीतर थे उन्होंने समझ लिया कि बस, इतने दिनों के बाद अब हमारे कृत्यों के प्रायश्चित्त का समय आ गया है। जैसे ही रात्रि का अंधकार बढ़ता जायगा वैसे ही नवाब की सेना बलपूर्वक क़िले में घुसकर अङ्गरेज़ों के माल-असबाब का सत्यानाश करके भीषण हत्याकांड मचा देगी! उस वक़्त क़िले में सिर्फ़ ३५ गोरे और ३५ देशी सिपाही थे। कुछ और नौकर चाकरों के सिवाय फ़ौज अधिक न थी। अंत में इतने ही सिपाही रणभेरी बजाते हुए निकले, और शिरस्त्राण बांध, कमरबन्द लगा बाजों की ताल पर क़दम रखते हुए बंदूकों पर संगीनें चढ़ाये दरवाज़े पर आ डटे, और बड़े गर्व के साथ फाटक को घेरकर खड़े हो गये। परन्तु नवाब के सिपाहियों ने उस दिन भी क़िले पर आक्रमण करने की कोई चेष्टा नहीं की, बल्कि जमादार उमरबेग ने अङ्गरेज़ों की नाममात्र की सेना को क़िले के फाटक पर अभिमान के साथ टहलते देखकर उनसे यह कहला भेजा कि हम लड़ाई लड़ने नहीं आये हैं। परन्तु उनमें से किसी ने भी इस बात को नहीं सुना। वाट्स साहब खाना और सोना सब कुछ छोड़कर रातोंरात लड़ाई के लिए आवश्यक सामान प्रस्तुत करने के लिए अविराम उद्योग करने लगे। जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि नवाब की अगणित सेना के द्वारा क़िले पर आक्रमण होते ही अङ्गरेज़ भी बलपूर्वक अपनी रक्षा करने में कोई दक़ीक़ा उठा न रक्खेंगे, और इसी उद्देश से वे बड़ी बड़ी तोपें और गोला-बारूद

संग्रह कर सिपाहियों के साथ क़िले के फाटक को घेरकर नवाब के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगे।

सोमवार, मंगल और बुध योंही बीत गया, बृहस्पति भी चला। चारदीवारी के बाहर नवाब की फ़ौज क़तारों में जमी हुई थी। जो यदि चाहती तो बात की बात में क़ासिमबाज़ार के ज़रा से क़िले को धुआंधार मचाकर राख का ढेर बना सकती थी; परन्तु अङ्गरेज़ लोग यह दशा देखकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो बड़े असमंजस में पड़े कि नवाब के सिपाही बन्दूक़ें क्यों नहीं उठाते? अन्त में यह प्रबल उत्कंठा उनसे सहन न हुई, और नवाबी सेना की इस चुप्पी के रहस्य का निर्णय करने के लिए सब ने मिलकर सलाह-मशवरा करके डाक्टर फ़ोर्थ को उमरबेग के पास भेजा।

उमरबेग के पास होकर डाक्टर साहब के क़िले में वापिस आने पर नवाब की ओर का यह मूल अभिप्राय ज्ञात हुआ कि वाट्स साहब को नवाब के दरबार में उपस्थित होकर एक मुचलकानामा लिख देना होगा। यदि सहज ही वे इसे स्वीकार न करेंगे तो ज़बरदस्ती पकड़कर लिखा लिया जायगा। इसी लिए इतने सिपाही-सामंत लाये गये हैं। इस सूचना से सब का कौतूहल मिट गया, पर उत्कंठा फिर भी दूर नहीं हुई। उमरबेग की बात पर विश्वास करके वाट्स साहब ने आत्मसमर्पण करने का साहस नहीं किया, और यह जानने के लिए कि वास्तव में नवाब का अभिप्राय क्या है, यथोचित सम्मान के साथ एक विनम्र आवेदनपत्र लिख भेजा। उसमें लिखा कि "नवाब साहब का अभिप्राय ज्ञात हो जाने भर की देर है, पश्चात् वे जो कुछ कहेंगे, अङ्गरेज़ों को वही स्वीकार

होगा।" यथासमय नवाब के यहां से इस पत्र का केवल यही उत्तर मिला कि "क़िले की चारदीवारी गिरा दो, बस, यही नवाब का एकमात्र अभिप्राय है।"

अङ्गरेज़ों ने बड़े शिष्टाचार और विनम्रतापूर्वक यह लिख भेजा कि नवाब साहब जो कुछ चाहेंगे, हम उसी को मंजूर करेंगे। परन्तु इस समय नवाब ने जो कुछ चाहा उसे सुनकर वाट्स साहब का दिल दहल गया। वे जानते थे कि अङ्गरेज़ी दरबार जीते जी इस बात को मंज़ूर करने के लिए तैयार नहीं। वास्तव में सिराजुद्दौला के स्वभाव और उद्देश को कलकत्ते के अङ्गरेज़ लोग पहिचान न सके। उन्होंने क़ासिमबाज़ार के अवरोध की ख़बर पाकर यह समझा था कि यह शायद रिश्वत या नज़र-भेंट वसूल करने के लिए एक नया जाल फैलाया गया है। अतएव जैसा कुछ उन्होंने समझा उसी के अनुसार नवाब को संतुष्ट करने के लिए उपाय भी किया। सिराजुद्दौला नवयुवक होने पर भी देश का राजा था; अक़्ल के पुतले अङ्गरेज़ों के दिमाग़ में यह बात न समाई कि अब शायद वह वक़्त नहीं कि उसको मोम और कांच के खिलौनों से बहला देना सहज होगा। उन्होंने उसके अमीर-उमरावों को अपने हाथ में कर लिया, और उसी अभ्यस्त युक्ति—रिश्वत और खुशामद के ज़ोर—से इच्छानुरूप संधि संस्थापित करने की चेष्टा करने लगे; परन्तु बड़े कष्टों से जोड़ा हुआ अङ्गरेज़ों का धन व्यर्थ ही गया! प्रभूत अर्थ-व्यय करने पर भी नतीजा कुछ न निकला, सिराजुद्दौला इन प्रलोभनों से तनिक भी विचलित नहीं हुआ।

अन्त में अङ्गरेज़ लोग अनन्योपाय होकर दीवान राज-बल्लभ से सलाह लेने बैठे। दीवानजी सिराजुद्दौला के

रंग-रूप को देखकर स्पष्ट ही समझ गये थे कि अब की बार साधारण झाड़-फूंक से काम नहीं चल सकता। अतएव उन्होंने यही राय दी कि वाट्स साहब यदि हाथ में रूमाल बांधकर अत्यन्त दीन वेश में सिराजुद्दौला के निकट उपस्थित होने का साहस करें तो हम भी एक बार कोशिश करेंगे। इस राय को सुनकर बिचारे वाट्स साहब बड़े असमंजस में पड़े। जगत्-सेठ आदि प्रतिष्ठित उमरावों की सहायता से भी जब अङ्गरेज़ लोग सिराजुद्दौला को राज़ी न कर सके, तब कलकत्ते के अङ्गरेज़ों ने निरुपाय होकर वाट्स साहब को ख़बर भेजी कि अब देर करने से क्या होगा; जिस तरह सिराजुद्दौला संतुष्ट हो, वही करना पड़ेगा। इस उपदेश को शिरोधार्य कर वाट्स साहब दीवानजी की राय के अनुसार नवाब के दरबार में उपस्थित हुए।

दरबार में वाट्स साहब के उपस्थित होते ही सिराजुद्दौला ने अङ्गरेज़ों के उद्दण्ड व्यवहार के लिए उन्हें बहुत ही कुछ बुरा भला कहा, और बड़ी लानत-मलामत की। वाट्स साहब बिचारे, ज़ोर की हवा में कांपते हुए केले की तरह, थरथराने लगे। किसी किसी ने तो ख़याल किया कि शायद शीघ्र ही सिराजुद्दौला वाट्स साहब को कुत्तों से चिथड़वा डालेगा। परन्तु सिराजुद्दौला क्रोधान्ध होकर भी अपने कर्तव्य को नहीं भूला। उसने स्वतंत्रतापूर्वक वाट्स साहब को डेरे में भेजकर केवल मुचलकापत्र लिख देने की आज्ञा दी। वाट्स साहब ने प्राणदान पाकर तत्काल ही बड़ी जल्दी जल्दी मुचलकानामा लिख दिया, तब जान में जान आई। वाट्स साहब के हस्ताक्षर-युक्त मुचलकानामे में ये सब बातें लिखी गईं कि "कलकत्ते का पेरिंग नामक, नया बनवाया हुआ, क़िला

गिरा देना होगा, कुछ विश्वासघातक कर्मचारी जो राजदण्ड से मुक्त रहने के लिए कलकत्ते को भाग गये हैं उन्हें बांधकर ला देना पड़ेगा, निःशुल्क वाणिज्य करने के लिए ईस्ट इंडिया-कम्पनी ने जो शाही सनद प्राप्त की है उसके बहाने से बहुतेरे अन्य अङ्गरेज़ों ने निःशुल्क व्यापार करके राजकोष को जो आर्थिक हानि पहुंचाई है उसे भर देना पड़ेगा, और कलकत्ते के ज़मींदार हालवेल साहब के अत्याचारों से देशी प्रजा जो कठिन क्लेश भोग रही है, उसे उन क्लेशों से मुक्त कर देना पड़ेगा।"

इतिहास-लेखकों की कपोलकल्पित कहानियों और अपने स्वार्थ के लिए गढ़े हुए सरस एवं लालित्य-पूर्ण पदों की अपेक्षा ये उक्त काग़ज़-पत्र विशेष महत्व के हैं। इनसे सिराज के चरित्र का जो परिचय मिलता है उसमें और इतिहास-वर्णित सिराजुद्दौला के चरित्र में पृथ्वी-आकाश का अन्तर है। अङ्गरेज़ों ने शासित सौदागर होते हुए भी नवाब की बिना आज्ञा के जो क़िला बनवाया था, ऐसा कौन स्वाधीन राजा हो सकता था जो उसे गिरा देने की चेष्टा न करता? इससे सिराजुद्दौला के प्रबल प्रताप और शासन की दृढ़ता ही प्रकट होती है। अङ्गरेज़ लोग भागे हुए कर्मचारियों को बिना किसी रोक-टोक के कलकत्ते में आश्रय देते थे और कभी क्षणमात्र को भी नवाब की शक्ति का सम्मान नहीं करते थे। ज़रूरत पड़ते ही लोग कलकत्ते को भाग जाते थे। शासन के संरक्षण के लिए इस तरह की कार्रवाइयों को रोकना अत्यावश्यक था। कम्पनी के नाम की दुहाई देकर अङ्गरेज़ लोग अन्यान्य लोगों के हाथ निःशुल्क वाणिज्य के परवाने बेचकर बहुत सा धन पेट में ठूसते जाते थे, जिसके

कारण देशनिवासियों के स्वाधीन वाणिज्य का नाश हो रहा था, और राजकोष भी व्यापारीय शुल्क से वंचित रहता था। इस तरह के स्वेच्छाचार का निवारण न करके कौन राजा अपने को राज्य का अधिकारी कहकर गर्व कर सकता है? मुचलकापत्र से सिराजुद्दौला के जैसे चरित्र का परिचय मिलता है, बंगाल, बिहार और उड़ीसा के राजसिंहासन पर बैठकर कितने सौभाग्यशाली स्वाधीन राजाओं ने वैसी सच्चरित्रता, शासनकुशलता और प्रजाहितैषिता का परिचय दिया है? परन्तु अङ्गरेज़ों के इतिहास में सिराजुद्दौला को इसके लिए भी सौ सौ धिक्कारें दी गई हैं!

चौथी जून को मुचलकानामा लिख जाने पर क़ासिमबाज़ार का अङ्गरेज़ी क़िला सिराजुद्दौला के हाथों में समर्पित हुआ। लेफ़्टिनेंट इलियट ने लज्जा के मारे आत्म-हत्या करली। वाट्स और चेम्बर्स मुचलके की शर्तों का पालन करने के लिए शर्तबंदी के तौर पर मुर्शिदाबाद में रहने के लिए बाध्य हुए। क़ासिमबाज़ार में शान्ति स्थापित हो गई। जिस बुद्धिमत्ता और चतुरता की बदौलत बिना ही मारकाट के ये सब राज्य-कार्य पूरे हो गये, उसके रहस्य और मर्म को खोजकर क्या अङ्गरेज़, क्या बंगाली, किसी ने भी सिराजुद्दौला की शासन-प्रतिभा का गुणगान नहीं किया। कई एक तो कुटिल और अनुचित कटाक्ष करके यह प्रश्न करने लगे कि क़िले पर भी अधिकार हो गया, मुचलकानामा भी लिखा गया, अङ्गरेज़ लोग दण्डित और अपमानित भी हुए, फिर भी बिचारे वाट्स और चेम्बर्स को क़ैदी अभियुक्तों की भांति मुर्शिदाबाद में क्यों रक्खा गया?

सिराजुद्दौला जानता था कि कलकत्ते का अङ्गरेज़ी दरबार

ही अङ्गरेज़ों का कर्त्ता-धर्ता है। क़ासिमबाज़ार के कोठीवाले अङ्गरेज़ तो केवल उसके तुच्छ कर्मचारी मात्र हैं, और सर्वांश में वे कलकत्तेवालों के मुखापेक्षी हैं। ऐसी दशा में क़ासिम-बाज़ार के अङ्गरेज़ी गुमाश्ता ने जो मुचलकानामा लिखा है, उसे जबतक कलकत्ते का अङ्गरेज़ी दरबार भी स्वीकार न करले तबतक निश्चिन्त होकर बैठ रहना ठीक नहीं। अतएव कलकत्ते के अङ्गरेज़ी दरबार को शासन-चातुर्य से वश में करने के लिए ही वाट्स और चेम्बर्स को मुर्शिदाबाद में नज़रबन्द रखना पड़ा। परन्तु वाट्स और चेम्बर्स को मुर्शि-दाबाद में रहते हुए १५ दिन बीत गये, इतना अवकाश पाकर भी कलकत्ते के अङ्गरेज़ों ने मुचलकानामा के सम्बन्ध में अपनी कुछ भी राय प्रकट नहीं की। इस ओर वाट्स साहब की बीवी नवाब के अन्तःपुर में जाकर बेगम-मंडली में रोने पीटने; दैया-तोबा मचाने और अपने कारुणिक विलापों से सभी को परेशान करने लगीं। बीवी वाट्स के साथ सिराजु-द्दौला की माता का मेलजोल था। इसी कारण सिराजुद्दौला की दयालु माता दोनों बन्दियों को छोड़ देने के लिए सिरा-जुद्दौला से अनुरोध करने लगी। अन्त में माता की आज्ञा का प्रतिपालन करने के लिए, बिलकुल इच्छा न रहते हुए भी, सिराजुद्दौला दोनों अङ्गरेज़ बन्दियों को मुक्तिदान देने पर बाध्य हुआ।

एक तत्कालीन अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक ने इस मुचल-कानामे की समालोचना करते हुए लिखा था कि "फरा-सीसों के साथ लड़ाई-झगड़े की आशंका रहते हुए पहली शर्त का पालन असम्भव है; वाणिज्य की रक्षा के लिए पदाश्रित अङ्गरेज़ बंधुओं को आश्रय देना अत्यावश्यक

है, और ऐसी दशा में दूसरी शर्त का अनुसरण भी असंभव ही है, एवं तीसरी शर्त का पालन करने में निःसंदेह पर्याप्त अर्थ-दंड देना पड़ेगा, क्योंकि निःशुल्क वाणिज्य में कुछ न कुछ गोलमाल होता ही रहा है।"

निदान थोड़े ही दिन में सिराजुद्दौला ने सुना कि अङ्गरेज़ लोग मुचलके की शर्तों का प्रतिपालन नहीं करेंगे। वह अङ्गरेजों के इस कूट-कौशल का परिचय पाकर आग-बबूला बन गया, और सोचने लगा कि "क्या इन्होंने ( अंगरेज़ों ने ) कहा था कि नवाब का अभिप्राय मालूम हो जाने भर की देर है, उसके बाद नवाब जो चाहेंगे वही हमें मंजूर होगा! इन्होंने मुचलके की शर्तों के पालन करने की प्रतिज्ञा करके बीवी वाट्स के आंसुओं से अंगरेज़ क़ैदियों के लिए मुक्ति-पत्र लिखा लिया था!" सिराजुद्दौला ने बहुत कुछ सहा था, अब और अधिक वह न सह सका। बस, यही उसका प्रधान अपराध हुआ!! क्रोध के मारे उसके दोनों नेत्रों से आग की चिनगारियां सी छूटने लगीं। नाना अलीवर्दी का अन्तिम उपदेश उसके स्मृति-पट पर अग्नि के अक्षरों में जल उठा। अस्तु, अब आलस्य में व्यर्थ समय न खोकर सिराजुद्दौला ने कलकत्ते को एक दूत भेजा, और स्वयम् सेना के साथ युद्धयात्रा करने का बन्दोबस्त करने लगा।

सिराजुद्दौला बारम्बार अपमानित होकर जैसा क्लेशित हो चुका था, उसे याद रखने पर कलकत्ते के आक्रमण के लिए उसपर कोई दोषारोपण नहीं किया जा सकता। परन्तु कलकत्ते पर आक्रमण करना ही उसके अन्त का कारण हुआ। यदि वह अंगरेज़ों के साथ लड़ाई न ठानता तो उस दशा में

उसका इतिहास कैसा रूप धारण करता, कोई नहीं कह सकता। चारो ओर से जो अनेक शक्तियां सिराज के विरुद्ध मिलकर इकट्ठी हो गई थीं, अंगरेज़ों का निरंकुश व्यवहार केवल उन्हीं की उत्तेजनाओं का फल और उन्हीं के विद्वेषों का बाहरी निदर्शन था। अतएव युद्ध के द्वारा अपनी रक्षा करके राज्य-शक्ति के संस्थापित रखने की चेष्टा न करने पर भी, सिराज के सम्बन्ध में, इसका निश्चय ही क्या था कि वह इस संसार में बहुत दिनों तक जीवित रह सकता?

उसने नितान्त निरुपाय होकर ही बल-प्रयोग का अवलम्बन किया था; परन्तु अंगरेज़ लोग इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए। उन्होंने आद्योपान्त सारी बातों की आलोचना किये बिना ही लिख रक्खा कि "क़ासिमबाज़ार को अधिकृत करके और अंगरेज़ों की नरमी और ख़ुशामद की विनम्र बातें सुनकर नवाब को यह विश्वास हो गया था कि अँगरेज़ लोग उससे बेतरह डर गये हैं; अतएव इस समय कलकत्ते पर आक्रमण करने से सहज ही में सब काम सिद्ध हो जायगा। उन्हें पराजित करके यथेष्ट सम्पत्ति लूट लेना बिलकुल सहज होगा। केवल यही सोच कर सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर आक्रमण किया था।"

---

# चौदहवां परिच्छेद।

## कलकत्ते पर आक्रमण।

सातवीं जून को प्रातःकाल के समय कलकत्ते के अङ्गरेज़ों को ख़बर मिली कि नवाब ने क़ासिमबाज़ार पर क़ब्ज़ा कर लिया है, और सेना के सहित स्वयम् सिराजुद्दौला कलकत्ते पर आक्रमण करने के लिए युद्धयात्रा कर रहा है। बस, उसी दिन झटपट ढाका, बालेश्वर, जगदिया इत्यादि विविध स्थानों की अङ्गरेज़ी कोठियों के कर्मचारियों को पत्र लिखे गये कि बहीखाता वग़ैरा समेट समाट कर फ़ौरन् ही सुरक्षित स्थानों में चले जाओ। राजर ड्रेक उस समय कलकत्ते के गवर्नर थे। उन्होंने युद्ध के द्वारा नगर की रक्षा करने के लिए सैन्य-दल संग्रह करने का बन्दोबस्त किया। सारे शहर में ढिंढोरा पिटवा दिया, और बड़े उत्साह के साथ कलकत्ते में रहनेवाले अङ्गरेज़, फिरंगी, अरमानी, पुर्तगीज़ सभी लोगों को आदर-पूर्वक अपने साथ मिलाकर युद्ध के हथकंडों और दांव-पेंचों की शिक्षा देने लगे।

अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक जेम्स मिल ने लिखा है कि "अङ्गरेज़ लोग कभी भी नवाब की खुशामद करने और उसके साथ विनम्रता का व्यवहार करने से नहीं चूके थे, अतएव उनका विश्वास था कि सिराज़ुद्दौला मुर्दे पर तलवार नहीं चलायेगा। केवल इसी भरोसे पर बेखटके रहकर अङ्गरेज़ों

ने समय रहते भी नगर की रक्षा का बन्दोबस्त करने के लिए कोई चेष्टा नहीं की ।"

अपने स्वदेशवासियों की व्यापारीय कम्पनी का पराजय-कलंक मेटने के लिए जेम्स मिल ने जैसी सफ़ाई पेश की है, वैसी अच्छी सफ़ाई अन्य अङ्गरेज़ी इतिहासों में बहुत कम पाई जाती है। उसके वाक्य बड़े ही रोचक और सिराजुद्दौला के अमानुषिक अत्याचारों के अभ्रान्त चिह्न एवं परवर्ती इतिहास-लेखकों की ऐतिहासिक खोज के लिए अत्युत्तम पथ-प्रदर्शक हैं। परन्तु जेम्स मिल के ये वाक्य जैसे सुन्दर और कूट-कौशल से परिपूर्ण हैं वैसे ही सरल और सच्चे समझकर ग्रहण नहीं किये जा सकते।

उपरोक्त कथनानुसार यदि यह सत्य भी हो कि अङ्गरेज़ों ने नगर की रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं किया था तो भी अङ्गरेज़ों की अदूरदर्शिता ही उसका प्रधान कारण है। उन्होंने अपने, मानसिक, वाचनिक और शारीरिक व्यवहारों से सिराजुद्दौला को अत्यन्त ही असंतुष्ट कर रक्खा था, और यह प्रायः सभी अङ्गरेज़ों को मालूम था। फिर, जब इसके बाद उन्हें यह समाचार मिला कि मर्माहत सिराजुद्दौला ने क़ासिम बाज़ार पर आक्रमण करके अङ्गरेज़ों के प्रधान कर्मचारी वाट्स साहब को क़ैद कर लिया, और उनसे एक मुचलकानामा लिखा लिया, एवं अब स्वयम् फ़ौज लेकर कलकत्ते पर चढ़ाई करने के लिए आ रहा है, तो ऐसी दशा में निश्चिन्त रहने का मौक़ा कहां था। आक्रमण की सूचना पाकर भी अङ्गरेज़ लोगों ने नगर की रक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध क्यों नहीं किया? जिस प्रकार सिराजुद्दौला का विचित्र इतिहास आदि से अंत तक विविध रहस्यों से परिपूर्ण है, उसी प्रकार अङ्गरेज़

सौदागरों के विमूढ़ व्यवहार की जड़ में भी कोई न कोई गूढ़ भेद छुपा हुआ है।

अङ्गरेज़ लोग जानते थे कि सिराजुद्दौला का राजसिंहासन "नलिनी दलगत जलमिव तरलं" के समान है। कभी किसी साधारण फूक से उड़ जायगा। राज्य के अधिकांश फ़ौजी सरदार केवल धन के लोभी हैं, अमीर-उमराव और वज़ीर लोग भी प्रायः खुशामदी टट्टू और राय देने के लिए मानो ख़रीदे हुए गुलाम से हैं। फिर, अभी इस महत्वपूर्ण प्रश्न के हल होने में भी कुछ देर है कि सिंहासन सिराजुद्दौला का है या शौकतजंग का? ऐसी दशा में अङ्गरेज़ों ने सोचा कि हम सिराजुद्दौला की बातों से क़िला क्यों गिरा दें? अनेक शत्रुओं के रहते हुए राजसिंहासन छोड़ वह स्वयम् फ़ौज लेकर भला किस तरह कलकत्ते पर आक्रमण करने का साहस करेगा? यह लड़ाई का सामान केवल बाहरी आडम्बर के सिवाय और हो ही क्या सकता है? इसलिए अनेक कष्ट उठाकर नगर की रक्षा का प्रबन्ध करके क्या होगा? यदि इन गीदड़-भपकियों को बहुत कुछ बढ़ाकर दिखाने के लिए नवाब की फ़ौज वास्तव में कलकत्ते पर धावा करदे तो भी डरने का क्या कारण? हम लोग वाणिज्य की रक्षा के लिए न जाने कितने धन का अपव्यय कर डालते हैं; फिर क्या चिंता, नवाब के फ़ौजी अफ़सरों को भी थोड़ी सी फ़िज़ूलख़र्ची करके राज़ी कर लिया जायगा। और यदि स्वयम् सिराजुद्दौला ही आगया तो उससे भी डरने का कोई काम नहीं। वह तो अलीवर्दी के लाड़-प्यार में पला हुआ अल्पवयस्क, असंयतचित्त, कमज़ोर बालक है; कुछ समयोचित साधारण विलास-वस्तुएं और पदोचित दस बीस हज़ार रुपये दे डालने ही से अर्थ-लोलुप

नव-नरेश बिना ही तूं-तड़ाक के चुपचाप मुर्शिदाबाद को लौट जाने में तनिक भी आनाकानी न करेगा।

अङ्गरेज़ों का यह सिद्धान्त सरासर भ्रान्तिपूर्ण भी नहीं था। कलकत्ते में रहकर नवाबी दरबार के दैनिक वाद-विवादों के जो गुप्त समाचार अङ्गरेज़ों को मिला करते थे, उन पर विचार करके ही उन्होंने अपना उक्त सिद्धान्त निश्चित किया था। सिराजुद्दौला ने जिस समय कलकत्ते पर आक्रमण करने का इरादा अपने अमीर-उमराओं पर प्रकट किया तो अङ्गरेज़ों के शुभचिंतक घूसख़ोर राज-कर्मचारियों ने फ़ौरन् ही इसका प्रबल प्रतिवाद आरम्भ किया। उनके प्रतिवादों का सार यही चंद बातें थीं कि "अभी मौक़ा नहीं है, राज-सिंहासन की स्थिति कंटकाकीर्ण है, शौकतजंग का प्रभाव अभी दूर नहीं हुआ है, अङ्गरेज़ लोग बिचारे शान्त-स्वभाव बनिये हैं, उनके द्वारा इस देश का बहुत बड़ा कल्याण हो रहा है", इत्यादि। इस मौक़े पर अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक अर्मी लिखता है कि "जगत्-सेठ के दोनों पुत्रों, महताबराय और रूपचंद, ने भी, जिनके पिता ने अङ्गरेज़ों के साथ व्यापार में बहुत लाभ उठाया था, कलकत्ते पर आक्रमण न करने के लिए अङ्गरेज़ों की ओर से सिराजुद्दौला की बहुत कुछ ख़ुशामद-बरामद की, परन्तु कुछ फल न हुआ।"

सिराजुद्दौला ने सोचा कि ये सब स्वार्थी मंत्री लोग स्वयम् बीच में पड़कर छुपे छुपे अङ्गरेज़ों की स्पर्द्धा और साहस बढ़ा रहे हैं। अतएव उसने किसी की बात पर ध्यान न देकर फ़ौज को युद्ध-यात्रा के लिए कूच करने की आज्ञा दी। ख़्वाजा-वाजिद इस समय हुगली में था। अङ्गरेज़ों के अनुरोध से वह भी नवाब को, शान्त करने के लिए, समझाने बुझाने

आया था। परन्तु सिराजुद्दौला ने उससे कहा कि "ड्रेक साहब ने मेरा बड़ा अपमान किया है। नवाब मुर्शिदकुलीख़ां के ज़माने में अङ्गरेज़ लोग जिस तरह केवल व्यापार-व्यवसाय पर संतोष करते थे, यदि इस समय भी वे उसी तरह से रहना चाहें तो उन्हें आश्रय देना मेरा कर्त्तव्य है; अन्यथा इन लोगों को अन्य किसी कारण से भी इस देश में रहने के लिए स्थान और आश्रय नहीं दिया जा सकता।"

उस वक़्त कलकत्ते में सिर्फ़ कुछ हज़ार ही अङ्गरेज़ सौदागर रहते थे। वे जिस प्रकार संख्या में बहुत कम थे, उसी प्रकार सामरिक शिक्षा से भी नितान्त अनभिज्ञ थे। उन्हें पराजित करने के लिए बहुत सेना-सरदार जोड़ना व्यर्थ ही था। सिराजुद्दौला इसे जानता था; परन्तु बाद में उसकी अनुपस्थिति का मौक़ा पाकर उसके अशुभचिंतक षड़यंत्री शौकतजंग को तख़्त पर बैठाकर सर्वनाश न कर डालें, इस भय से, जिन जिन प्रधान पुरुषों पर उसे विशेष सन्देह था, उन्हें सब को साथ लेकर उसने युद्ध के लिए कूच किया। सिर्फ़ थोड़े से सच्चे और आज्ञाकारी सरदार राजधानी की रक्षा के लिए मुर्शिदाबाद में रहने दिये। राजवल्लभ, जगत्-सेठ, मीरजाफ़र, मानिकचन्द सभी को, इच्छा न रहते हुए भी, फ़ौज लेकर नवाब सिराजुद्दौला के साथ कूच करना पड़ा।

अङ्गरेज़ों का यह ख़याल नहीं था कि सिराजुद्दौला ऐसी बुद्धिमत्ता से राजधानी के झगड़ों की आशंका मिटाकर बिलकुल बेखटके प्रभूत सेना और बड़े समारोह के साथ कलकत्ते पर आक्रमण करने में सफल-मनोरथ होगा। सातवीं जून की सुबह को इस ख़बर ने कलकत्ते के अंगरेज़ी महल

में बड़ी हलचल मचा दी। अङ्गरेज़ों ने देखा कि बस, अब मौक़ा नहीं है, जो कुछ करना है, जल्दी करना चाहिये। परन्तु रण-विज्ञ सेनापतियों के अभाव में किसी काम का सिलसिला न बंध सका, तथापि जहां तक बन पड़ा, अङ्गरेज़ लोग प्राणपण से अपनी रक्षा का उपाय करने लगे। बागबाज़ार में पेरिंग नामक जो नया क़िला बनवाया गया था, उसमें ढेर की ढेर तोपें जुटा दी गईं। जल-मार्ग से शहर पर हमला होने की आशंका के कारण बागबाज़ारवाली खाल की धार में सामरिक जहाज़ सुरक्षित रक्खे गये। १५०० अस्थायी सिपाही भर्ती करके 'मराठा-खाई' के किनारे किनारे तईनात कर दिये गये। चारदीवारी की यथासाध्य मरम्मत करवा के उसमें अन्न आदि सामान संचित किया गया। मद्रासवालों से मदद मांगने के लिए एक पत्र और नगर की रक्षा के हेतु डच और फ़रासीसों के पास सहायता देने की प्रार्थना करने के लिए एक दूत भेजा गया।

डच लोग बड़े शान्त-स्वभाव और कर्तव्य-निष्ठ सौदागर थे। वे बैठे बठाये लड़ाई मोल लेकर नवाब से युद्ध ठानने के लिए तैयार नहीं हुए। फ़रासीस लोग हमेशा के चालबाज़ थे ही, उन्होंने कहला भेजा कि "यदि अङ्गरेज़ी शेर प्राणों के भय से बहुत ही भयभीत हो रहे हैं तो वे फ़ौरन् ही बिना किसी रोक-टोक के हमारे चन्दननगरवाले क़िले में भाग-कर आश्रय ले सकते हैं। वहां चले जाने पर आश्रितों की प्राण-रक्षा के लिए फ़रासीसों के वीर सिपाही अपने प्राण दे देने में तनिक भी कातर न होंगे।" इस दारुण विपत्ति के समय में अपने सदा के शत्रु फ़रासीस सौदागरों के यह मर्मभेदी परिहास-वाक्य सुनकर अङ्गरेज़ लोग नितान्त निरु-

पाय हो गये, और बाहुबल से आत्म-रक्षा करने के लिए अपने भिन्न भिन्न दलों को युद्ध की शिक्षा देने लगे।

नगर की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर चुकने पर अङ्गरेज़ लोग युद्ध के लिए आतुर होने लगे। इस बात पर विचार करने की चेष्टा किसी ने नहीं की कि सिराजुद्दौला का अभिप्राय क्या है; वह क़ासिमबाज़ार की तरह बिना ही मारकाट के सारे बखेड़ों का फ़ैसला करेगा, अथवा खड्गहस्त होकर कलकत्ते के आसपास ख़ून की नदियां बहायेगा। सिराजुद्दौला जिस समय आधी ही दूर तक पहुँचा था उसी समय अङ्गरेज़ लोग युद्ध में अपने बल-पौरुष का परिचय देने के लिए बड़े उत्सुक और आतुर हो उठे थे।

बाहरी शत्रुओं के हमले रोकने के लिए कलकत्ते से ढाई कोस दक्षिण गङ्गा के पश्चिमी किनारे के टाना नामक स्थान पर नवाब की ओर से एक छोटा सा क़िला बनवाया गया था। पचास सिपाही तेरह तोपों के साथ मुहाने की रक्षा के लिए उस क़िले में तईनात थे, और बहुत दिनों से किसी शत्रु का आक्रमण न होने के कारण वे मज़े से पड़े पड़े विश्राम-सुख का उपभोग कर रहे थे। अङ्गरेज़ों ने तेरहवीं जून के प्रातःकाल को चार फ़ौजी जहाज़ लेकर एकाएक इस क़िले पर हमला करके बड़े ज़ोर-शोर से गोले बरसाना शुरू कर दिया। इस आकस्मिक विपत्ति से नवाब के सिपाहियों के होश बिगड़े, और विवश हो वे हुगली की ओर भाग गये। टाना की क्षुद्र दुर्ग-प्राचीर पर बड़े गौरव के साथ अङ्गरेज़ों की विजय-पताका फहराने लगी, और अङ्गरेज़ी सेना ने क़िले की चारदीवारी में लगी हुई नवाबी तोपों को तोड़ताड़ कर गङ्गा जी में फेंकना आरम्भ किया।

यह ख़बर पाते ही हुगली के फ़ौजदार ने अच्छी तरह समझ लिया कि बस, अब अङ्गरेज़ों का सर्वनाश हुआ ही चाहता है। सिराजुद्दौला वैसे ही इनसे जलता था, तिसपर बारम्बार वह उद्दण्डतापूर्ण व्यवहारों से अपमानित हुआ है। अब की बार अङ्गरेज़ों की इस धृष्टता का समाचार पाते ही वह किसी की न सुनेगा। फ़ौजदार ने शीघ्रही क़िले पर पुनः अधिकार जमाने के लिए फ़ौज भेजी।

१४ जून को टाना के क़िले के सदर फाटक पर अङ्गरेज़ों और बङ्गालियों में लड़ाई शुरू हुई। सिर्फ़ दो हज़ार सिपाही तोपों के भयंकर नाद से आकाश और दिशाओं को व्याप्त करते हुए क़िले के फाटक पर पहुंचे ही थे कि अङ्गरेज़ सरदारों ने लज्जा को तिलांजलि देकर पीठ दिखाने में ज़रा भी आनाकानी नहीं की। परन्तु अधिकांश बिचारे पीठ दिखाकर भी प्राण न बचा सके। सिपाहियों ने जहाज़ों के ऊपर तड़ातड़ गोले बरसाकर अङ्गरेज़ी फ़ौज की दुर्दशा कर डाली। गोलाबारूद का यथेष्ट अपव्यय करके भी अङ्गरेज़ लोग नवाब के सिपाहियों को क़िले से न निकाल सके। कलकत्ते से कुछ और सरदारों ने आकर छत्रभंग अङ्गरेज़ी सेना को उत्साहित कर वीरता का यश प्राप्त करने के लिए प्राणपण से चेष्टा की, परन्तु इस पर भी जब नवाब की सेना किसी प्रकार हटाये न हटी, तब नितान्त निराश और विफल-मनोरथ हो जहाज़ों का लंगर उठाया, और धीरे धीरे कलकत्ते की ओर लौटने लगे। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक अर्मी ने इस युद्ध का वृत्तान्त यों लिखा है:—

"नवाब ने निश्चय किया था कि टाना के क़िले पर अधिकार कर लिया जाय। यह क़िला कलकत्ते से पांच मील

पर हुगली नदी और समुद्र के बीच में था। उसमें सिर्फ़ १३ तोपें थीं। दो जहाज़ तीन तीन सौ टन के और दो अन्य छोटे जहाज़ थे। १३ जून की सुबह को नवाब की फ़ौज ने क़िले पर आक्रमण किया। क़िले में उस समय बहुत थोड़े आदमी थे। वे नवाब की फ़ौज का मुक़ाबिला न कर सके। कुछ यूरोपियनों ने जहाज़ों से गोले बरसाये; परन्तु दूसरे दिन नवाब के २००० सिपाहियों ने, जो हुगली से भेजे गये थे, आकर क़िले को घेर लिया, और तोपों से गोलाबारी करने लगे। कुछ थोड़े से अंगरेज़ी सिपाही उनके मुक़ाबिले को कलकत्ते से भेजे गये, परन्तु उनकी भी दाळ न गली, और कलकत्ते को वापिस आये।"

परन्तु अर्मी के अतिरिक्त और किसी अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक के लिखे हुए इतिहास में अङ्गरेज़ों की इस पराजय की अपकीर्ति का उल्लेख नहीं मिलता है। इस घटना के साथ कलकत्ते की बरबादी का कैसा गहरा सम्बन्ध था, उस पर ध्यान न देकर मिल और थरंटन आदि अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने व्यर्थ ही सिराजुद्दौला को रक्त-पिपासु, निर्दयी, अत्याचार-परायण और निरंकुश प्रमाणित करने की चेष्टा की है! मिल और थरंटन ने अर्मी-लिखित प्राचीन इतिहास का, अध्ययन बड़े ध्यान और मननपूर्वक किया था, यह बात उन्हीं के स्वरचित इतिहास में दी गई टीका-टिप्पणियों से स्पष्ट प्रकट होती है। अनेक बातें उन्होंने अपने ग्रन्थों में अर्मी-लिखित इतिहास से उद्धृत की हैं; परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि मिल और थरंटन में से किसी ने भी टाना के क़िले पर आक्रमण और वहां की युद्ध-घटना का नाममात्र को भी उल्लेख नहीं किया!

एक अन्य अङ्गरेज़ लेखक स्क्राफ़्टन ने अपने लेखन-चातुर्य

से मिल और थरंटन को भी मात कर दिया है। वह लिखता है कि "सिराजुद्दौला और उसके अमीर-उमरावों में से किसी ने अङ्गरेज़ों की विनम्र प्रार्थनाओं पर तनिक भी कर्णपात न किया। निःसहाय अङ्गरेज़ों के सर्वनाश के लिए सभी कोई अपनी अपनी फ़ौजें लेकर तैयार हो गये। धर्म और न्याय के अनुकूल फ़ैसला पाने का मार्ग अङ्गरेज़ों के लिए एकदम बन्द हो गया।" परन्तु हम अङ्गरेज़ों ही के लिखे इतिहास में उनकी अभिमान-व्यञ्जक चालबाज़ियां, युद्ध के लिए बड़ी बड़ी तैयारियां और तोपों के मुंह से प्रचण्ड गोलाबारी की कहानियां भी पढ़ रहे हैं।

क्रमशः इसका परिचय प्रकट होने लगा कि कलकत्ते के काले स्वदेशियों पर सिराजुद्दौला का कैसा प्रगाढ़ स्नेह है। जब सब लोगों को यह ज्ञान हो गया कि केवल अङ्गरेज़ सौदागरों को उनके निरंकुश व्यवहारों के प्रति समुचित दण्ड देने के लिए ही सिराजुद्दौला का शुभागमन हुआ है, तब अङ्गरेज़ों का अन्तरात्मा काँप उठा। उन्होंने अबतक घसीटीबेगम का कृपापात्र बनने के लिए राजबल्लभ के भागे हुए पुत्र कृष्णवल्लभ को कलकत्ते में आश्रय देकर सिराजुद्दौला की उपेक्षा और अनादर करने में कुछ उठा न रक्खा था। परन्तु अब उन्हें मालूम हुआ कि राजबल्लभ भी सिराजुद्दौला से सन्धि संस्थापित करके नवाबी सेना के साथ कलकत्ते आ रहा है। अङ्गरेज़ों ने सोचा कि शहर के पास तक नवाब की फ़ौज के आते ही पिता की तरह कृष्णबल्लभ भी भागकर सिराजुद्दौला का आज्ञाकारी बन जायगा, और नवाब के डेरे में वह हमारी आन्तरिक त्रुटियों का सारा भेद खोल कर शहर पर आक्रमण करने में उसे भरपूर सहायता

देगा। इसलिए सबने मिलकर कृष्णवल्लभ को राजविद्रोह के अभियुक्त की तरह अङ्गरेज़ी क़िले में क़ैद कर दिया! अङ्गरेज़ों के इस निर्दय व्यवहार से स्वदेशियों के दिल दहल गये।

देशी सौदागरों में से बहुतों ने कलकत्ते में अपने रहने के लिए मकान बनवा लिये थे। शहर पर आक्रमण होने में उन लोगों को हानि से बचाने के लिए चराधिपति राजा राम राम सिंह ने चुपचाप उमीचंद के पास इस आशय की एक गुप्त चिट्ठी भेजी कि चुपके से कहीं अन्यत्र चले जाओ। अङ्ग-रेज़ों को इसका पता लग गया, और गुप्तचर के पास से यह पत्र किसी तरह उनके हाथों में पहुंच गया। बस फ़ौरन् सभी अङ्गरेज़ों ने बहुत कुछ लालताल हो उमीचन्द को पकड़कर क़ैदख़ाने में ठूंस देने के लिए फ़ौज को हुक्म दिया। उमीचन्द को इसकी कुछ ख़बर न हो सकी। एकाएक अङ्गरेज़ी फ़ौज ने उसे गिरफ़्तार कर लिया, और अभियुक्तों की भांति बांधकर ले चली। स्वदेशी लोगों में हाहाकार मच गया!

उमीचन्द के घर में उसका सम्बन्धी हज़ारीमल सारे कारबार का मालिक था। वह इस तरह के अत्याचार से भयभीत हो माल-असबाब और परिवार को लेकर अन्यत्र भाग जाने की चेष्टा करने लगा। अङ्गरेज़ों को यह भी सहन न हुआ, और वीरता के जोश में कितनी ही अङ्गरेज़ी सेना ने उमीचन्द का घर घेरने के लिए धावा किया। उमी-चन्द के यहां जगन्नाथ नामक एक बुड्ढा, विश्वासपात्र और स्वामिभक्त जमादार था, जो क्षत्रियों के एक प्रतिष्ठित वंश में पैदा हुआ था। वह उमीचन्द के वेतनभोगी बरकंदाज और नौकर-चाकरों को इकट्ठा करके महल की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हुआ। फ़िरंगियों ने आकर फाटक पर लड़ाई-दंगा

मचा दिया। दोनों पक्षों की मारकाट से खून की धारा बह निकली! अन्त में उमीचन्द के सिपाही हिम्मत हार गये, और एक एक करके अधिकांश धराशायी हुए। मानुषिक शक्ति से जो कुछ साध्य था, वह हो चुका। परन्तु जब फिरंगियों की सेना बड़े ज़ोर-शोर के साथ अन्तःपुर की ओर बढ़ने लगी तो जगन्नाथ का क्षत्रिय-रक्त जोशमें आया। जिन आर्य-महिलाओं के अन्तःपुर के द्वार पर भगवान भास्कर भी बड़ी प्रतिष्ठा और सम्मान के साथ अपनी किरणों को प्रसारित करने के लिए बाध्य हैं, क्या वहां पर मलेच्छ-सेना के सिपाहियों का पदस्पर्श होगा? स्वामी के परिवार की जिन लज्जावती, निष्कलंक वंशोद्भव कुलकामिनियों ने स्वप्न में भी कभी किसी पर-पुरुष की छाया का स्पर्श नहीं किया है, उनकी पवित्र देह क्या मलेच्छों के करस्पर्श से कलङ्कित होगी? ऐसी दशा में तो हिन्दू महिलाओं के लिए मृत्यु की गोद ही कोमल पुष्पों की शय्या है।

बस, निमिषमात्र में विजली के वेग की भांति जगन्नाथ की रग रग में हिन्दुओं की ऐतिहासिक गौरव-नीति का संचार हो गया। वह आगे पीछे का कुछ भी विचार न कर सका। शीघ्रही बड़ी फुर्ती से उसने अन्तःपुर के फाटक पर चिताकुंड प्रज्ज्वलित कर दिया, और अपने हाथ से, एक के बाद एक, स्वामी के परिवार की तेरह महिलाओं का शिर काट डाला, एवं पतिव्रताओं के खून में सनी हुई वही तेज़ तलवार अपनी छाती में भोंककर उसी खून की कीचड़ में गिर पड़ा। वायु के वेग से चिताकुंड की दीप्त शिखा चारो ओर अपनी लाल जिह्वा अधिकाधिक फैलाने लगी। धुएं के गुंगाड़े सारे शहर में व्याप्त हो गये! आग की भयंकर लपटें महल में,

चौक में, कमरों में और फाटक पर सर्वत्र अपने तीव्र तेज से भक भक करने लगीं। फ़िरंगियों ने जमादार जगन्नाथ को उस कीचड़ से बाहर निकाल लिया। परन्तु महल में घुसने का मौक़ा न मिला। उमीचंद का इन्द्रभवन इस प्रकार स्मशान की राख के ढेरों से ढक गया! इस हृदय-विदारक घटना के शोक-समाचार को आमरण कीर्तन करने के लिए केवल हत-भाग्य वृद्ध जमादार जगन्नाथ के प्राण नहीं निकले।

सिराजुद्दौला के सेना-समारोह के साथ हुगली तक आतेही बिजली के वेग के सदृश बड़ी शीघ्रता से उसके आने की ख़बर चारो ओर फैल गई। गंगा की धारा को चीरती हुई सैकड़ों सुसज्जित सामरिक नावें पहले ही मुर्शिदाबाद से आकर हुगली में ठहरी हुई थीं। उनके साथ हुगली के फ़ौज-दार ने और बहुतसी नावें लगाकर नवाब की सेना को उस पार पहुंचने की सुव्यवस्था करदी। सिराजुद्दौला की आज्ञा से डच और फ़रासीस सौदागर उसके पास हाज़िर हुए, किन्तु यूरोप में अङ्गरेज़ों के साथ संधि होने के कारण वे लड़ाई में नवाब को सहायता देने के लिए तैयार न हुए। परंतु इसके लिए उन्हें कोई कष्ट न पहुंचाकर उनके पास से केवल बारूद लेकर सिराजुद्दौला कलकत्ते की ओर बढ़ा।

ख़बर पाते ही कलकत्ते के लोग भय से कांपने लगे। जो बड़ी बड़ी बातें मारते और अपने बल पर घमंड करके कूद फांद रहे थे, वे सभी सिराजुद्दौला का नाम सुनतेही सन्न रह गये। नगर में भीषण कोलाहल मच गया। अङ्गरेज़ लोग जो जहां थे, उसी क्षण अपने अपने वास-भवनों की ओर आंसुओं भरी दृष्टि से देखते हुए स्त्री-पुत्रों को लेकर क़िले के भीतर भागने लगे। देशी सौदागरों में भी जिसने जहां रास्ता पाया,

शहर से बाहर भाग निकला। पथों, घाटों, नदियों के किनारों और जंगलों में सब कहीं दल के दल स्त्री-पुरुष और बाल-बच्चे कुहराम मचाते हुए भाग निकले। परन्तु हाय ! सब तो भाग गये, युरेशियन फ़िरंगी बिचारे बड़ी आफ़त में पड़े। स्वदेश-बंधुओं से प्रीति-सम्बन्ध तोड़, अंगरेज़ों का अनुकरण करके साहब बन जाने में अबतक इन्हें कोई विशेष क्लेश नहीं झेलना पड़ा था; परन्तु आज मुसीबत के दिन में, काले चेहरे पर साहबी की सफ़ेद पोशाक उनके लिए बड़े दुःख, लज्जा एवं विडम्बना का कारण हुई ! सभी ने देखा कि वास्तव में इन फ़िरंगी बेचारों का, "न माता न पिता न च बन्धु", कोई नहीं ! न तो स्वदेशियों में और न अङ्गरेज़ों में, इन बेचारों को कहीं आश्रय न मिला। अंत में सब क़िले के भीतर आश्रय पाने के उद्देश से फाटक पर आ जमे, और अपने आर्तनाद एवं करुण विलापों से वज्र हृदयों को द्रवित करने लगे। नितान्त निरुपाय होकर अङ्गरेज़ों को इन्हें भी क़िले में आश्रय देना पड़ा। अङ्गरेज़ी क़िला स्वेच्छाचार की लीलाभूमि बन गया,—कोलाहल, आर्तनाद और अपने अपने प्राणों की चिन्ता—सबने समझ लिया कि नगर की रक्षा का कार्य क्रमशः असम्भव होता जा रहा है।

नवाब की वृहदाकार देशी तोपें जिस समय अपने भीम गर्जन से उसके आने की घोषणा करने लगीं तो अङ्गरेज़ों के छक्के छूट गये, और नितान्त भयभीत होकर नवाब को संतुष्ट करने के लिए विविध मायाजाल फैलाने में उन्होंने कोई क़सर न की। सिराजुद्दौला को शान्त करने और राजधानी की ओर लौट जाने के लिए उन्होंने बहुत सा धन ख़र्च करके नज़र-भेंट देने और तरह तरह से अनुनय-विनय करने में

तनिक भी कृपणता नहीं की। परन्तु सिराजुद्दौला ने किसी तरह भी अपना इरादा नहीं बदला। जब सभी उपाय व्यर्थ हुए तो विवश हो अङ्गरेज़ सौदागर नगर की रक्षा के लिए अपने अपने निश्चित स्थानों में आकर जमा होने लगे। बाहर तो नवाब के पड़ाव से तोपों की भयंकर आवाज़ें उठ रही थीं और भीतर अङ्गरेज़ों की मंडली में उससे भी अधिक करुण कोलाहल मचा था! ऐसी नाज़ुक स्थिति में अङ्गरेज़ी फ़ौज, उत्कंठा, उद्वेग और पराजय की चिन्ता में व्यथित रहकर कोरी आंखों रात बिताने लगी।

जो लोग क़िले की रक्षा के लिए कटिबद्ध हुए थे, हालवेल लिखते हैं कि उनमें युरोपियन सिपाही और सरदारों की संख्या ६० से अधिक नहीं थी। इन अल्पसंख्यक सैनिकों ने भय से कांपकर यदि घोर कोलाहल मचाया तो उसमें आश्चर्य की बात ही क्या?

---

# पन्द्रहवां परिच्छेद।

## कालीकोठरी का हत्याकांड।

कलकत्ते के पुराने क़िले का अब चिह्नमात्र भी शेष नहीं है। यह क़िला पूरब-पच्छिम २१० गज़, दक्षिण की ओर १३० गज़ और उत्तर की ओर सिर्फ़ १०० गज़ चौड़ा था। चारो ओर मज़बूत चारदीवारी के चारो कोनों पर चार बुर्ज थे। प्रत्येक बुर्ज पर दस तोपें लगी रहती थीं, और पूरब की ओर विशाल फाटक पर पांच वृहदाकार तोपें अपने फैले हुए भयानक मुखों से अङ्गरेज़ सौदागरों के अथक उद्योग का परिचय दे रही थीं। नवाब इब्राहीम ख़ां के कमज़ोर शासन में मौक़ा पाकर जिस समय सभासिंह और रहीम ख़ां वर्धमान में अपना स्वाधीन राज्य संस्थापित करने का उद्योग कर रहे थे, उसी समय चुंचुड़ा-निवासी डच और चन्दननगरवाले फ़रासीसों की तरह सुतानटी के अङ्गरेज़ वणिकों ने भी कलकत्ते में एक छोटासा क़िला बनवा लिया था। भविष्य में वही क़िला फ़ोर्ट विलियम के नाम से प्रसिद्ध होकर अंगरेज़ों का मुख्य आश्रय-स्थान बन गया था।

इस नवजात अंगरेज़ी क़िले के पश्चिमी पार्श्व में भागीरथी की प्रबल धारा समुद्र की ओर प्रवाहित हो रही थी। पूरब की ओर फाटक के पास से गुज़रता हुआ लाल बाज़ार का सीधा और सुन्दर राजमार्ग पूरब में बलियाघाट तक

चला गया था। नगर की रक्षा का प्रबन्ध कर लेने पर अंगरेज़ों ने क़िले की हिफ़ाज़त के लिए पूरब, उत्तर और दक्खिन की ओर तोपों के तीन मोर्चे बनवाकर उनपर लक्ष्यभेदी आग्नेयास्त्रों को सजा रक्खा था। सब लोग ख़याल करते थे कि किसी तरह नगर में प्रवेश कर लेने पर भी सिराजुद्दौला इन भयानक तोपों के रहते हुए कभी क़िले के भीतर न घुस सकेगा, और शायद इसी भरोसे पर बहुतेरों ने हिम्मत बांधकर क़िले के अन्दर आश्रय लिया था।

अनेक वीरपुङ्गव जो लड़ाई के आरम्भ ही में नगर-रक्षा की आशा को तिलांजलि दे, हज़ार कोशिशों से स्वयम् अपनी रक्षा करने के लिए, भय से कांपती हुई अङ्गरेज़-महिलाओं के साथ लगकर झटपट एक एक करके क़िले के भीतर से भाग खड़े हुए थे, उनमें से किसी किसी ने अपनी उक्त कायर-करणी का समर्थन करने के लिए बड़े ही कौतुकपूर्ण शब्दों में लिखा है—"क़िले की चारदीवारी बिलकुल जराजीर्ण हो गई थी, अतएव साहस करके क़िले के भीतर बने रहने से भी क्या होता! यदि और किसी कारण से नहीं तो एक अन्नाभाव के कारण ही हमें हार माननी पड़ती! गोलाबारूद इतना कम था कि तीन दिन से ज़्यादा हम लोग किसी तरह अपनी रक्षा नहीं कर सकते थे। यह सच है कि तोपों की कमी न थी, परन्तु उनमें से अधिकांश में पहिये नहीं थे, इसलिए वे चल ही न सकती थीं, और बिलकुल बेकार अवस्था में चारदीवारी के पास टूटी फाटी पड़ी हुई थीं। उन्हें काम में लाने का कोई उपाय न था।" क़िले की अवस्था यदि वास्तव में इतनी शोचनीय थी तो उन लोगों का अपराध ही क्या; परन्तु जिनका क़िला

ऐसा कमज़ोर था, जिनके पास रसद की इतनी कमी थी, जिनके हथियार ऐसे निकम्मे थे, वे फिर किस बिरते पर सिराजुद्दौला की प्रभूत सेना के सामने कमर बांधकर खड़े हो गये थे। इस बात पर विचार करने की चेष्टा किसी ने नहीं की।

कलकत्ते के दक्षिण की ओर 'मराठा-खाई' नहीं थी। इस ओर घना जंगल था। नवाब की सेना को इस ओर से जाने का रास्ता मालूम न था। इसलिए नगर के उत्तर की ओर बराहनगर में पड़ाव डालकर नवाब की सेना ने बाग़बाज़ार के रास्ते से नगर में प्रवेश करने का उद्योग प्रारम्भ किया।

१८ जून के प्रातःकाल को नवाब के सिपाहियों ने तोपों में आग लगाई। अंगरेज़ी फ़ौज बड़ी दृढ़ता के साथ उनके आक्रमण के वेग को प्रतिहत करने के लिए जल और स्थल को विकम्पित करके जहाज़ों एवं पेरिंग नामक क़िले से एक ही साथ गोले बरसा रही थी। इसलिए नवाब की सेना सहज ही बाग़बाज़ार की ओर क़दम न बढ़ा सकी। बहुत कुछ चेष्टा करने पर कुछ सिपाही खाल के किनारे की एक झाड़ी से होकर धीरे धीरे आगे बढ़ने लगे। परन्तु पिसकार्ड नामक एक अङ्गरेज़ी सैनिक ने रात के वक़् उन्हें नितान्त असहाय अवस्था में टुकड़े टुकड़े कर डाला! सामयिक प्रकाश में बुझते हुए चिराग़ की लौ के सदृश अङ्गरेज़ों का प्रताप चारो ओर प्रदीप्त हो उठा।

उमीचन्द का ज़ख़्मी जमादार छुपे छुपे भागकर नवाब के डेरों में पहुंचा। उसने सिराजुद्दौला को गुज़री हुई घटना का आद्योपान्त वृत्तान्त सुनाया। और दक्षिण एवं पूरब

की ओर से आक्रमण करने का गुप्त भेद उसे बता दिया। बस, रात्रि का अन्त होते ही उत्तर की ओर तोपों का गर्जन बिलकुल बन्द हो गया। पूरब और दक्षिण की ओर एकाएक गोले बरसने लगे। अङ्गरेज़ों ने भी शीघ्र ही मोर्चों पर जाकर नगर की रक्षा के लिए तोपों में आग लगाना शुरू किया।

लाल बाज़ारवाले रास्ते के ऊपर पूरब की ओर जो तोप मंच बनाया गया था, उसके सामने ही कुछ दूर पर "जेलखाना" था। अङ्गरेज़ों ने उस जेलखाने की उत्तरवाली दीवार में छेद फोड़कर वहां कई एक तोपें जुटा रक्खी थीं, और लाल बाज़ार के रास्ते से नवाबी सेना के शहर में घुसते ही जेलखाना और पूरबवाले तोपों के मोर्चों से एकदम आग बरसाकर शत्रु-सेना का सर्वनाश करने की ठानकर हर्षपूर्वक युद्ध-क्षेत्र में अग्रसर हो रहे थे। परन्तु नवाब की सेना अनजानों की तरह सीधा रास्ता पकड़कर तोपों के सामने नहीं बढ़ी, उसने बड़ी होशियारी से काम लेकर सड़कवाला रास्ता ही छोड़ दिया। केवल पहरेदार सिपाहियों को पराजित करके वह उत्तर और दक्खिन की ओर हटने लगी।

देखते ही देखते अङ्गरेज़ी तोपों के तीनों मोर्चे तीनों ओर से घिर गये। फिर तो नगर की रक्षा करना असम्भव हो गया। पूरबवाले मोर्चे के अफ़सर कप्तान क्लेटन और उनके सहायक हालवेल साहब दोनों ही क़िले के भीतर भाग गये, और नवाब की सेना को चारो ओर अधिकार जमाने का मौक़ा मिल गया। सैनिकों ने अङ्गरेज़ी तोपों के मोर्चों पर क़ब्ज़ा करके उन्हीं के तोप-गोलों से क़िले के भीतरवाले अङ्गरेज़ों पर गोले बरसाना शुरू किया। वीरों के पैरों की धमक से कलकत्ता प्रकम्पित हो उठा।

क़िले के नीचे गङ्गा में कई नावें और एक जहाज़ लगा हुआ था। शाम को उसी जहाज़ पर स्त्रियों को अन्यत्र भेज देने की व्यवस्था की गई। जहाज़ तक इन महिलाओं को सुरक्षित पहुँचाने के लिए मेनिंहम और फ्राकलेंड उनके साथ गये। रात्रि के अन्धकार में क़िले के भीतर से चुपके चुपके निकलकर गङ्गा के किनारे जा पहुंचे। स्त्रियां जहाज़ पर सवार हो गईं; परन्तु मेनिंहम और फ्राकलेंड के मुंह में भी पानी आ गया, वे भी जहाज़ से उतरने को राज़ी न हुए। ऐसी अनिवार्य दशा में, जब क़िले की रक्षा करना असम्भव हुआ, अनेक बार बड़े बड़े वीरपुंगव क़िला छोड़ देने पर बाध्य हुए, इसमें लज्जित होने की कोई बात नहीं। परन्तु मेनिंहम और फ्राकलेंड ने जैसी दशा में क़िले को छोड़ औरतों के साथ जहाज़ पर भागकर अपनी कायरता का परिचय दिया था, उससे अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों को भी शरम के मारे सर नीचा करना पड़ा है। थरंटन लिखता है:—"ऐसी दशा में क़िले में घिरे हुए लोगों को क़िला छोड़ने और जहाज़ पर भागजाने की युक्ति सोचना एक साधारण बात थी, और वे लोग बिना किसी मानहानि के डर के भाग सकते थे; परन्तु उनमें पारस्परिक अनैक्य और मतभेद तथा कम्पनी के कुछ प्रधान कर्मचारियों की, बिना ही कुछ हानि उठाये, भाग जाने की दुष्ट इच्छा यह ऐसे नीच काम थे, जो पराजय के अंतिम समय में किये गये, और शायद अंगरेज़ों से और कभी नहीं हुए।"

जिन्होंने क़िले के भीतर आश्रय लिया था, उनके क्लेश की सीमा न रही! सब कोई दूसरों को सिखाने के लिए तैयार थे, पर स्वयम् किसी की बात नहीं मानना चाहते थे।

बाहर तो नवाब की सेना उन्मत्तों की भांति कूदफांद कर शोर मचा रही थी और क़िले के भीतर अङ्गरेज़-मंडली में भीषण कोलाहल मचा हुआ था। फ़िरंगियों का आर्तनाद, सिपाहियों की पारस्परिक कलह और सेनापतियों का मतिभ्रम इत्यादि कारणों से क़िले के भीतर शासन-शक्ति का सर्वथा लोप हो गया था, कोई किसी की बात न मानता था।

आधी रात के वक्त नवाब की सेना क़िले की चारदीवारी को लांघने के लिए कटिबद्ध हुई। यह देखकर क़िले की रक्षा के लिए आगे बढ़ना तो दूर रहा, सब अपने अपने प्राणों की चिन्ता में व्याकुल होने लगे। सेनानायक ने लगातार तीन बार नगाड़े की चोट से सैनिकों को आह्वान देने की चेष्टा की, परन्तु द्वार-स्थित सिपाहियों के अतिरिक्त किसी ने भी उस आह्वान पर ध्यान नहीं दिया। नवाब की सेना, यह समझकर कि क़िलेवाले जग रहे हैं और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं, अपने डेरों में वापिस चली गई। परन्तु उस रात को अङ्गरेज़ी क़िले में किसी को पलक लगाने का मौक़ा न मिला।

रात के दो बजे अङ्गरेज़ों की सामरिक सभा का अधिवेशन हुआ। निम्न श्रेणी के सिपाहियों को छोड़कर सब इस सभा में शरीक हुए। दो घन्टे के वाद-विवाद के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि अब दुर्ग-रक्षा के लिए प्रयत्न करना निरर्थक है। बहीखाता और जमा-पूंजी समेट कर भाग चलना ही श्रेयस्कर है। परन्तु कब भागना होगा और कैसे भागना होगा, इन बातों की कुछ विवेचना न हो सकी।

नदी के किनारे जो नावें बंधी हुई थीं, उनमें से अधिकांश रातों रात चली गईं। प्रातःकाल पुर्तगीज़ रमणियों और

बाल-बच्चों को जहाज़ पर बैठाने के लिए एक गुप्त दरवाज़ा ज्यों ही खोला गया त्योंही और बहुतों ने भी भागकर गङ्गा के किनारे जहाज़ के पास आकर कोलाहल मचा दिया। इस कोलाहल में किसी ने किसी की बात को न सुना। सभी कोई स्वयम् सब से पहले जहाज़ पर बैठकर भागने के लिए आतुर होने लगे। इस धमाधसी और गोलमाल में जो होना था वही हुआ। नावों के उलट जाने से बहुतेरे आदमी डूब गये, कुछ नवाब के तीरंदाज़ों का शिकार हुए और कुछ लोग जो बहुत सी तकलीफ़ें उठाकर ज्यों त्यों जहाज़ पर पहुंचे, उन्होंने झट लंगर खोल दिया। नवाब के सिपाही उनके ऊपर गोले बरसाकर भागे हुए जहाज़ की चाल में तेज़ी पैदा करने लगे। जिन्होंने किसी तरह भागने का मौक़ा न पाया और क़िले ही में रह गये, वे झटपट क़िले का फाटक बन्द करके भागे हुए बन्धुओं का नाम ले ले रो पीटकर अपनी हार्दिक वेदना प्रकट करने लगे।

जो लोग अचानक इस तरह से क़िला छोड़कर भाग गये थे, उनमें से गवर्नर ड्रेक, सेनापति मिनचन, कप्तान ग्रान्ट और मिस्टर मैकेटर के नामों ने इतिहास में स्थान प्राप्त किया है। भविष्य में अनेक इतिहास-लेखकों ने अपने तरह तरह के विचित्र प्रमाणों से इन लोगों का कलंक मिटाने की चेष्टा की है। स्टुअर्ट ने लिखा है कि "गवर्नर ड्रेक बड़े साहसी थे, वे क़िले की चारदीवारी के ऊपर तईनात रहकर उसकी रक्षा करने में तनिक भी भयभीत नहीं हुए; परन्तु जब उन्होंने देखा कि अब दुर्ग-रक्षा की कोई सम्भावना नहीं, बारूद सब ख़तम हो चुका, जो है वह भी भीग गया है तब नितान्त अनन्योपाय होकर वे भागने पर बाध्य हुए।" यह वर्णन कहां-

तक ठीक है, इसपर विचार करना आवश्यक है। क़िले के भीतर जो लोग बन्द रह गये थे, उन्होंने हालवेल साहब को सेनापति निर्वाचित करके उसी भीगे बारूद से दो दिन तक किस साहस के साथ नवाब के सिपाहियों का सामना किया था, और दुर्भाग्य-वश अन्त में क़ैद हो गये थे, उसका वर्णन अङ्गरेज़ों ही के इतिहास में प्रकाशित हुआ है।

हालवेल भी और क्या करते! बाग़बाज़ार के पास एक सामरिक जहाज़ ठहरा हुआ था। क़िले की चारदीवारी पर खड़े होकर उन्होंने वह जहाज़ क़िले के पास लाने के लिए नाविकों को इशारा किया। परन्तु नाविक लोग ज्योंही जहाज़ खोलकर ले चले त्योंही उनकी असावधानी से वह एक चढ़ाई पर अटक गया। नवाबी सैनिकों के गोलियां बरसाने पर नाविक लोग गङ्गा में तैरते हुए भाग निकले। अबतक सब लोगों का ख़याल था कि अकस्मात् मतिभ्रम हो जाने के कारण बुद्धिमान ड्रेक साहब सामयिक उत्तेजना में आगे पीछे का कुछ विचार न करके सबसे पहले जहाज़ पर भाग गये हैं, परन्तु उन्हें शायद अपने ही आप अपनी ग़लती मालूम हो जायगी, और अपने साथी-सहकारियों को संकट से छुड़ाने के लिए जहाज़ लेकर वे फिर वापिस आयेंगे। लेकिन आशा व्यर्थ हुई! ड्रेक साहब न लौटे। क़िलेवालों के संकेत-पूर्ण कातर निवेदनों को सुनकर भी उन्होंने लौटने की इच्छा न की। एक इतिहास-लेखक ने लिखा है कि "एक नाव और पंद्रह वीर पुरुषों की सहायता ही से दुर्ग वासियों की दुर्दशा का अंत हो सकता था। परन्तु हाय! भागे हुए अङ्गरेज़ों में से पंद्रह वीर भी इस कार्य के लिए अग्रसर नहीं हुए।"

यथासाध्य उपाय करने पर भी हालवेल साहब क़िले की

रक्षा के लिए सिराजुद्दौला के बढ़ाव को न रोक सके। नवाब की फ़ौज क्रमशः क़िले की ओर बढ़ती गई। २० जून को प्रातः-काल जब नवाब के हज़ारों सिपाही क़िले के पास आकर जमा होने लगे, तो क़िले के अङ्गरेज़ नितान्त भयभीत हो नवाब के सन्मुख आत्म-समर्पण करने के लिए बारम्बार हालवेल साहब से अनुरोध करने लगे। हालवेल साहब अब और क्या करते! बिचारे अनन्योपाय होकर अङ्गरेज़ों के विपत्ति-विनाशक सेठ उमीचंद के शरणागत हुए। पिछली बातों को याद कर उमी-चंद ने अङ्गरेज़ों को कुछ लानत-मलामत नहीं दी, बल्कि उनके कातर करुण-क्रन्दन से द्रवीभूत हो उमीचंद ने नवाब के सेनानायक मानिकचंद को इस आशय का एक पत्र लिखाः—"अब नहीं, अच्छी तरह सीख गये। नवाब की जो आज्ञा होगी अब अङ्गरेज़ लोग उसी को शिरोधार्य करेंगे।" नवाब-बहादुर की ओर से अङ्गरेज़ों को दयादान मिल जाने के लिए पत्र में ऐसी अनेक बातें लिखकर उमीचंद ने वह पत्र हालवेल साहब को दे दिया। हालवेल ने उस पत्र को मानिकचंद के पास पहुंचाने के लिए चारदीवारी पर खड़े खड़े बाहर की ओर छोड़ दिया, और उसे फ़ौरन् ही एक आदमी उठा ले गया; परन्तु उस पत्र का कोई जवाब नहीं आया। इस ओर नवाब के सिपाहियों के प्रबल आघातों से अधिकांश सिपाही ज़ख़्मी पड़े थे। गोरों की पलटन गोदाम तोड़ ताड़कर शराब पीकर नशे में चूर हो रही थी। हालवेल चारो ओर दौड़धूप कर सैन्य-संग्रह करने में लगे थे। ऐसे समय में क़िले के भीतर-वाली अङ्गरेज़ी सेना ने एकाएक क़िले का पश्चिम वाला दर-वाज़ा खोल दिया! उस उन्मुक्त द्वार से जल के सोते की तरह प्रबल प्रवाह के साथ नवाब की फ़ौज क़िले के भीतर

घुसने लगी। युद्ध नहीं करना पड़ा, अङ्गरेज़ों के सब आदमी बन्दी कर लिये गये। अङ्गरेज़ी क़िले के विशाल फाटक पर गौरव के सहित सिराजुद्दौला की विजय-पताका फहराने लगी।

सेनापति मीरजाफ़र तथा अन्यान्य गण्यमान्य अमीर-उमरावों को साथ लेकर नवाब सिराजुद्दौला ने तीसरे पहर पांच बजे के वक्त क़िले में पदार्पण किया, और दरबार में समासीन होते ही उमीचंद और कृष्णवल्लभ का खोज कराने की आज्ञा दी। अङ्गरेज़ों ही के इतिहास में लिखा है कि उमीचंद और कृष्णवल्लभ आकर जिस समय नवाब को सम्मानपूर्वक अभिवादन करके सामने खड़े हुए तो उनमें से किसी का भी तिरस्कार करना तो दूर रहा, सिराजुद्दौला ने दोनों ही को आदरपूर्वक आसन प्रदान किया। जिन इतिहासों में पूर्व-लिखित सारी बातों का कुछ उल्लेख नहीं है, उनके पढ़ने से यह सन्देह होता है कि जिस कृष्णवल्लभ की बदौलत इतने झगड़े हुए, उसे हाथ में पाकर इस प्रकार सम्मानित करने का क्या रहस्य था? जिन्होंने सिराजुद्दौला को निरंकुश और उद्दण्ड नौजवान प्रमाणित करने की भरसक चेष्टा की है उन्होंने कृष्णवल्लभ के प्रति सिराजुद्दौला के सदय व्यवहार के इस ऐतिहासिक रहस्य को प्रकट करने का उद्योग नहीं किया कि राजवल्लभ के साथ संधि संस्थापित करने के समय सिराजुद्दौला ने कृष्णवल्लभ के सारे अपराधों को क्षमा कर दिया था, और उसके बाद अङ्गरेज़ों ने जब बिना ही किसी अपराध के कृष्णवल्लभ को कलकत्ते में क़ैद कर लिया तो सिराजुद्दौला की सहानुभूति कृष्णवल्लभ के कल्याण की ओर और भी अधिक आकृष्ट हो गई थी।

अङ्गरेज़ी क़िले के कोषागार पर सिराजुद्दौला ने अपना अधिकार जमाया, और क़ैदियों को यह समझा बुझाकर आश्वासन दिया कि अङ्गरेज़ों के निरंकुश व्यवहार के कारण ही उनकी यह दुर्दशा हुई। अङ्गरेज़ बन्दियों को नवाब के सिपाही बन्दियों ही के वेश में बांधकर नवाब के पास लाये थे, परंतु सिराजुद्दौला के सामने आते ही उसने हालवेल साहब को बंधन-मुक्त करके अभय-दान दिया। दरबार बरख़ास्त हुआ, लड़ाई के थके मांदे विजयी सैनिक आराम करने के लिए इधर उधर स्थान की खोज में घूमने लगे। सेनापति मानिकचंद को शासन-भार सौंपकर सिराजुद्दौला भी विश्राम-भवन में चला गया। प्रातःकाल जो अङ्गरेज़ी किला वीरों की लीलाभूमि बन रहा था, जिसमें दो दलों के बीच भयंकर प्रतिस्पर्द्धा हो रही थी, शाम को उसी क़िले के भीतर अङ्गरेज़ बन्दी हुए, और मुसलमान नरेश निश्चिन्त-हृदय विराम-शय्या पर सुख की नींद सोया।

अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि जो अङ्गरेज़ आत्म-समर्पण करके क़िले में बन्दी हुए थे, वे सब हतभाग्य स्त्री-पुरुष निदाघ-सन्तप्त भयानक रजनी में एक अति छुद्र आयतनवाली काली कोठरी में ठूंस दिये गये, और उनमें अधिकांश ने दारुण यातना से पीड़ित होकर छटपटाते हुए प्राण विसर्जित किये। मुसलमानों के इतिहास में इसका उल्लेख नहीं है, किंतु अङ्गरेज़ों के इतिहास में इसी का लोमहर्षण-कारी नाम "कालीकोठरी का हत्याकाण्ड" रक्खा गया है।

कालीकोठरी के हत्याकाण्ड के सर्वप्रधान सम्वाददाता हालवेल साहब लिखते हैं:--

"लोग बंगाल का इतिहास पढ़कर यह जान रक्खें कि सन् १७५६ ई० में २० जून को निदाघ-सन्तप्त प्रशान्त रजनी में १४६ हतभाग्य अङ्गरेज़ क़ैदियों में से १२३ ने कलकत्ते की कालीकोठरी में तड़प तड़पकर प्राण दिये! किस प्रकार यह सर्वनाश संघटित हुआ, इसका सच्चा सच्चा वर्णन कर सकनेवाले बहुत थोड़े आदमी जान बचाकर वापिस आये हैं, और जो कोशिश करने पर इस घटना का सम्पूर्ण वृत्तान्त लिख सकते हैं। परन्तु उनमें से किसी ने भी इस शोचनीय कहानी को लिपिबद्ध करने की चेष्टा नहीं की! आज लिखते हैं, कल लिखते हैं, इस प्रकार हमने भी कई बार लिखने का दृढ़ संकल्प किया, परन्तु प्रायः हमारा उद्योग शिथिल हो जाता रहा! जब लिखने को बैठते हैं तो तत्काल ही प्राणों में उसी घोर यातना की चिर-प्रदीप्त शोचनीय स्मृति ऐसी असहनीय वेदना उत्पन्न कर देती है कि उस रोमांच-कारी दृश्य का वर्णन करने के लिए यथोचित शब्द ही खोजने से नहीं मिलते। संसार के इतिहास में वैसी मर्म-वेदना का दूसरा दृष्टान्त नहीं है*। उस मर्मवेदना से मेरा मन और शरीर जो अत्यन्त जर्जरित हो गया था, वह अब किसी अंश में अपनी असली हालत पर आ सका है। निदान कालीकोठरी के रोमांचकारी हत्याकांड को विस्मृति-गर्भ में विसर्जन न करके यथासाध्य हम उसे लिपिबद्ध करने की चेष्टा करते हैं। यद्यपि केवल स्मृति के सहारे ही हम यह

---

* ग्लेनिको का हत्याकांड भी क्या इसकी समानता नहीं कर सकता, जिसने इङ्गलैंड के गौरव-मंडित इतिहास के पृष्ठों को कलंकित कर रक्खा है?

वृत्तान्त लिख रहे हैं तथापि उसमें अत्युक्ति के लिए एक अक्षर का भी प्रयोग न किया जायगा, बल्कि हम कैसा ही क्यों न लिखें, उससे वास्तविक दुर्दशा का एक अंशमात्र भी प्रकट न हो सकेगा।"

"कालीकोठरी की दुर्घटना का वृत्तान्त लिखने से पहले कई पूर्ववर्ती घटनाओं का वर्णन करना आवश्यक है। शाम को छः बजे के वक्त नवाब की फ़ौज ने क़िले में प्रवेश किया। उस दिन नवाब से हमारा तीन बार साक्षात् हुआ। संध्या के सात बजे से कुछ पहले जब हम उससे अंतिम बार मिले थे, उस समय भी उसने केवल यही कहकर हमें आश्वासन दिया कि मैं भी एक वीर हूं, और वीरों की भांति ही तुम्हें वचन देता हूं कि "तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा।" नितान्त सरल भाव से हमारे सम्बन्ध में उक्त आज्ञा प्रदान करने के अतिरिक्त सिराजुद्दौला ने यह कुछ भी नहीं कहा कि हम लोग कहां और किस दशा में रक्खे जायँगे। जान पड़ता है कि उसने सिपाहियों से सिर्फ़ इतना ही कहा होगा कि ये लोग ऐसी जगह रक्खे जायँ, जहां से किसी तरह भाग न सकें। परन्तु कई दिनों की लड़ाई में जो लोग हमारे सैनिकों के हाथों से मारे गये थे, उन्हीं के संगी-साथी सिपाहियों ने बदला लेने के लिए हमारी ऐसी दुर्दशा कर डाली, यही निश्चय है।

"शाम हुई। रात्रि का अंधकार बढ़ने लगा। एक संतरी ने आकर हम लोगों से एक विस्तृत बरामदे की महराव के पास बैठने के लिए कहा। वह स्थान कालीकोठरी और पहरेदारों की बारिक से पश्चिम की ओर था। सामने मैदान था, जिस में चार पांचसौ गोलंदाज़ मशालें जलाये खड़े थे। हमने

देखा तो चारो ओर आग सी लग रही थी। बड़ा डर लगा। सब ने सोचा कि हम लोगों को आग में जलाकर मारने के लिए ही इतने आदमी मशालें लिये खड़े हैं। ७॥ बजे के वक़् कई एक सेनानायक मशालें लेकर चारदीवारी से सटे हुए कमरों को बड़ी छानबीन के साथ देखने लगे। तब तो हम लोगों को कुछ भी शक न रह गया। अपने अनुमान को ठीक समझकर हम विकल होने लगे! ख़याल यह हुआ कि शायद वे लोग चटपट फूंकफांक कर हमें ठिकाने लगाने के लिए पास-वाले कमरों में आग लगाते आ रहे हैं! उस समय हम सब ने निश्चय किया कि जो हो, अबकी बार हम लोग पहरेदारों पर कूद पड़ेंगे, तलवारें खींच लेंगे, और सामने जो ये गोलंदाज़ खड़े हैं, उनपर वीरता के साथ आक्रमण करके बहादुरों की मौत मरेंगे। कायरों की तरह रह रहकर अग्नि में जलते हुए प्राण नहीं देंगे। बेली जेनकिंस और रेवली ने कहा कि "सहसा ऐसे दुःसाहस का काम करने की क्या ज़रूरत है, आगे बढ़कर देखो, क्या बात है। मैं जो ज़रा उठकर देखने लगा तो भ्रम दूर हो गया। वे लोग अभी तक यह निश्चय न कर सके थे कि हम लोगों को रात बिताने के लिए कहां रक्खा जाय, इसी लिए मशालें जलाकर स्थान खोज रहे थे। मैंने देखा कि इस समय पहरा-बारिक के कमरों की देखभाल हो रही है।

"इस स्थान पर एक व्यक्ति का परिचय देना आवश्यक है। इसका नाम था, लिच। यह कम्पनी की कलकत्तेवाली कोठी का एक कर्मचारी था। अबतक मैं केवल इसे अपना बन्धु ही समझकर सम्मानित करता था; परंतु आज इसने मेरे साथ जो व्यवहार किया, उसके कारण मुझे पहले की अपेक्षा उसका कहीं अधिक सम्मान करना आवश्यक है। मुसलमान लोग जिस

समय बड़े ज़ोर-शोर के साथ क़िले में घुस रहे थे, उसी समय लिच भाग गया था। रात्रि में अंधकार हो जाने पर वह लौट आया, और चुपके चुपके मुझसे कहने लगा कि मैं नदी के किनारे पर एक नाव लगाकर आ रहा हूँ, भागना हो तो चलो। केवल यही ख़बर देने के लिए मैं छिप छिपाकर तुम्हारे पास क़िले में आया हूं। उस वक्त हम लोगों के पास अधिक पहरेदार नहीं थे, जो थे भी, वे निश्चिन्त दूर दूर टहल रहे थे। ऐसी दशा में यदि मैं चाहता तो भागना कुछ कठिन न था। परन्तु जिन लोगों ने मेरी आज्ञा का पालन करके प्राण-पण से क़िले को बचाने का उद्योग किया, और अंत में मेरे साथ शत्रु के हाथों में क़ैद हो गये, उनको असहाय अवस्था में नवाब के हाथों में समर्पण करके एकाकी प्राण लेकर मैंने नहीं भागना चाहा। लिच बड़े सरल-भाव से कहने लगा कि 'मैं तो केवल आपही के लिए व्याकुल हो रहा था, अब यदि आप नहीं भागते हैं तो मैं अकेला भागकर क्या करूं।' निदान कोई भी न भागा।

"जो लोग इतनी देर से स्थान खोजते फिरते थे, उन्होंने आकर हमें पहरा-बारिक के बायें पार्श्व में स्थित एक घर में घुस जाने की आज्ञा दी। उस बारिक में सिपाहियों के सोने के लिए कई एक चौकियां पड़ी हुई थीं। वायु के संचार की भी असुविधा न थी। हम लोगों ने ख़याल किया कि चलो सारे दिन के युद्ध की थकावट मिटाने के लिए अच्छा सुभीता मिला। इसलिए हम प्रसन्नतापूर्वक उस घर में घुसने लगे। इसी बारिक के भीतर से कालीकोठरी में प्रवेश करने का दरवाज़ा था। बंदूकें लिये हुए अनेक सिपाही आकर उसी कालीकोठरी में घुस जाने के लिए हमारी ओर इशारा करने लगे। हम लोग

निःशस्त्र थे, अतएव उनके इशारों की अवहेलना करने की हिम्मत न पड़ी। जो लोग पीछे थे, वे भी आगे ही को धक्का देने लगे। आगे की लहरें जिस प्रकार पीछे की लहरों के ज़ोर से सामने ही को बढ़ती जाती हैं, उसी प्रकार हम लोग भी आगे ही को गिरते पड़ते जल्दी जल्दी कालीकोठरी में घुसने लगे! हमें नहीं मालूम था कि कालीकोठरी इतनी तंग और संकुचित है हमीं क्यों, केवल दो एक फ़ौजी अफ़सरों के सिवाय कोई भी नहीं जानता था। यदि यह ज्ञात होता कि वह वास्तव में कालीकोठरी ही है तो हम आज्ञा उल्लंघन करके भले ही पहरेदारों की तलवारों का शिकार होते, परन्तु उस कालीकोठरी में राज़ी के साथ हर्गिज़ पावं न देते।

"सबसे पहले मैंने ही प्रवेश किया। साथ साथ बेली जेनकिंस, कुक, कोलस, स्काट, रेविल और बुकानन भी घुसे। द्वार के पास ही एक खिड़की थी। मैंने घुसते ही उसी खिड़की के किनारे आश्रय लिया। कोलस और स्काट दोनों ज़ख़मी थे, इसलिए उनको भी उसी जगह पर बुला लिया। और लोग भी हमारे आस पास जैसे कुछ हो सका, घेरकर खड़े होने लगे। दरवाज़ा बन्द कर दिया गया। आठ बज गये।

"इस प्रकार लड़ाई के थके मांदे बिचारे हतभाग्य १४६ मनुष्य विकराल गरमी से सन्तप्त अंधेरी रात में, प्राण-रक्षा के लिए यथोचित वायु-संचार से शून्य, केवल १८ फुट आयतनवाली एक ज़रा सी कोठरी में क़ैद हुए! केवल एक दरवाज़ा, सो भी उत्तर की ओर! दो खिड़कियां, उनमें भी लोहे के सीकचे लगे! ज़रा सी ठंडी वायु मिलने का कोई उपाय नहीं! इस दशा को याद रखने पर किसी परिमाण में हमारी दुर्दशा का अनुभव सहज ही किया जा सकेगा।

"हमारी कैसी न कैसी दुर्दशा होगी, उसका भयावना दृश्य हमारी आंखों के सामने उपस्थित होने लगा। काली-कोठरी का आयतन देखकर आंखें भौंचक्की सी रह गईं! सब लोग मिलकर बन्द दरवाज़े को तोड़ डालने की कोशिश करने लगे; परन्तु वह प्रबल उद्योग निष्फल हुआ, दरवाज़ा नहीं खुला।

"उस समय अत्यन्त क्रोध के आवेग में सब लोग उन्मत्तों की तरह कूदने फांदने और शोर-गुल मचाने लगे! मैंने देखा कि इस व्यर्थ क्रोध से तो मानसिक और शारीरिक व्यथा बढ़ने के सिवाय लाभ कुछ भी नहीं है। इसलिए शान्त होने के लिए मैं लोगों से बारम्बार अनुरोध करने लगा।

"सब के शान्त हो जाने पर मौक़ा पाकर, क्या करना चाहिये, इस पर विचार करने की चेष्टा कर ही रहे थे कि इतने में पास के दोनों आहत बन्धु मृत्यु-यातना से पीड़ित हो घोर आर्तनाद करने लगे! तरह तरह की पीड़ाओं से मनुष्यों को देह-त्याग करते देखकर और सर्वदा ही मृत्यु के वृत्तान्तों की आलोचना करके मैं तो मौत की चिन्ता का अभ्यस्त हो गया था, अतएव मुझे अपने लिए तो कोई भय नहीं हुआ। परन्तु अपने साथियों की यंत्रणा देख मैं धैर्य धारण न कर सका।

"पहरेदारों में एक बूढ़ा जमादार था। उसके मुंह की ओर देखने से जान पड़ता था कि मानो वह हमारी कठोर यातना में कातरता का अनुभव कर रहा है। यह देखकर कुछ साहस हुआ। उसे खिड़की के पास बुलाकर मैंने कहा कि स्थान की कमी से हम लोग बड़े दुखी हो रहे हैं। यदि तुम

इनमें से आधे आदमियों को अन्यत्र किसी दूसरे घर में रख सको तो सवेरा होते होते हम तुम्हें एक हज़ार रुपया पुरस्कार देंगे। जमादार वहां से चला गया, और कुछ देर बाद लौटकर बोला कि "ऐसा नहीं हो सकता!" ख़याल किया कि शायद पुरस्कार की रक़म कुछ कम समझी गई, इसलिए दो हज़ार का लालच दिखाया। जमादार फिर चला गया, और अब की बार लौटकर बोला कि "सर्वथा असम्भव! नवाब सो रहे हैं, उनकी आज्ञा के बिना कोई कैसे इस काम में दख़ल दे सकता है, और ऐसा साहस किसे है, जो उन्हें सोते से जगाये।"

"अभी तक लोग प्रायः शान्त रहे, परन्तु अब एक अत्यन्त भीषण यंत्रणा आरम्भ हो गई। ज़रा सी देर में सब के शरीर से ऐसा तलतल पसीना चूने लगा कि जिन्होंने नहीं देखा उन्हें उसका अनुमान करना भी असम्भव है। शरीर का रक्त मानो एक दम पानी होकर बाहर निकलने लगा! पसीने की धाराएँ बह निकलीं। सब लोग मारे प्यास के अधीर होने लगे।

"नौ अभी नहीं बजे थे कि दम घुटने लगा, प्यास का कष्ट असह्य हो गया। हवा यदि बिलकुल ही बन्द होती तो अच्छा था। तत्काल ही दम निकल जाने से सब लोगों के कष्ट का अंत तो हो जाता। सो भी न हुआ! जिस परिमाण में हवा पहुंच रही थी, उससे न तो प्राण ही निकले और न जीवन-धारण की सुविधा हुई।

"प्यास का क्लेश अब न सहा गया। श्वास का कष्ट भी बढ़ने लगा! दस ही मिनट के भीतर छाती में बड़े ज़ोर का दर्द उठा। यह भयंकर विपत्ति बहुत देर तक न सही गई।

उठ कर खड़ा हुआ; परन्तु प्यास, श्वास-कष्ट और छाती को पीड़ा बढ़ने लगी। इस समय भी होश-हवास ठीक थे, किन्तु हाय! होश-हवास विलुप्त होकर शीघ्र ही मौत क्यों नहीं आ जाती, अब कितने और कष्ट झेलने पड़ेंगे, कितनी देर में मृत्यु हमारे इन वीभत्स क्लेशों का अंत करेगी! इसी चिंता में मैं क्रमशः बेहोश होने लगा। थोड़ी हवा—ज़रा सी हवा, और कुछ नहीं, बस, थोड़ी सी विशुद्ध वायु! मैंने सोचा कि बस, ज़रा सी हवा पाजाने ही से सारी पीड़ाओं का अंत हो सकता है। उस समय मैं दूने ज़ोर से लोगों को ढकेलकर खिड़की की ओर बढ़ने लगा। लोग एक दूसरे पर लदे हुए खिड़की को घेरे खड़े थे। इसलिए मैं खिड़की तक न पहुँच सका। खिड़की के किनारे पर लोगों की एक क़तार लगी हुई थी, और एक के बाद दूसरी ऐसी तीन क़तारें घमाघसी से खड़ी थीं। बहुत कुछ उपाय करने पर मुझे तीसरी क़तार में मर पिचकर थोड़ा सा स्थान मिल सका; उसी जगह से हाथ बढ़ाकर मैंने खिड़की की शलाख़ों को पकड़ लिया।

"छाती की पीड़ा और श्वास की वेदना कुछ कुछ शान्त हो गई, परन्तु प्यास एकाएक असह्य होने लगी। अबतक चुपचाप सब कष्ट सहता रहा, परन्तु अब न रहा गया। दारुण वेदना से अधीर हो मैं बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगा।

"ईश्वर की दुहाई, मुझे थोड़ा सा जल दे दो।" बस, इसके बाद मैं न बोल सका। कुछ देर तक मेरी आवाज़ न सुनकर सबने ख़याल किया कि शायद मैं मर गया! परन्तु जब मैं फिर कुछ बोला तो मेरे परिचित स्वर से उत्तेजित होकर सब लोग मेरे मृत्यु-कष्ट से द्रवीभूत हो "पानी दो, पानी दो", कहते हुए जल देने के लिए व्याकुल हो उठे।

"जी भरकर पानी पिया। परन्तु अतृप्त पिपासा ज़रा भी शान्त न हुई। उस समय मैं, जलपान से विरत होकर, पसीने के बूंद एकत्र करके होठ सींचने की कोशिश करने लगा। हाय हाय! पसीने का बूंद उठाया ही था कि ज़मीन में गिर पड़ा, घोर क्लेश जान पड़ने लगा।

"११॥ बजे के पहले ही सब लोग विकार-ग्रस्त होने लगे। कोई कोई तो ऐसे उन्मत्त हो गये कि उन्हें किसी तरह शान्त न किया जा सका। जिन लोगों को खिड़की का आश्रय मिल गया था, केवल वेही कुछ शान्त-भाव से खड़े थे। हवा—हवा—ज़रा सी हवा—थोड़ी सी हवा, चारो ओर से यही मर्मभेदी आर्तनाद उठ रहा था। गोली मार दो—हमें पहले मारो—पहले हमीं को मार दो-चारों ओर यही भयंकर कोलाहल मचा हुआ था। अधिकांश लोग पहरेदारों को उत्तेजित करने के लिए नवाब और मानिकचन्द का नाम ले लेकर अकथ्य और अनर्गल शब्दों में गाली-गलौज करते हुए उन्मत्तों की तरह कूद कूद-कर खिड़की के ऊपर गिरने लगे! जो बेहोश हो गये थे वे अपने साथियों के मृतक शरीरों से चिपटकर मृत्यु की निद्रा में अभिभूत होने लगे। जो ज़िन्दा थे, वे खिड़की पर आक्रमण करने के लिए प्रचंड वेग से, अपने साथियों को पददलित करते हुए, बढ़ने लगे। कोई खड़े होकर, कोई दूसरों के कन्धों पर पांव देकर प्राणपण से खिड़की के सीकचों को पकड़ने लगे। भला किसकी हिम्मत थी जो उन्हें हटाता। मेरे कन्धे पर पत्थर सा लदा था। अधिक बोझ से नीचे को झुक जाने पर भी रक्षा न थी, क्योंकि नीचे की हवा ऐसी गंदी थी कि ज़रा झुकते ही मेरी नाक के नथुने जलने से लगे।

"ऐसी कठिन परीक्षा के समय में मैं धर्म-बुद्धि को स्थिर न रख सका, और सहसा जी में यह ख़याल आया कि मेरे पास छुरी फिर किसलिए है ? बस, छुरी को निकालकर मैंने अपने शरीर को खंड खंड कर डालना चाहा ! अकस्मात् धैर्य और सहनशीलता ने आकर मेरा विचार बदल दिया। कायरों की भांति आत्महत्या करना अत्यन्त नीच कार्य प्रतीत हुआ। उस समय लगभग दो बजे थे। इस प्रकार मैं बहुत देर तक खड़ा न रह सका। मेरे पास केयारी नामक एक फ़ौजी सरदार खड़ा था। वह दुर्ग-रक्षा के लिए सारे दिन बड़ी वीरता से लड़ा था। उसको अपने स्थान पर अधिकार जमाने के लिए बुलाकर मैंने कालीकोठरी में मृत्यु-शय्या पर सोने का संकल्प किया। केयारी ने मुझे धन्यवाद दिया; परन्तु वह बिचारा उस स्थान पर अधिकार न कर सका। मेरे कन्धे के ऊपर जो एक गोलंदाज़ सिपाही बैठा था, वह मेरे हटते ही उस जगह पर डट गया। केयारी ने अपनी लम्बी भुजाएं फैलाकर भीड़ को हटाया, और मुझे भीतर को खींच लिया; परन्तु दैवात् वह स्वयम् बेहोश हो गया। एकाएक उसकी सारी शक्तियां शिथिल हो गईं ! और देखते ही देखते ज़रा सी देर में केयारी का प्राण-पखेरू तन-पिंजर से हवा हो गया।

"भीतर आजाने पर भी कुछ देर तक थोड़ा बहुत होश था, परन्तु उस समय दर्द नहीं जान पड़ता था। उसके बाद होश-हवास जाते रहे। सवेरे को कुक साहब के कहने पर लसिंटन और वालकट ने मुर्दों के ढेर से खींचकर मुझे बाहर निकाला। परन्तु मैं उस समय बिलकुल बेहोश था। इसके बाद सवेरे

की शीतल वायु ने धीरे धीरे मेरे होश-हवासों को फेरकर ठिकाने किया।" *

२१ जून के प्रातःकाल को जिस समय नवाब सिराजुद्दौला ने हालवेल साहब को बुलाया तो पहरेदारों ने उनकी उक्त दुर्दशा का वृत्तान्त प्रकट किया। हालवेल ने स्वयम् लिखा है कि "जब सिराजुद्दौला ने मेरी विपत्ति का वृत्तान्त सुना तो शीघ्र ही उसने कारागृह से मुक्त करके मेरे प्राण बचाये।" हालवेल जब नवाब के दरबार में उपस्थित हुए तो उस समय वे सर्वथा निःशक्त हो रहे थे। गला सूख गया था, ज़बान एँठ गई थी, मुहं से बोल नहीं निकलता था। हालवेल ने लिखा है कि "मेरी ऐसी दुर्दशा देखकर सिराजुद्दौला ने मुझे बैठने के लिए आसन दिया और जलपान कराया।" यह पूछने पर कि अङ्गरेज़ों का ख़ज़ाना किस जगह दबा हुआ है, हालवेल इसका कुछ जवाब न दे सके। राजा मानिकचन्द ने उन्हें और उनके तीन साथियों को बंदी करके मुर्शिदाबाद भेज दिया; और सब लोग छोड़ दिये गये।

हालवेल और उसके साथी क्यों क़ैद किये गये, इसका वृत्तान्त हालवेल ने स्वयम् लिखा है। वे कहते हैं कि उमीचन्द की उत्तेजना के अनुसार राजा मानिकचन्द ही की आज्ञा से हम लोग बन्दी करके मुर्शिदाबाद भेजे गये। सिराजुद्दौला का इसके सम्बन्ध में कुछ भी अपराध नहीं। हालवेल का विश्वास था

---

* यह वर्णन उस पत्र का अनुवाद है, जो २८ फ़र्वरी सन् १७५७ ई० को हालवेल ने साइरन जहाज़ पर से विलियम डेविस के पास भेजा था।

कि अङ्गरेज़ों की क़ैद में उमीचन्द ने जो क्लेश उठाये थे, उनका बदला लेने के लिए ही उन्होंने हमारे लिए यह व्यवस्था की। उमीचन्द वास्तव में सरासर अन्यायपूर्ण अत्याचारों से अत्यन्त पीड़ित हुआ था, हालवेल साहब ने भी इसे मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। अतएव हालवेल साहब का अनुमान ठीक होने पर भी उसके साथ सिराजुद्दौला का कुछ भी सम्बन्ध नहीं। उमीचन्द उस समय शोक और संताप से जर्जरित हो रहा था। जिन्होंने केवल सन्देह ही के कारण उसकी सम्पत्ति और परिवार का सर्वनाश कर डाला था, उनके लिए यदि उमीचन्द ने थोड़े बहुत क्लेश की व्यवस्था की हो तो यह कुछ अनुचित और अस्वाभाविक न था। परन्तु उचित और स्वाभाविक होने पर भी कोई और प्रमाण नहीं मिलता, एकमात्र हालवेल का अनुमान ही उसका प्रमाण है!

---

# सोलहवां परिच्छेद।

## कालीकोठरी-हत्याकांड के रहस्य का निर्णय।

कालीकोठरी के हत्याकांड की जिस हृदय-विदारक और अत्याचार-पूर्ण कहानी ने सभ्य-संसार में सिराजुद्दौला को, मनुष्यों के रक्त का प्यासा, निरंकुश नवाब प्रसिद्ध करके, सौ सौ कलंकों से कलंकित किया है, उसका अस्तित्व-मात्र भी भारतवासियों के विचार में संदिग्ध समझा गया, और सब लोगों से स्वीकृत इतिहास की सर्वमान्य, सच्ची और सन्देह-शून्य घटनाओं में उसकी गणना न हो सकी।

आजकल के आदमियों की बात हम नहीं कहना चाहते। हम वर्तमान समय के आदमी हैं। अंगरेज़ इतिहास-लेखकों के विचित्र और लालित्य-पूर्ण कथनों पर मुग्ध होकर काली-कोठरी के हत्याकांड का हृदय-विदारक समाचार पढ़ते पढ़ते हम प्रायः आंसू गिराने और हाहाकार करने लगते हैं। हममें से कितने ही उक्त घटना के सम्बन्ध में कविताएं रच रचकर स्वजाति और समाज में इस शोक-पूरित कहानी को प्रसिद्ध करके अपनी सहृदयता का परिचय दे रहे हैं। नाटक के रंग-मंचों पर सुशिक्षित पात्रों की नाट्य-निपुणता में अपने को भूलकर "निरखि निबिड़ नैश आकाशेर पाने" * इत्यादि भयानक और मर्मभेदी वाक्यों से हमें बारम्बार रोमांच हो

* रात्रि के घोर अन्धकार में आकाश की ओर देखकर।

जाता है ! परन्तु जो सिराजुद्दौला के समकालीन थे, उनकी आंखों के सामने यद्यपि अंगरेज़ों और बंगालियों के कूट कौशल-जाल से पिंजरा-बद्ध होकर सिराजुद्दौला ने इस लोक से प्रस्थान किया था, तथापि उन्होंने इस कालीकोठरी के हत्याकांड को कहीं स्वप्न में भी नहीं सुना था, न वे उसे नाम-मात्र को भी जानते थे।

मुसलमान इतिहास-लेखकों के इतिहास-ग्रंथों में काली-कोठरी के हत्याकांड का कहीं नाम-निशान भी नहीं है। तत्का-लीन इतिहास-लेखक सैयद गुलाम हुसेन ने "मुतख़रीन" नामक जो इतिहास लिखा है, वह उस समय का बहुत माननीय और विस्तीर्ण इतिहास है। उसमें सिराजुद्दौला की अनेक कुकी-र्तियों का उल्लेख है; परन्तु समस्त "मुतख़रीन" में इशारे के लिए भी कहीं पर कालीकोठरी के हत्याकांड का ज़िक्र नहीं है। प्रसिद्ध फ़रासी पंडित हाजी मुस्तफ़ा नामक व्यक्ति ने 'मुतख़रीन' का जो बृहत् अनुवाद किया है, उसके एक नोट में उसने लिखा है कि "समकालीन बंगालियों से बहुत कुछ पता लगाने पर यही ज्ञात हुआ कि और लोगों की बात तो अलग रही, स्वयम् कलकत्ते के निवासी तक कालीकोठरी के मामले को नहीं जानते थे।" जिनकी छाती के ऊपर इस तरह का भयानक हत्याकांड संघटित हुआ हो, उन्हें उसकी कानोंकान ख़बर न हो, क्या यह किसी तरह भी सम्भव है? केवल यही नहीं,—मरने से बचे हुए जिन अङ्गरेज़ों ने नवाब की आज्ञा से मुक्ति-लाभ कर कलकत्ते के घरों में आश्रय लिया था, क्या यह सम्भव था कि वे इस शोक-समाचार को वहां की जनता में प्रसिद्ध न करते?

मुसलमानों की बात जाने दीजिये। सम्भव है, उन्होंने

अपनी जाति का कलंक मिटाने के लिए स्वरचित इतिहासों में इस शोचनीय घटना के वृत्तान्त का समावेश न किया हो। परन्तु जिन्होंने कठोर यातना से पीड़ित होकर कालीकोठरी के कारागार में जीवन विसर्जित किया, उनके स्वदेशीय, उनके सजातीय और उनके समकालीन अंगरेज़ों के लिखे काग़ज़-पत्रों में कालीकोठरी के हत्याकांड का कहीं नाममात्र को भी उल्लेख नहीं मिलता, सो क्यों ?

युद्ध-क्षेत्र से भागे हुए जो वीरपुङ्गव अंगरेज़ पलता के बन्दर पर रहकर रोज़ तरह तरह की गुप्त मंत्रणाएं किया करते थे, उनके विवरणों की पुस्तक में किसी स्थान पर भी कालीकोठरी की हत्या का उल्लेख नहीं है। दूर-स्थित समुद्र के किनारे पर रहनेवाले मदरास के अंगरेज़ों ने कलकत्ते पर पुनः अधिकार करने के लिए सेना भेजने के जिस वाद-विवाद में बहुतसा समय बिताया था, उसमें भी कहीं कालीकोठरी के मामले का ज़िक्र नहीं है। मदरास के अंगरेज़ी दरबार की प्रार्थना के अनुसार दक्षिण के निज़ाम और अरकाट के नवाबबहादुर ने सिराजुद्दौला को जो चिट्ठियां लिखकर भेजी थीं, उनमें भी कहीं कालीकोठरी की घटना का नाम-निशान नहीं मिलता। मदरास-कौंसिल के कर्ता-धर्ता पिगट साहब ने बड़ी डाट-डपट के साथ सिराजुद्दौला के लिए एक पत्र लिखकर कर्नल क्लाइव को सेना के साथ बंगाल भेजा था, उस पत्र में भी कालीकोठरी के हत्याकांड का उल्लेख नहीं था। क्लाइव और वाट्सन ने बंगाल में आकर पलासी-युद्ध छिड़ने के पहले तक सिराजुद्दौला से बड़ी तेज़ी-तर्रारी के साथ जो पत्र-व्यवहार किया था, उसमें भी कहीं कालीकोठरी के हत्याकांड का आभासमात्र नहीं पाया जाता।

सिराजुद्दौला और अंगरेज़ों के दर्मियान जो सन्धि संस्थापित हुई, उसमें भी इस हत्याकांड का उल्लेख नहीं था, बल्कि इस सन्धिपत्र में कालीकोठरी के हत्याकांड का उल्लेख न होने के कारण अंगरेज़ इतिहास-लेखक 'थरंटन' बहुत क्षुब्ध हो कर लिखता है कि "कालीकोठरी के कष्टों का कुछ बदला नहीं मिला, और इस बदले का न मिलना सन्धि पर बड़ा भारी धब्बा है। उस घोर अत्याचार के लिए इस सन्धिपत्र में कहीं पर उचित क्षमा-प्रार्थना भी नहीं पाई जाती। शान्ति अवश्य चाहिये थी, परन्तु ऐसी शान्ति बहुत ही महंगी है, जिसमें जातीय अपमान हो।" थरंटन के इन वाक्यों से स्पष्ट है कि सन्धिपत्र में उक्त घटना का कहीं पता भी न था।

कलकत्ते पर पुनः अधिकार जमाने के लिए एक एक करके जो अंगरेज़ मदरास से बंगाल में आये थे, उन सभी ने नवाब सिराजुद्दौला को पत्र लिखे थे। यदि कालीकोठरी की घटना सत्य होती तो इन सभी पत्रों में उसका उल्लेख अवश्य होता। सबसे पहले मेजर किलप्याट्रिक ने एक नम्रता-पूर्ण पत्र १५ अगस्त को नवाब सिराजुद्दौला के पास भेजा था, उसमें उन्होंने उस सख़्ती के बर्ताव की शिकायत की थी, जो नवाब की ओर से अँगरेज़ों की कम्पनी के साथ किया गया था। और साथ ही इस बात का भी विश्वास दिलाया था कि इतना होजाने पर भी मेरे विचार नवाब की ओर से उतने ही अच्छे हैं, जितने पहले थे।

कर्नल क्लाइव के पहले पत्र और पलासी-युद्ध छिड़ने से ठीक पूर्व के बड़े तर्जन-गर्जन के साथ लिखे गये अंतिम पत्र में भी उक्त हत्याकांड का नाम-निशान नहीं मिलता। उनके पहले पत्र का आशय यह था:—"एडमिरल वाट्सन जो

बादशाह के विजयी जहाज़ों के कप्तान हैं, और मैं स्वयम् एक सिपाही, जिसकी दक्खिन की विजय का वृतान्त आपके कानों तक पहुंचा होगा, दोनों उस हानि का बदला लेने के लिए आये हैं, जो आपने अङ्गरेज़ी कम्पनी को पहुँचाई है। और यह आपके न्यायोचित विचारों के अनुकूल होगा कि आप अपने देश को लड़ाई का मैदान न बनाकर कम्पनी के नुक़सान की भरपाई कर दें।" इसके बाद, सिराजुद्दौला क्यों सिंहासनच्युत किया गया, इस विषय में कर्नल क्लाइव ने कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स को निम्नलिखित आशय की जो चिट्ठी लिखी थी, उसमें भी कहीं उक्त हत्या कांड का उल्लेख नहीं है। उन्होंने लिखा था:—"कुछ पत्र जो सिराजुद्दौला ने फ़रासीसों को लिखे थे वे मेरे हाथ में आ गये। उनमें से एक का अनुवाद मैं आपके पास भेजता हूं, जिससे यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि हम लोग सिराजुद्दौला का सर्वनाश करने के लिए मजबूर हो गये थे।"

स्वयम् हालवेल ने १७६० ई० में चौथी अगस्त की बैठक में सिलेक्ट कमेटी के सामने १७५७ के राज्य-विप्लव के सम्बन्ध में जिन मन्तव्यों को पढ़ा था, उनमें भी स्पष्ट शब्दों में कहीं कालीकोठरी की घटना का वर्णन नहीं पाया जाता। केवल इतना ही लिखा है कि सिराजुद्दौला ने निर्दयतापूर्वक अङ्गरेज़ों का अनिष्ट किया था, जिससे विवश होकर ही अंगरेज़ लोग उसे सिंहासनच्युत करने के लिए विविध षड़यंत्र रचने में लिप्त हुए। उनके कथन का आशय यह था:—"निर्दय अत्याचारों से हानि उठाने के कारण उत्पन्न होनेवाले उचित क्रोध और अनिवार्य आवश्यकताओं ने हमें सिराजुद्दौला का सर्वनाश करने के लिए बाध्य किया।" इसमें भी कहीं कालीकोठरी

की हत्या का प्रतिकार करने और प्रतिहिंसा-साधन के दृढ़ निश्चय के सम्बन्ध में कोई बात नहीं पाई जाती। केवल परवर्ती इतिहास ही में यह देखा जाता है कि कालीकोठरी के हत्याकांड का बदला लेने और प्रतिहिंसा-साधन करने के लिए ही क्लाइव आया, और इसीसे सिराजुद्दौला का अधःपतन हुआ! उस समय के काग़ज़-पत्रों में केवल व्यापार की हानि और कम्पनी की दुरवस्था ही का तरह तरह से बड़े विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है। कालीकोठरी के हत्याकांड और नर-संहार का उल्लेख उनमें कहीं नहीं मिलता।

मीरजाफ़र के साथ अङ्गरेज़ों की जो संधि संस्थापित हुई थी, उसमें अङ्गरेज़ों ने प्रत्येक श्रेणी की क्षति पूरी कराने के लिए पैसे पैसे का हिसाब लिखा लिया था। परन्तु जिन लोगों ने कालीकोठरी की मर्मवेदना से पीड़ित होकर प्राण-त्याग किया था, उनके बाल-बच्चों के निर्वाह के लिए संधि की शर्तों में एक पैसा भी नहीं लिखा गया, सो क्यों? इन सब बातों पर विचार करने से निष्कर्ष यही निकलता है कि काली-कोठरी के हत्याकांड की दंतकथा सरासर कपोल-कल्पना है।

यह कहानी कब और किस की कृपा से सर्वसाधारण में प्रसिद्ध हुई, इसका इतिहास भी बड़ा मनोरंजक और रहस्य-पूर्ण है। इसके प्रधान प्रचारक हालवेल साहब हैं। १७५७ ई० में २८ फ़रवरी को हालवेल साहब ने अपने प्रिय बन्धु विलि-यम डेविस को जो पत्र लिखा था, उसीसे कालीकोठरी के हत्याकांड का पहला और विस्तीर्ण परिचय मिलता है! जब १७५७ ई० में उन्होंने साइरन नामक जहाज़ पर चढ़कर विला-यत की यात्रा की तो जहाज़ पर बैठे बैठे बेकारी की हालत में

उन्होंने इसी विषादपूर्ण कहानी की रचना की थी। और इसीलिए इसका कोई प्रमाण नहीं पाया जाता कि पलासी-युद्ध के पहले तक सर्वसाधारण को इसका कुछ भी परिचय था। पलासी-युद्ध के उपरान्त जिस समय इङ्गलैंड के निवासियों ने भारत-प्रवासी अंगरेज़ सौदागरों की अपकीर्ति और अत्याचारों के विषय में शोर मचाना शुरू किया तो उसी समय (उससे पहले नहीं) ये पत्र जनता के सामने प्रकाशित किये गये। जिन्हें पढ़कर इङ्गलैंड के स्त्री-पुरुष सब सिराजुद्दौला के नाम से कांप उठे। अङ्गरेज़ों के अत्याचारों की कहानियां विस्मृति-गर्भ में विलीन हो गई और सभ्य-संसार में सिराजुद्दौला के कलंकों का शोर मचने लगा।

जिस उद्देश से कालीकोठरी की करुण कहानी का प्रचार सर्वसाधारण में किया गया था, जब वह सफल हो गया तो उसके बाद इस घटना के सत्य-असत्य की आलोचना किसी ने नहीं की! और भविष्य में इस मिथ्या वृत्तान्त ने अङ्गरेज़ों के लिखे हुए इतिहास-ग्रन्थों के पृष्ठों में सिराजुद्दौला के निरंकुश और शतधिक्कृत नाम के साथ सदा के लिए संयुक्त होकर परवर्ती इतिहास-लेखकों के कल्पना-प्रवाह को बहुत ही तेज़ कर दिया। आज सैकड़ों बरस की गई-गुज़री, चिता-भस्म से ढकी हुई इस कहानी की जीर्ण ठठरी को ढूंढ़ खखोलकर कौन उसके रहस्य का पता लगाये? जिस सन्देह ने 'मुतख़रीन' के अनुवादक फ़रासी पंडित हाजी मुस्तफ़ा को आश्चर्य-चकित कर दिया था, वह सन्देह फिर दूर नहीं हुआ। चाहे जितनी आलोचना और छानबीन हो, कालीकोठरी की घटना इतिहास-लेखकों के निकट सदाही संदिग्ध और सन्देहपूर्ण रहेगी। हां, सरस्वती के केवल कल्पना-कुशल

सुपुत्र ही कभी कभी विमुक्त आकाश के नक्षत्र-लोकों से कवि-ताओं की वृष्टि करके कालीकोठरी के हत्याकांड की करुण किम्बदन्ती को जनता में जागृत रक्खेंगे।

इतिहास देखने से जान पड़ता है कि केवल कालीकोठरी का हत्याकांड ही इस देश में ब्रिटिश राज्य-शक्ति के संस्थापित होने का मूल कारण है। यदि यह सत्य है तो उसके अनुसार ही उसका कोई स्मारक क्यों नहीं पाया जाता? कानपुर के हत्याकांड का स्मृति-स्तम्भ बड़े प्रयत्न के साथ सुरक्षित रक्खा गया है, मणिपुर के हत्याकांड को चिरस्मरणीय बनाने के लिए भी स्मारक बनवा दिया गया है; परन्तु जिन अनेक व्यक्तियों ने कालीकोठरी के कारागार में प्राण देकर ब्रिटिश राज्य-शक्ति की जड़ जमाई, उन हतभाग्य अङ्गरेज़ों की यादगार के लिए ईटों का भी एक साधारण स्मारक नहीं पाया जाता, क्या यह आश्चर्य और विस्मय की बात नहीं है?

इससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात एक यह है कि जिन लोगों ने कालीकोठरी में जीवन-विसर्जन किया था, उनके नामों की एक यादगार कलकत्ते में बनवाई गई थी। कुछ दिन बाद अङ्गरेज़ों ही ने उसे अपने हाथों से गिरा दिया! फिर, जिसके व्यापार की रक्षा के लिए उन अभागों ने अकाल ही में ज़िन्दगी से हाथ धोये थे, उस अंगरेज़ी कंपनी ने तो उनका कोई स्मारक नहीं बनवाया, बनवाया काली-कोठरी के हत्याकांड की कहानी के रचयिता हालवेल साहब ने! यह स्मृति-स्तम्भ कब बनवाया गया था, इसके निर्णय का कोई उपाय नहीं। किसी किसी का मत है कि १७६० ई० में भारत से विदा होते समय हालवेल साहब यह स्मृति-स्तम्भ स्थापित कर गये थे। हालवेल के प्रकाशित किये हुए ग्रन्थ में

इसका एक चित्र भी है, और पाठकों के चित्ताकर्षण के लिए "कालीकोठरी के कारागार में गवर्नर हालवेल" इस नाम से एक काल्पनिक तस्वीर भी दी गई है। इस स्मृति-स्तम्भ में लिखा थाः—

## स्मारक ।

एडवर्ड आइर, विलियम बेलो, रेवरेन्ड फेरियर्स बिलेमी, मिसर्स जेंक्स, रेवली, ला, कोल्स, नेलीकोर्ट जेब, टोरीनो, ई० पेज, एस० पेज, ग्रब, स्ट्रीट, हेरोड, पी० जान्सटन, बिलार्ड, एन० ड्रेक, कार्सकेप्टन गोस्लिग, डोन, डालरियाम्पल, कैप्टैन्स क्लिटन, बुकानन, विट्टर इंगटन, लफ्टिनैन्ट्स बिशप, हेज, बिलैग, सिम्पसन, जे० बिलेमी, इन साइन्स पिकार्ड, स्काट, हेस्टिंग्स, सी० वेडर्बर्न डम्बलेटन, समुद्री कप्तान हंट, ओसबर्न, पर्नेल, मिसर्स केरी, लिच, स्टिविन्सन, गे, पोर्टर, पार्कर, काउलकर और वेन्डाल अटकिंसन—ये सब लोग अपने उन अन्य सहकारियों के साथ जो स्थल तथा जल-सेना-विभाग के सिपाही थे, और जिनकी संख्या १२३ थी, बङ्गाल के सूबेदार सिराजुद्दौला की निर्दयता से गला घुटने के कारण फ़ोर्ट-विलियम के कालीकोठरी-कारागर में २० जून सन् १७५६ ई० की रात को मर गये, और दूसरे दिन सुबह को उनके शव कलकत्ते के रेविलन ख़ंदक़ में फेंक दिये गये।

उस कराल विपत्ति से ज़िन्दा बचे हुए, मैंने यह स्मृति-स्तम्भ बनवाया।

जे० ज़ेड० हालवेल।

पूर्वोक्त शिला-लिपि के अतिरिक्त एक लिपि में लिखा हैः—

"सम्राट् की फ़ौजों के साहाय्य से—जो वाइस एडमिरल-

वाट्सन और कर्नल क्लाइव के द्वारा लाई गई थीं—इस निर्दयता के कार्य का बदला सन् १७५७ में अच्छी तरह ले लिया गया।"

इस स्मृति-स्तम्भ का अब कहीं पता भी नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लार्ड मारकुइस आफ़ हेस्टिंग्स के शासन-काल (१८२१ ई०) में "कस्टमघर" बनवाने के लिए यह स्मृति-स्तम्भ गिरा दिया गया! कालीकोठरी के हत्याकांड में जिन्होंने जीवन विसर्जन किया था, उन्हीं के मृतक शरीरों की समाधियों के ऊपर यह स्मृति-स्तम्भ बनवाया गया था; इतिहास में ऐसा ही लिखा है। अतएव कालीकोठरी की कहानी यदि सत्य होती तो यह स्मृति-स्तम्भ समस्त अङ्गरेज़-जातिवालों के निकट पवित्र स्थानों में गिना जाता, और ईसा के मतानुयायियों को स्वभावतः ही अपनी धार्मिक आज्ञाओं के अनुसार इस स्थान की रक्षा करने के लिए बाध्य होना पड़ता, एवम् यह पवित्र समाधि-स्तम्भ कदापि धूलि-धूसरित नहीं किया जा सकता था। एक मामूली "कस्टमघर" बनवाने के लिए ऐसे पवित्र समाधिमन्दिर पर लोहे के फावड़े चलते देखकर ईसाई-समाज इस उद्दण्डता को हर्गिज़ बरदाश्त नहीं कर सकता था। भला यह कैसे सम्भव था कि एक ऐसा समाधिमन्दिर गिराकर ख़ाक में मिला दिया गया, और किसी ने धीमे स्वर से भी उसका प्रतिवाद नहीं किया? एक अङ्गरेज़ लेखक ने इस प्रश्न को बड़ी ख़ूबी के साथ हल कर दिया है, वह लिखता है:—"जान पड़ता है कि इस स्मृति-स्तम्भ को अङ्गरेज़ी सेना के पराजय-कलंक का स्मृति-स्तम्भ समझकर लोगों की नज़रों के सामने से मिटा दिया गया।" परन्तु, क्या यह कथन युक्तिसंगत और सम्भाव्य है? ऐसे कलंक-स्तम्भ भारतवर्ष में क्या और नहीं हैं?

कालीकोठरी किस जगह थी, इस समय उसके स्थान का भी कुछ पता नहीं। कलकत्ते के जनरल पोस्टआफ़िस से मिला हुआ उत्तर की ओर जो फाटक है, उसके स्तम्भ में पश्चिम की ओर एक शिला-लेख खुदा हुआ है, जिसका आशय है:—

"इसके निकट फ़ोर्ट विलियम में जो पत्थर का फ़र्श है, वही उस जगह का चिह्न तथा आकार है, जो इतिहास में कालीकोठरी के नाम से प्रसिद्ध है।"

परन्तु इस लेख से कालीकोठरी के स्थान-निर्देश के अतिरिक्त हत्याकांड का कोई पता नहीं चलता। और जिन लोगों ने वहां पर प्राण विसर्जन किये थे, उनके विषय में किसी बात का उल्लेख नहीं पाया जाता।

इस शिला-लेख में पत्थर के बने हुए जिस चबूतरे की बात लिखी गई है, वह चबूतरा हालवेल-वर्णित १८ फुट आयतन का नहीं है, और न वह मेकाले-वर्णित २० फुट आयतन का ही है। यह २२ फ़ुट लम्बा और १४½ फुट चौड़ा है। क्या केवल यही कालोकोठरी के कारागार का चिह्न है? सो भी यह पुराना नहीं, बल्कि सन् १८८७ ई० में स्थापित किया गया है। उस साल शायद मिट्टी खोदते समय काली-कोठरी निकल आई थी और किसी किसी ने बड़ा दृढ़ता के साथ इस बात की घोषणा की है कि वास्तव में यही कालीकोठरी का यथार्थ आयतन है। परन्तु हम अन्यत्र 'इयरली रिकार्डस आफ़ ब्रिटिश इंडिया' में देखते हैं कि १८१८ ई० में कालीकोठरी-कारागार मिस्मार हो गया था। जिन महाशय ने गिरने से पहले उसे अपनी आंखों से देखा था, उन्होंने १८२१ ई० में अपना नाम छिपाकर "एशियाटिक्स" के

नाम से एक प्रसिद्ध पत्रिका (एशियाटिक जनरल आफ़ बङ्गाल) में लिखा था कि "मैंने सन् १८१२ ई० में इस इतिहास-विख्यात कारागार को देखा था, उसी समय यह खसा पड़ा था, और अब तो उसका चिह्नमात्र भी बाक़ी नहीं !" अब विचारने की बात है कि जो सन् १८२१ ही में धूलिधूसरित हो चुका था, वही फिर १८८७ ई० में कहां से निकल आया ?

हालवेल ने जिस कारागार का वर्णन किया है वह १८ फ़ुट लम्बा और १८ फुट चौड़ा था। इस तरह के संकीर्ण और बहुत थोड़े आयतनवाले कमरे में १४६ स्त्री-पुरुष किस तरह बन्द हो सके, इस बात पर सिर्फ़ कुछ ही लोगों ने विचार किया है। थोड़े दिन हुए, बङ्गाल के डाकृर भोलानाथ-चन्द्र ने "कलकत्ता यूनीवरसिटी मेगज़ीन" में लिखा थाः—

"कालीकोठरी-हत्याकाण्ड की सत्यता के सम्बन्ध में, जिसका घटना-स्थल अभीतक वर्तमान होने के कारण देश में तहलका मचा रहा है, मुझे बहुत ही सन्देह है। केवल हालवेल ही ने, जो उन क़ैदियों में से एक बचे थे, इस कहानी को पहले पहल संसार के सामने प्रकट किया। परन्तु मैंने यह प्रश्न स्वयम् हल करने की बड़ी कोशिश की कि किस प्रकार १४६ आदमियों का एक १८ फुट लम्बे और १८ फुट चौड़े कमरे में भरा जाना सम्भव है ? यदि हम यह भी सम्भव मान लें कि वे अनार के दानों की तरह भरे गये या जहाज़ की कोठरियों में लदनेवाले बोरों की तरह उसमें ठूस दिये गये तो भी प्रश्न हल नहीं होता। उसके हल करने में अंकगणित के साथ रेखागणित का विरोध आ पड़ता है, यही उसकी असत्यता को प्रमाणित करने के लिए

पर्याप्त है।" निदान थोड़े से आयतनवाली कोठरी में १४६ स्त्री-पुरुषों को क़ैद कर देना ही कालीकोठरी के हत्याकांड का प्रधान कलंक माना गया है, क्या यह कलंक नितान्त अत्युक्तिपूर्ण और सर्वथा कपोलकल्पित नहीं है?

सिराजुद्दौला के क़िला फ़तह करने के समय १४६ आदमियों का क़ैद होना ही बड़ी संदिग्ध बात है। हालवेल ने जिस दिन दुर्ग-रक्षा का भार अपने ऊपर लिया था, उस दिन क़िले में सिर्फ़ १७० आदमी थे। और सब लोग क़िले के अध्यक्ष महामति ड्रेक साहब के कुत्सित उदाहरण का अनुसरण-कर अपने प्राण ले भाग गये थे। इन १७० आदमियों में से अधिकांश दो दिन के निरंतर युद्ध में धराशायी हो चुके थे। जो ज़िन्दा बचे थे, उनमें घायल और मृतःप्राय जनों की संख्या भी कम न थी। जो लोग किसी तरह भी नहीं भाग सके, केवल उन्हींने आत्मसमर्पण किया था। उनके अतिरिक्त जिनमें साहस था, बल था, और भागने की रुचि थी, वे दुर्ग-विजय के कोलाहल में मौक़ा पाकर प्राण ले रफूचक्कर हो गये थे! जो स्त्री-पुरुष मिर्ज़ा अमीरबेग के हाथों से गिरफ़्तार हुए, वे उसी दिन मीरजाफ़र की कृपा से सकुशल पलता को भेज दिये गये थे। ऐसी दशा में हालवेल के कथनानुसार १४६ आदमियों का कारागार में क़ैद होना सर्वथा संदेह-जनक है। हालवेल ने अपने स्वप्रणीत ग्रन्थ में जिन मृतक और मृतःप्राय सहयोगियों के नामों का उल्लेख किया है, उनकी संख्या भी ६६ से अधिक नहीं है। हालवेल की पुस्तक में लिखा है कि सिराजुद्दौला के कलकत्ते पर आक्रमण करने से पहले क़िले में रहनेवाले अंगरेज़ आदिकों की जो गणना की गई थी, उसमें सब मिलाकर १६० सैनिक सरदार थे, जिनमें

केवल ६० यूरोपियन थे। इनमें गवर्नर ड्रेक, सेनापति मिन-चन, कप्तान ग्रान्ट, मिस्टर म्याकेट, मेनिहम, फ्राकलेंड, रेवरेंड कप्तान लेफ्टिनेंट मेपलटफट, कप्तान हेनरी बेडबर्न, समनार, चार्लस डगलस प्रभृति दस वीर पुरुषों के भाग जाने की बात हालवेल ही के ग्रन्थ में लिखी हुई है। इनके भागने के बाद १८० आदमी क़िले के भीतर रह गये थे, उनमें से २५ मर चुके थे एवम् ७० घायल और मृतःप्राय थे। हालवेल की गणना के अनुसार क़िला फ़तह हो जाने के वक्त उसमें ५० से अधिक यूरोपियनों के रहने का प्रमाण नहीं मिलता। ५० आदमियों में से १२३ तो कालीकोठरी में मर गये और २३ कालीकोठरी में बन्द रहकर भी ज़िन्दा बच रहे! क्या यह निरी हास्यास्पद बात नहीं है?

नवाब के सिपाहियों ने उस रात को अंगरेज़ क़ैदियों के लिए फूलों की कोमल सेज नहीं बिछा दी, यह ठीक है। किन्तु फिर भी हालवेल ने जिस तरह के एक छोटे से कमरे में जितने स्त्री-पुरुषों के क़ैद करने की बात लिखी है, उसको नाममात्र के लिए भी सत्य समझकर स्वीकार करने का साहस नहीं होता।

सभी अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने हालवेल के लिखे हुए कालीकोठरी-हत्याकांड के वर्णन को सत्य समझकर स्वीकार कर लिया है; परन्तु किसके दोष से यह दुर्घटना संघटित हुई थी, इस सम्बन्ध में अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों के बीच भी मतभेद है। मुर्शिदाबाद के भूतपूर्व न्यायाधीश स्वनामधन्य महात्मा विवारिज ने लिखा है कि "कालीकोठरी-हत्याकांड के वर्णन से सिराजुद्दौला को निष्ठुरता और निर्दयता के कलंकों से कलंकित करना हमें कदापि शोभा नहीं देता।

मेरी समझ में इस सम्बन्ध में चुप रहना ही उचित है। १७५७ ई० की पहली अगस्त को अमृतसर प्रदेश में क्या दुर्घटना न संघटित हुई थी !"*

विवारिज महोदय ने जिस घटना का उल्लेख किया है, उसके सामने कालीकोठरी के हत्याकांड को लज्जित होना पड़ता है ! एक ज़रा से आयतनवाले गोलाकार कमरे में बहु-संख्यक सिपाहियों को क़ैदकर अङ्गरेज़ों ने उनमें से एक एक करके २३७ हतभाग्य पुरुषों को बाहर खींच खींचकर गोलियों से मारा ! उन अभागे क़ैदियों में से औरों ने बाहर निकलना स्वीकार नहीं किया ! अङ्गरेज़ों के हुक्म से कमरे का दरवाज़ा बन्द कर दिया गया। उसके बाद जब दरवाज़ा खोला गया तो ४५ संज्ञाशून्य हतभाग्य पुरुष खींचकर बाहर निकाले गये ! युद्ध की थकावट, भय, गर्मी की प्रचण्डता और पसीने की अधिकता से दम घुट घुटकर न जाने कितने और कैसे कैसे अकथ्य क्लेशों से पीड़ित हो होकर उन बिचारों के प्राण निकले थे !† उज्ज्वल ज्ञान की मूर्त्ति उन्नीसवीं शताब्दी की सभ्य-शिरोमणि सहृदय अङ्गरेज़ जाति के शासन में इस तरह के भयानक हत्याकांड की दुर्घटना संघटित हुई ! परन्तु इसके सम्बन्ध में कितने इतिहास-लेखकों ने लज्जा से शिर नीचा किया ? युद्ध के अन्त में क़ैदियों को प्रायः ऐसी दारुण यातनाएं भोगनी ही पड़ती हैं, उन्हें खाने को अन्न और पीने को पानी नहीं मिलता, बिस्तर से पीठ लगाने का अवसर नहीं आता, कभी कभी निरंकुश पहरेदारों के अत्याचारों से बिचारे

* 'कलकत्ता रिव्यू' अपरैल सन १८६२ ई०।

† दी क्राइसिस इन दी पंजाब, पृष्ठ १६२।

जीते हुए मृतक बन जाते हैं। युद्ध-व्यापार में ये कलंक अपरिहार्य हैं, कोई इन्हें नहीं रोक सकता। परन्तु जो लोग एक दिन अपने देश में "ग्लेनकोर-हत्याकांड" के रुधिर-पंक से कलंकित होकर भारतवर्ष में आये, और इस देश के सैकड़ों स्थानों पर भीषण हत्याकांडों से अपनी पाशविक शक्ति का परिचय दिया, जिनके दया-दाक्षिण्य के अमोघ निदर्शन-स्वरूप कई सौ हतभाग्य भारतवासियों की सूखी ठठरियां हिन्दुस्तान के वृक्षों की डालों में बहुत बरसों तक डोलती रही थीं, जिनके प्रतिहिंसा-ताड़ित उद्धत सैनिकों ने केवल संदेह ही के मूल पर अथवा ईर्ष्या के वशीभूत हो कानपुर के सैकड़ों नागरिकों का अन्याय से रक्तपात करवा कर उसके बाद उनके परिवार और धन का सर्वनाश करने में भी तनिक दया न दिखाई, उनके इतिहास में लिखी हुई कालीकोठरी की अत्युक्तिपूर्ण अथवा सर्वथा काल्पनिक कहानी से सिराजुद्दौला को कलंकित करना बड़े दुःख का विषय है।

कालीकोठरी की घटना यदि सत्य भी हो तो इसमें सिराजुद्दौला का क्या अपराध? स्वयम् हालवेल साहब ही ने लिखा है कि "मुझे यह विश्वास नहीं कि सिराजुद्दौला का इसके साथ कुछ भी सम्बन्ध हो।" उनका विश्वास था कि नवाब के उन सैनिकों के द्वारा ही यह दुर्घटना संघटित हुई थी, जिन्होंने युद्ध में अपने सहकारियों के मारे जाने पर हमसे बदला लेने का निश्चय कर रक्खा था। इतिहास का संकलन करने के लिए आद्योपान्त इन सारी घटनाओं की जांचपड़ताल करने पर हमारी यही धारणा होती है कि सिराजुद्दौला ने सर्वसाधारण के सामने हालवेल साहब को बन्धन से छुड़ाकर सच्चे शूरों की भांति उसे और उसके साथियों को

अभय-दान दिया था। यदि अन्याय और अत्याचार करना उसे अभीष्ट होता तो वह कदापि ऐसे सदय-व्यवहार का प्रयोग न करता। दूसरे, उसे आशा थी कि हालवेल अङ्गरेज़ों के गुप्त ख़ज़ाने का पता बता देगा। ऐसी दशा में जिस कठोर दण्ड के प्रयोग से हालवेल की जान जोखों में पड़ती, और सिराजुद्दौला के सम्पत्ति-लाभ का मार्ग अवरुद्ध हो जाता, उसमें सिराजुद्दौला कदापि सहमत न हो सकता था।

हालवेल और उसके साथी सारे दिन वीरों की भांति दुर्ग-रक्षा के लिए युद्ध में पराक्रम दिखाकर दुर्भाग्य से अंत में पराजित हो गये थे, तथापि संध्या के समय स्वच्छन्दतापूर्वक विस्तीर्ण मैदान में उन्हें ठंडी हवाओं के झोंकों का आनन्द लूटने के लिए भरपूर अवसर दिया गया था। इस सुअवसर को पाकर यदि वे पुनः नवाब के सिपाहियों पर दौड़ पड़ने की चेष्टा और इधर उधर दौड़ धूपकर भागने के लिए रास्ता ढूंढने की कोशिश न करते तो शायद उन्हें कहीं क़ैद होना ही न पड़ता। फिर, जिस समय क़ैद करने का विचार किया गया तो अङ्गरेज़ों ने स्वयम् ही कारागार का पता दे दिया था। नवाब के सैनिक उस कारागार के आयतन के विषय में कुछ नहीं जानते थे।* जब सब से पहले हालवेल ने उसमें प्रवेश करने में कोई आपत्ति न की तो उन्होंने औरों को भी उसके भीतर घुसा दिया। यदि इसमें उन्हें कष्ट हुआ था तो उन्हें सहूलियत के साथ अपने दुःख की बात को समझाकर कहना चाहिये था, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया और न किसी सेनानायक को ख़बर भेजी, बल्कि

* 'मिल,' जिल्द ३।

उद्धत अङ्गरेज़ी सिपाहियों ने बड़े ज़ोरों के साथ दरवाज़े को तोड़ डालने की कोशिश करके पहरेदारों को अत्यन्त भयभीत कर डाला, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि हालवेल की कहानी सत्य है तो यह भी ठीक ही है कि अङ्गरेज सैनिकों की तेज़ी-तर्रारी को देखकर ही संतरी लोग बिना नवाब की अनुमति के दरवाज़ा खोलने को राज़ी नहीं हुए। इसके लिए वे दोषी नहीं हो सकते। फिर, पहरेदार बाहर खड़े हुए जिन लोगों को देख रहे थे वे खिड़की के किनारों से लगे हुए थे। उन्हें विशेष कष्ट न था, वे कुछ चिल्लाते चिल्लाते न थे, न विशेष यंत्रणा ही प्रकट कर रहे थे। कारागार के भीतरी भाग में—पहरेवालों की नज़रों से ओझल स्थान में—जो लोग मर्मवेदना से पीड़ित हो छटपटा रहे थे, उनके सम्बन्ध में पहरेवालों को क़तई कुछ न मालूम हो सका।* परन्तु इन सब बातों की यथोपयुक्त आलोचना न करके कोई कोई इतिहास-लेखक अनायास ही लिख गये हैं कि सिराजुद्दौला ने स्वयम् ही क़ैदियों को कालीकोठरी में बन्द करने की आज्ञा दी थी! परन्तु ऐसा निश्चय करने के लिए प्रमाण कुछ भी नहीं, केवल अनुमान ही के आधार पर इन्होंने सिराजुद्दौला को दोषी ठहरा लिया है। "हिस्ट्री आफ़ दी ब्रिटिश इम्पायर" में थरंटन ने तो साफ़ ही लिख दिया है कि "प्रमाण न होने पर भी कार्य-कारण की शृङ्खला पर विचार करने से

---

* मेकाले ने लिखा है कि "जेल के रक्षक सिपाही उस समय खिड़की के पास मशालें लाये, और भीतर के क़ैदियों की दुर्दशा का करुणाजनक दृश्य देखकर खूब हंसे!" यही कहना काफ़ी है कि इसका उल्लेख स्वयम् हालवेल के लेख में भी नहीं पाया जाता!!

सारा पाप सिराजुद्दौला ही के मत्थे जाता है। यदि ऐसा न था तो उसकी आज्ञा के बिना द्वार खोलने की हिम्मत किसी को क्यों न हुई, और इतने आदमियों के प्राण बचाने के हेतु उन्होंने क्षणमात्र के लिए नवाब की निद्रा में व्याघात डालने से क्यों इन्कार किया ? यही प्रमाण यथेष्ट है। इसीसे समझ में आ जाता है कि सिराजुद्दौला की आज्ञा ही से यह अत्याचार संघटित हुआ था।"

सिराजुद्दौला ही ने इन हतभाग्य अङ्गरेज़ बन्दियों को कालीकोठरी में क़ैद करने की आज्ञा दी थी, इसका कोई प्रमाण नहीं। हालवेल के वर्णन को स्वीकार करते हुए भी सिराजुद्दौला को निरपराध प्रमाणित करने के लिए अनेक प्रमाण मौजूद हैं। इन प्रमाणों के आधार पर वर्तमान् समय के किसी किसी अङ्गरेज़ लेखक ने अपने स्वरचित इतिहास-ग्रन्थों में सिराजुद्दौला को निष्कलंक प्रमाणित किया है।

फिर, यदि कालीकोठरी की घटना सत्य है तो इस अपराध के प्रधान सहकारी अङ्गरेज़ ही हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। महात्मा हावर्ड के आविर्भाव के पहले इङ्गलैण्ड ही में इस तरह की दुर्गन्धिमय और प्रकाशरहित अंधेरी कालीकोठरियां देखी जाती थीं। अङ्गरेज़ों ने गर्म देश बङ्गाल में आकर भी अपने देश के उदाहरणों का अनुसरण कर यहां भी वैसी ही कालीकोठरियां बनवाई थीं। इन कालीकोठरियों में न जाने कितने आदमी बिचारे अन्याय से पीड़ित हो अकाल ही में काल-कवलित होते थे! कितने ही उद्दण्ड सैनिक, कितने ही मदान्ध नाविक, कितने ही अन्नहीन, ऋणग्रस्त, दरिद्र बंगाली इन्हीं कालीकोठरियों में यम-यातना से पीड़ित हो तड़पते हुए प्राण देते थे! इतिहास-

लेखक जेम्स मिल ने इन सब बातों को याद करके बड़े ही कारुणिक शब्दों में लिखा है कि "हाय ! यदि कालोकोठरी न होती तो अङ्गरेज़ क़ैदियों का ऐसा शोचनीय परिणाम कदापि न हो सकता।"

हालवेल ने जिस प्रकार बड़े विस्तार के साथ इस कहानी का वर्णन लिखा है, उसे पढ़ते पढ़ते स्वभावतः यह विचार उत्पन्न होता है कि इतनी बातें तो कभी सरासर मिथ्या नहीं हो सकतीं। परन्तु हालवेल की सत्य-निष्ठा कैसी ज़बर-दस्त थी, इसका परिचय मिल जाने पर उनकी किसी भी बात पर विश्वास करने की इच्छा नहीं होती। जो हालवेल कलकत्ते की कालीकोठरीवाली घटना के प्रधान प्रचारक हैं, उन्हीं हालवेल ने मीरजाफ़र को गद्दी से उतारते समय ढाके के हत्याकांड का वर्णन लिखा था। विलायत के अधि-कारियों के पास उन्होंने यह लिखकर भेजा था कि "नवाब मीरजाफ़रखां के निन्दनीय चरित्र के विषय में यही कहना पर्याप्त है कि उसने सन् १७६० ई० के जून महीने में नवाज़िश की बीवी घसीटीबेगम और सिराज की मां अमीनाबेगम इत्यादि प्रतिष्ठित महिलाओं का ढाके के राज-कारागार में निर्दयतापूर्वक क़त्ल कर डाला!" परन्तु भविष्य में हालवेल के स्वदेशी सहयोगी अर्थात् कलकत्ते की कौंसिल के अङ्गरेज़ों ने ढाके के उक्त हत्याकांड के मूल का अनुसंधान करके लिखा है कि हालवेल का वर्णन सर्वथा ही मिथ्या है! उन्होंने लिखा है:—

"परलोकवासी नवाब मीरजाफ़र की स्मृति को न्याय की दृष्टि से देखते हुए हम आप लोगों पर इस बात को प्रकट कर देना आवश्यक समझते हैं कि जिस भयंकर नर-हत्या का

दोष हालवेल ने अपनी वक्तृता में ईस्ट इंडिया-कम्पनी के अधिकारियों के सामने मीरजाफ़र पर लगाया, वह एक राजकुमार के चरित्र पर ऐसा कठोर कलंक लगाया गया है, जिसे सत्य समझने के लिए ज़रा भी गुंजाइश नहीं।"

जो लोग मीरजाफ़र की पदच्युति का समर्थन करने के लिए मीरक़ासिम का रुपया खाकर इस तरह के झूठे हत्याकांड का मिथ्या वृत्तान्त लिख स्वजाति और समाज में झूठे बने, उन्हीं ने कालीकोठरी के क़िस्से की रचना की! अतएव वह भी उक्त घटना की भाँति सरासर मिथ्या नहीं है, इसका प्रमाण ही क्या?

हालवेल सन् १७३८ ई० में डाकृरी का व्यवसाय करने के लिए इस देश में आये। कलकत्ते के अङ्गरेज़ी दरबार ने उन्हें कलकत्ते का डाक्टर नियुक्त किया। इस पद पर हालवेल को ५००) रु० मासिक वेतन मिलता था। इसके अतिरिक्त उस ज़माने की रीति के अनुसार नज़र-भेंट, मांग-जांच तथा कर इत्यादि से भी बहुत आमदनी होती थी। वे कलकत्ते के काले आदमियों पर बड़ा अत्याचार करते थे, सिराजुद्दौला को भी इसका निश्चय हो गया था। और इसी लिए यह बात क़ासिमबाज़ारवाले मुचिलकानामे में लिखा ली गई थी कि हालवेल इस प्रदेश के निवासियों पर अत्याचार न करें। कलकत्ते के फ़तह हो जाने के बाद हालवेल के सर्वस्व का अन्त हो गया था, और नवाब के सिपहसालार की आज्ञा से वह मुर्शिदाबाद में क़ैद कर लिये गये थे! परन्तु पलासी-युद्ध के अन्त में मीरजाफ़र की अनुकम्पा से हालवेल ने एक लाख रुपये का पुरस्कार पाया, और सारे नुक़सानों के हरजाने की भरपाई कराकर उन्होंने कलकत्ते के पास १२३१०) रुपये में

एक ज़िमींदारी ख़रीदी। सन् १७६० ई० में वे कुछ दिन तक कलकत्ते के गवर्नर रहे, और विलायत के अधिकारियों से लड़भिड़ कर उसी साल पदत्याग करने पर बाध्य हुए। अन्त में सन् १७६८ ई० में इङ्गलैंड में उनका शरीर-पात हुआ। जिस व्यक्ति ने मीरजाफ़र की कृपा से आशातीत पुरस्कार और गौरव तथा मान-सम्मान प्राप्त किया था, उस व्यक्ति को मीर जाफ़र के नाम के साथ सरासर झूठे कलंक जोड़ने और उसे बदनाम करने में ज़रा भी हकधक न हुई, तो भला—ऐसी दशा में कि जब वह कलकत्ते की लड़ाई के बाद अपना सर्वस्व खोकर क़ैद हो चुका था—उसने अपनी दुर्दशा का प्रतिकार करने के लिए अपने शत्रु सिराजुद्दौला के नाम से कालीकोठरी के हत्याकांड की इस निर्मूल कहानी की रचना नहीं की, इसका प्रमाण ही क्या? हालवेल ने अपनी सत्य-निष्ठा का जो परिचय दिया है, उसपर लक्ष्य रखते हुए क्या उनके सम्बन्ध में ऐसा अनुमान करना सर्वथा ही असंगत है?

सिराजुद्दौला का दुर्भाग्य! उसने घसीटीबेगम को अपनी माता के साथ बड़े सम्मानपूर्वक राजमहल में रक्खा, पलासी-युद्ध के अन्त में मीरजाफ़र की आज्ञा से ढाके में क़ैद हुआ, और इतिहास में उसकी यथोचित समालोचना न होने पर भी कल्पना-कुशल बङ्गाली कवियों ने अनायास ही सिराज के शिविर में घसीटीबेगम की मृत आत्मा को उपस्थित करके उसके मुख से सिराजुद्दौला को यह सुनवा दियाः—

"सिराज तोमार आमि पितृव्य-कामिनी,
हरि मम राज्य-धन, करि देशान्तर।
अनाहारे बधिलि ए विधवा दुःखिनी,

केमने राखिव धन, एवे चिन्ता कर।" *

अर्थात् :—

छीना, छुटाया घर-बार मेरा,
सम्पत्ति सारी, सब राज्य मेरा !
शोकाकुला थी विधवा बिचारी,
मैं मातृ-तुल्या हा हा ! तुम्हारी,
भूखों मुझे है मारा भला तो,
कैसे बचोगे सोचो ज़रा तो !

कवियों को इन किम्बदंतियों की जड़ कहां है? क्या उन्होंने उन कल्पना-कुशल लार्ड मेकाले के गद्य-लेख की छाया के आधार पर ही इस विचित्र स्वप्न-वृत्तान्त की रचना नहीं की है, जिनके कुछ वाक्यों का आशय है कि "भयावने अवसर की घोर विकरालता से भयभीत हो अपने सरदारों पर विश्वास न करता हुआ, अपने निकट किसी को आते हुए देखकर, तथा अकेले होने के कारण डरता हुआ अत्यन्त उद्विग्न और चिन्ताग्रस्त सिराजुद्दौला अपने डेरे में बैठा था। और किसी ग्रीक कवि के विचार से ऐसा जान पड़ता था कि मानो वह उन काली कोठरी की क़ैद में मरे हुए मृतकों के अभिशापों से पीड़ित हो रहा है, जिन्होंने उसे अपनी अन्तिम श्वासों के साथ कोसा था।"†

निदान उक्त कल्पित कहानियां रंगमंचों पर अभिनीत होकर अपने प्रभाव से कितने ही दर्शकों की तालियों को आकर्षित करतीं और सिराज के चरित्र को अत्यन्त भीषण बना डालती हैं।

---

* पलासी का युद्ध-काव्य (बंगला)।

† मेकालेज़ लार्ड क्लाइव।

# सत्तरहवां परिच्छेद।

## अङ्गरेज़ों का सर्वनाश।

अङ्गरेज़ सौदागरों के घमण्ड को चूर करना ही सिराजुद्दौला का एकमात्र उद्देश था। इस उद्देश के सिद्ध हो जाने पर वह फिर अधिक दिन कलकत्ते में नहीं ठहरा। दूसरी जुलाई को सब सेना-सामन्तों के साथ उसने राजधानी की ओर कूच किया। महाराज मानिकचन्द तीन हज़ार सिपाहियों की सहायता से कलकत्ते में शासन करने लगा। कलकत्ते से अङ्गरेज़ों की राज्य-शक्ति का लोप हो गया, बल्कि नगर का नाम तक बदल दिया गया। नवाब की आज्ञा से कलकत्ते का नाम "अली नगर" रक्खा गया।

प्रवास की थकावट दूर करने के लिए हुगली में एक पड़ाव नियत किया गया था। वहां आते ही आते जनता की ओर से स्वागत और अभ्यर्थनाओं की धूम से जल-स्थल प्रकम्पित हो उठे। उस ज़माने के नवाब और बादशाह जिस जगह छावनी डालते थे, वह स्थान बड़ी भीड़-भाड़ के कारण प्रभूत जन-संख्या का राजनगर सा बन जाता था। आसपास यथायोग्य स्थानों पर अमीर-उमरावों और वीर सामन्तों के डेरे, उसके बाहर चक्राकार में लगे हुए सैनिक सिपाहियों के हज़ारों तम्बू, उनके पार्श्व में अगणित दुकानों की क़तारें, सब के बीचोंबीच विचित्र बेल-बूटों से सजा हुआ, सुरचित कनक-पद्मों से जगमगाता नवाब का विशाल पटमंडप,

हाथी घोड़े और पैदलों की प्रभूत सेना, समय के पाबंद कार्यकुशल पहरेदार इत्यादि, इन समस्त जनों की भीड़भाड़ और धूमधाम से मुग़लों के प्रताप का परमोज्ज्वल चित्रपट स्मशान-भूमि को भी नन्दनवन की शोभा में परिणत कर डालता था। तेज़ तलवारों को कन्धों पर रक्खे हुए डेरों के द्वार द्वार पर संतरी लोग चुपचाप टहलते थे, सवेरे और शाम को राज-दरबार के गायक लोगों के तान-लय परिपूरित गान-वादन की मधुर ध्वनि वायु में व्याप्त होकर दूर दूर तक फैल जाती थी, अंधेरी काली निशा में भी प्रदीप्त प्रदीपों के उज्ज्वल प्रकाश से चारो दिशाएं चमक उठती थीं।

हुगली के पड़ाव में सिराजुद्दौला का दरबार बैठा। उस दरबार में डच और फ़रासीसी सौदागर गले में दुपट्टा डाल-कर अधीनता स्वीकार करने के लिए सम्मानपूर्वक नज़र-भेंट लेकर उपस्थित हुए। डच लोगों ने ४॥ लाख और फ़रासीसों ने ३॥ लाख रुपया नवाब की नज़र किया। इसके बाद अङ्गरेज़ों की बात छिड़ी। सिराजुद्दौला ने वाट्स और कलेट साहब को यह समझाकर मुक्ति-दान दे दिया कि हमारा उद्देश तुम लोगों को एकदम देश से बाहर निकाल देने का नहीं है। तदनन्तर वह हालवेल साहब के सम्बन्ध में पूछने लगा तो मालूम हुआ कि सेनापति मीरमदन ने इसके पहले ही नवाब के अनजान ही में हालवेल और उसके तीन साथियों को बन्दी करके मुर्शिदाबाद भेज दिया। अतएव उनके विषय में उस समय कोई आज्ञा प्रकाशित न की जा सकी। इस आशय की साधारण राजाज्ञा प्रकाशित करके, कि जो अङ्गरेज़ सौदागर पलता को भागने का मौक़ा न पाने के कारण इधर उधर छिप रहे हैं, वे सब केवल व्यापार

करने के लिए यदि कलकत्ते में रहने की इच्छा करें तो निर्विवाद बिना किसी रोकटोक के कलकत्ते में प्रवेश कर सकेंगे, सिराजुद्दौला ने हुगली से छावनी उठाकर राजधानी की ओर कूच किया। भागे हुए अङ्गरेज़ कलकत्ते में वापिस आये, और अपने मित्र उमीचन्द के औदार्य की बदौलत उन्हें आवश्यक अन्न-जल प्राप्त हुआ।

सिराजुद्दौला समारोह के सहित ११ जुलाई को राजधानी में आ पहुंचा। विजय के उत्सव का आनन्द-कोलाहल, नागरिकों का उच्छृङ्खल नृत्य-गान, मांगलिक बाजों की मधुर झनकार, तोपों की गरज का गम्भीर निनाद और नवाब के विजयी सेनिकों की सगर्व कूद-फांद से मुर्शिदाबाद प्रकम्पित हो उठा। इस विजयोत्सव के समय रत्नखचित पालकी पर सवार होकर अमीर-उमरावों के साथ बंगाल, बिहार और उड़ीसा का अद्वितीय अधीश्वर नवाब सिराजुद्दौला जब नगर-प्रदक्षिणा करके मोतीझील को जा रहा था, उस समय कारागार में स्थित हालवेल साहब पर उसकी नज़र जा पड़ी। एकाएक बाजे बन्द हो गये, पालकी से उतरकर सिराजुद्दौला स्वयम् पैदल ही कारागार में जा पहुंचा, और पार्श्व में खड़े हुए चोबदार से हालवेल और उसके तीनों साथियों की बेड़ी खुलवाकर उन्हें यथेच्छ स्थान पर चले जाने की आज्ञा दे पालकी पर सवार हुआ। हालवेल ने स्वयम् इसका वृत्तान्त विलियम डेविस को २८ फ़र्वरी सन् १७५७ के पत्र में लिखा था।

अङ्गरेज़ों को कलकत्ते में वापिस आने के लिए अब कोई रोकटोक न रही। पिछली बातों को भूलकर सभी अङ्गरेज़ धीरे धीरे कलकत्ते को लौटने लगे। परन्तु स्वभाव-दोष

के कारण कुछ ही दिनों के बाद फिर "जानवुलों" का सर्व-नाश उपस्थित हुआ ! एक शराबी अङ्गरेज़ सार्जन साहब ने एक दिन किसी निरपराध मुसलमान की हत्या कर डाली। तत्कालीन मुसलमानी राजदरबार में इस घटना से बड़ी गड़-बड़ी मच गई। राजा मानिकचन्द की आज्ञा से एक के अप-राध में सारे अङ्गरेज़ कलकत्ते से बाहर निकाल दिये गये ! दुर्भाग्य से उन्हें फिर कलकत्ते में स्थान नहीं मिला ! हेस्टि-ग्स इत्यादि कुछ कोठीवाल अंगरेज़ क़ासिमबाज़ार में रह गये। उनके अतिरिक्त और अङ्गरेज़ जो जहां थे, सब पलता के बन्दर पर आकर इकट्ठे होने लगे।

इतने दिनों के बाद अङ्गरेज़ों का प्रबल प्रताप एकाएक चूर्ण हो गया। क़ासिमबाज़ार गया, कलकत्ता गया, कलकत्ते के अङ्गरेज़ी क़िले पर राजा मानिकचंद की परमोच्च विजय-पताका बड़े गौरव के साथ फहराने लगी। अङ्गरेज़ लोग विचारे अनन्योपाय होकर भाग निकले, और पलता के भागे हुए जहाज़ पर आकर इकट्ठे होने लगे।

सब कुछ मिट गया ! तथापि यह शोचनीय कहानी अभी तक मदरास की अङ्गरेज़ी कौंसिल के कानों तक न पहुंच सकी ! बहुत दूर समुद्री किनारे पर पड़े हुए वहां के अङ्गरेज़ों ने पहले पहल १५ जुलाई को क़ासिमबाज़ार के घेरे का समा-चार पाया। परन्तु यह कोई घबड़ाने की बात न थी, क्योंकि बंगाल से प्रायः इस तरह की ख़बरें आया ही करती थीं, और अधिकांश ख़बरों के साथ ही यह भी सुना जाता था कि "सब झगड़ा रफ़ा दफ़ा हो गया है, यथोचित नज़र-भेंट दे दिलाकर सबको शान्त कर लिया है, वाणिज्य-व्यवसाय एक प्रकार से अच्छा ही चला जाता है।" अतएव क़ासिमबाज़ार

का सम्वाद पाकर भी मदरास की अङ्गरेज़ी कौंसिल ने कल-कत्तेवालों को केवल सेना से सहायता पहुंचाने के लिए मेजर किलप्याट्रिक के साथ २४० गोरा सिपाही भेज दिये, और दूसरे समाचार की प्रतीक्षा में निश्चिन्त समय बिताने लगे।

पांचवीं अगस्त को लड़ाई से भागे हुए मेनिंहम साहब मदरास के बन्दर पर पहुंचे। उनके मुंह से मदरास के अङ्गरेज़ों ने कलकत्ते की दशा, सिराजुद्दौला का आक्रमण और अङ्गरेज़ों का सर्वनाश इत्यादि, सब बातें सुनीं! इस हृदय-विदारक समाचार को सुनकर उनके शिर पर मानो वज्र सा टूट पड़ा। सब एकाएक हतबुद्धि हो गये! और सभी एक-वाक्य हो कहने लगे कि "हाय हाय! यह क्या हुआ? हमारी इतने दिनों की समस्त आशाओं का एक ही फूंक में सर्वनाश हो गया!"

दुःख का प्रथम उद्गार शान्त होने पर अङ्गरेज़ों ने सब लोगों को बुलाकर एक कमेटी की। जो जहां थे, सब आकर उसमें शरीक हुए, और परामर्श करने लगे। कोई कोई तो ज्वालामुखी पर्वत की अग्निवर्षा के समान बड़े वीर वचनों में गरजने लगे, कोई कोई बदला लेने के लिए खूनख़राबा मचा देने के हेतु वीर-प्रतिज्ञा करने की उत्तेजना देने लगे; परन्तु उस समय अङ्गरेज़ों का बल नितान्त क्षीण हो गया था। फ़रासीसों से युद्ध छिड़ने की आशंका के कारण निरन्तर चिंता से जर्जरित हो रहे थे, इसलिए वे सहसा अपना कर्तव्य निश्चित न कर सके।

इस ओर मेजर किलप्याट्रिक अपना जहाज़ लेकर पलता बन्दर पर आ पहुंचे, और भागे हुए अङ्गरेज़ी जहाज़ का पता लगाया। वे बिचारे सिर्फ़ २४० गोरे सिपाहियों से

क्या कर सकते थे। सबको यथाशक्ति आशा और उत्साह दे दिलाकर अपनी रक्षा के लिए उन्होंने भी पलता बन्दर ही पर जहाज़ का लंगर डाल दिया। भागे हुए अङ्गरेज़ उस समय तक ज़िन्दा थे, परन्तु प्रायः मृतःप्राय हो रहे थे! अधिकांश असाध्य रोगों से पीड़ित थे, जो स्वस्थ और सबल थे वे भी विदीर्ण-हृदय और मलिन-मुख हो चाहभरी आंखों से समुद्र की उत्ताल तरंगों की ओर टकटकी लगाये—कब मदरास से फ़ौज़ आये—इसी प्रतीक्षा की चिन्ता में जर्जरित हो रहे थे।

"विनाशकाले विपरीत बुद्धिः" दुर्दशा के दिनों में दुर्मति ने घेरकर अङ्गरेज़ों की दैन्यदशा को दूना बढ़ा दिया। हमारी यह शोचनीय दुर्गति क्योंकर हुई, किसके दोष से हुई, इसी बात को लेकर उनमें परस्पर बड़ा झगड़ा उठा। नवीन विचारों के अङ्गरेज़ नौजवान कलकत्ते की अङ्गरेज़ी कौंसिल ही पर सारे अपराध आरोपित करने लगे। कौंसिल के सदस्यों ने आपस में एक दूसरे को दोषी ठहराने की भरसक चेष्टा की। बस, इसी बात पर अङ्गरेज़ों में परस्पर घोर वितण्डावाद चलने लगा। बातों ही बातों में एक भाई दूसरे भाई से पृथक् होने लगा, वैमनस्य बढ़ चला, पारस्परिक समवेदना का अभाव होता गया! अंत में अधिकांश यह कहने लगे कि "रिश्वत के लोभ में आकर जिन्होंने कृष्णवल्लभ को कलकत्ते में आश्रय दिया, और कम्पनी के नाम के परवाने बेच अन्यों को बिना शुल्क वाणिज्य करने का अधिकार देकर धन कमाया, वेही इन सब अनर्थों के मूल कारण हैं।"* परवर्ती इतिहास-लेखकों ने बड़े तर्क-वितर्कों के पश्चात् लिखा है कि ये सब

* अर्मी, जिल्द नं० २।

बातें निरी अमूलक हैं। वास्तव में इतने दिनों के बाद अब इन सब मामलों के सत्यासत्य का निर्णय करना सहज नहीं है, परन्तु जो इन सब बातों की आंखों देखी गवाही दे सकते थे, वे स्वयम् लिखते हैं कि अङ्गरेज़ी दरबार के सदस्यों के व्यवहार ही से नवाब सिराजुद्दौला इतना असंतुष्ट और अप्रसन्न हुआ था। उन लोगों की आंखें देखी गवाही सच्ची मानी जायगी, अथवा परवर्ती इतिहास-लेखकों की बातें ही निर्भ्रान्त समझकर स्वीकार कर ली जायँगी? तत्कालीन इतिहास-लेखक अर्मी लिखता है कि "युवकों के अभियोगों पर ध्यान देना व्यर्थ है। विविध षड़यंत्रों से वृद्धों को पदच्युत करने के लिए ये लोग प्रायः अमूलक अभियोगों की सृष्टि करते हैं।"*

पलता को भाग जाने से किसी तरह प्राण तो बच गये, परन्तु अङ्गरेज़ों की दुर्दशा का ठिकाना न रहा। प्रचंड गर्मी का मौसम, तिसपर निराश्रय! वैसे ही रोग-ग्रस्त थे, फिर पलता जैसा अस्वास्थ्यकर स्थान! योंही पीड़ित थे, तिसपर खाद्य-पदार्थों का अभाव! जहाज़ का भंडार बिलकुल सूना, पास रुपया नहीं, न क़रीब में कोई हाट-बाज़ार! मानिकचंद के डर के मारे इच्छा रहते भी कोई दुकानदार जहाज़ के पास तक जाने की हिम्मत न करता था। यदि और कुछ दिन अङ्गरेज़ों की इस दशा का प्रतिकार न होता तो एक एक करके सभी को अपने शरीर की सूखी ठठरियां गंगा में विसर्जित करनी पड़तीं! मानिकचंद के डर से सभी सहमे हुए थे। केवल फ़रासीस, डच और अङ्गरेज़ों के विपत्ति-बन्धु काले बंगाली वणिक छुपछुपाकर जो खाने पीने का सामान भेजने

---

* अर्मी, जिल्द नं० २।

लगे, उसीसे ज्यों त्यों करके मुसीबत के मारे अङ्गरेज़ों के दिन गुज़रने लगे।

चतुर मनुष्यों को खड़े होने को स्थान मिल जाना ही पर्याप्त है, बाद में वे अपने चातुर्य-कौशल से सहज ही में बैठने का स्थान प्राप्त कर सकते हैं। अङ्गरेज़ों का भी यही हाल हुआ। यदि सिराजुद्दौला फ़ौज के साथ पलता तक चला आता तो शायद अङ्गरेज़ों को चोर की तरह भागने का रास्ता न मिलता। परन्तु सिराजुद्दौला ने अङ्गरेज़ों के भगाने का कोई उपाय न करके केवल उनके उद्धत व्यवहार को दबा देना ही काफ़ी समझा। इसी कारण से अङ्गरेज़ों को भागकर पलता में ठहरने और दम लेने का मौक़ा मिल गया। परन्तु अङ्गरेज़ इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए। अर्मी ने लिखा है कि "अङ्गरेज़ों को देश से बाहर निकाल देना ही सिराजुद्दौला का मुख्य उद्देश था, केवल अपने चित्त की कमज़ोरी के कारण ही वह अङ्गरेज़ों के पीछे धावा न कर सका।" परन्तु यह बात सरासर मिथ्या है। सिराजुद्दौला यदि चाहता, तो उसे अङ्गरेज़ों को यहां से बाहर करने में क्षणमात्र भी देर न लगती, और हेस्टिंग्स तथा डाक्टर फोर्थ इत्यादि अङ्गरेज़ कोठीवाल स्वच्छन्दतापूर्वक सकुशल क़ासिम-बाजार में ठहरने का मौक़ा कदापि न पाते।

अङ्गरेज़ लोग सौ बरस से व्यापार करते चले आरहे थे। उन्होंने सघन जंगल को काटकर उसके स्थान पर कलकत्ते का दिव्य नगर बसाया था, मराठा-खाई खोदकर उन्होंने कितने ही लोगों के जान-माल की रक्षा की थी; अतएव, इसी स्नेह-सम्बन्ध, अथवा सरल-स्वभाव, चिरकृतज्ञ बंगालियों की परोप-

कारिता के कारण इस देश के अनेक गण्यमान्य और प्रतिष्ठित महानुभाव अङ्गरेज़ों की दुःख-दुर्दशा को दूर करने के लिए अग्रसर हुए। रेवरेंड लांग ने अपने इतिहास में लिखा है कि "कुछ सामग्री नवकिशुन ने अपने प्राण हथेली पर रखकर अङ्गरेज़ों को दी थी, क्योंकि नवाब की आज्ञा थी कि जो शख्स अङ्गरेज़ों को कुछ सामान देगा, उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। इस उपकार के कारण वारन् हेस्टिंग्स ने नवकिशुन को अपना मुंशी बना लिया, और बाद को उसके परिवार की बड़ी उन्नति हुई।" औरों की बात तो अलग रही, जो उमीचंद अङ्गरेज़ बन्धुओं के अकृत्रिम प्रेम-सौहार्द से अपना सर्वस्व खोकर शोकग्रस्त और मर्मपीड़ित हो पथ का भिखारी बन चुका था, वह भी अङ्गरेज़ों के बुरे दिनों में उनकी दुर्दशा पर आंसू बहाता हुआ नवाब के दरबार में उनके उद्धार के लिए बहुत कुछ अनुनय-विनय करने लगा! हेस्टिंग्स और डाक्टर फोर्थ क़ासिमबाज़ार में रहते हुए गुप्त रूप से नवाब के वज़ीरों को अपनाने की चेष्टा करने लगे। जो अरमानी सौदागर व्यापार के लिए समुद्री मार्ग से आते जाते थे वे भी राजधानी के गुप्त भेद अङ्गरेज़ों को बताने के लिए सहमत हो गये। इन सब युक्तियों से भविष्य में अङ्गरेज़ों की दुर्दशा के अंत का सदुपाय होने लगा। देशवासियों के दिल में यह बात जम गई कि थोड़े ही समय के भीतर अङ्गरेज़ लोग पुनः नवाब के दरबार से वाणिज्य-व्यापार की सनद प्राप्त करेंगे, इसलिए वे दिनोंदिन अङ्गरेज़ों से मेलजोल बढ़ाने लगे।

मेजर किलप्यािट्रक ने फलता में आकर जब इन शुभ लक्षणों पर दृष्टिपात किया तो उन्हें आशा हुई, और वे समय पाकर मानिकचंद को अपने हाथ में कर लेने की तदबीरें

करने एवं नवाब की शुभदृष्टि को आकर्षित करने के लिए विनम्र और विनीत-भाव से आवेदनपत्र लिखने लगे! राजा मानिकचन्द बड़ा बुद्धिमान् था। इतिहास में उसे चतुर-चूड़ामणि की उपाधि दी गई है। वह हर वक़्त यह देखता रहता था कि नवाब के दरबार की धारा किस वक़्त किस ओर को बहती है। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि वह धारा धीरे धीरे अङ्गरेज़ों के अनुकूल प्रवाहित हो रही है तो वह भी अङ्गरेज़ों से मित्रता संस्थापित करने के लिए तैयार होगया। अङ्गरेज़ों ने नवाब के पास भेजने के लिए एक आवेदनपत्र लिखा। इस आवेदनपत्र में कालीकोठरीवाले मामले के विषय में किसी प्रकार का आर्तनाद नहीं किया गया था, बल्कि विविध विधानों से उसमें केवल इसी बात का उल्लेख किया गया था कि फिर से हमें वाणिज्य करने का अधिकार प्रदान किया जाय। और इसके लिए विशेष रूप से प्रार्थना की गई कि वाणिज्य की सनद न मिलने के कारण अब अधिक दिन हमें अन्नाभाव से क्लेश न भोगने पड़ें। डच गवर्नर विसडम साहब के द्वारा यह आवेदनपत्र नवाब के दरबार में भेजने का प्रबन्ध किया गया।

आशा पाकर अङ्गरेज़ कोठीवालों ने जहाज़ के ऊपर ही एक कमेटी का अधिवेशन किया। आनरैबुल राजर ड्रेक साहब इस कमेटी के सभापति हुए। वाट्स, हालवेल और मेजर किलप्यात्रिक ने सदस्यों का स्थान ग्रहण किया।

२२ अगस्तवाली बैठक में सभापति महोदय ने यह कह कर सबको आश्वासन दिया कि अब डर की कोई बात नहीं, बहुत जल्द मदरास से गोरों की पलटन आरही है। परन्तु उसी दिन यह ख़बर मिली कि डच लोग अङ्गरेज़ों का आवेदन-

पत्र नवाब के दरबार में पहुंचाने के लिए पूर्णतया तैयार नहीं हैं। अतएव पुनः कमेटी में इसपर विचार होने लगा कि किस प्रकार नवाब के पास आवेदनपत्र पहुंचाया जा सकता है। अकस्मात् उसी दिन ख़्वाजा पिट्रू और इब्राहीम जेकवस नामक दो अरमानी सौदागर कलकत्ते से पलता में पहुंचे। वे अङ्गरेज़ों के शुभचिंतक उमीचन्द के पास से एक गुप्त चिट्ठी लाये थे। सब के सामने यह चिट्ठी पढ़ी गई। हा, उमीचन्द! इस पत्र में उमीचंद ने लिखा था कि "सदा की भांति मैं आज भी उसी भाव से आप लोगों के कल्याण-साधन के लिए प्रस्तुत हूं। यदि आप राजा राजवल्लभ, राजा मानिकचन्द, ख़्वाजा वाजिद तथा जगत्-सेठ के साथ गुप्तरूप से पत्र-व्यवहार करना चाहें तो मैं तुम्हारे पत्रों को भी यथास्थान पहुंचाकर जबाब मंगा दूंगा।" जिन हालवेल साहब तथा अन्य अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने इतिहास लिखते समय उमीचन्द को, अत्यन्त कुटिल-हृदय, परम पाखण्डी, लोभी और नर-पिशाच आदि कुवाक्यों से, संसार के निकट परिचित करने के लिए प्रबल आग्रह प्रकट किया है, उन्होंने विपत्ति पड़ने पर कभी उमीचंद में अविश्वास नहीं किया था। इतिहास में इन सब बातों की यथोचित समालोचना न होने के कारण एक बंगाली कवि लिखता है :—

"येन भीषण तक्षक—
आछे, पापी उमीचन्द फणा आस्फालिया" *

---

* बंगला, "पलासी-युद्धकाव्य"। भयानक सर्प की तरह पापी उमीचंद फन उठाकर—

निदान उमीचन्द की सहायता से राजा मानिकचन्द सहज ही हाथ में आ गया। जिस मानिकचन्द ने एक दिन अङ्गरेज़ों का सर्वनाश करने में अपरिमित उत्साह दिखाया था, उसका वह उत्साह इस युक्ति से एकदम ठण्डा पड़ गया। पांचवीं सितम्बर की बैठक में स्वयं मानिकचंद का एक पत्र अङ्गरेज़ी कमेटी के सामने खोला गया। उस पत्र से अङ्गरेज़ों को पुनः साहसहुआ। राजा मानिकचन्द की सहायता और सहानुभूति का परिचय शीघ्रही मिल गया, उसकी आज्ञा से पलता में बाज़ार लग जाने पर अन्न-कष्ट दूर हो गया। मानिकचंद ने अपने पत्र में बहुत ही शिष्टतापूर्वक अङ्गरेज़ों को पूरी मदद देने का विश्वास दिलाया, और एक नाव इस आज्ञापत्र के साथ भेजी कि पलता में बाज़ार खोल दिया जाय, जिससे अङ्गरेज़ों को खाने पीने का सब सामान मिलने में सुभीता हो।

इतिहास में इस रहस्य की कोई मीमांसा नहीं की गई कि राजा मानिकचंद क्यों इतनी जल्दी अङ्गरेज़ों के हाथ में आ गया। मानिकचन्द हवा का रुख़ बदलते ही पाल का रुख़ बदलने में बड़ा उस्ताद था, समय के अनुसार विचार बदलने में वह पूरा प्रवीण था। सिराज ने जिस समय ससैन्य कलकत्ते को युद्ध-यात्रा की, और जगत्-सेठ एवं ख़्वाजा वाजिद विनम्र प्रार्थनाएं करके भी उसे अपने इरादे से तनिक भी विचलित न कर सके, उस समय मानिकचन्द ने नवाब के निकट अपनी प्रतिष्ठा स्थिर रखने की आशा से अङ्गरेज़ों के दमन के लिए अपूर्व उत्साह और असीम वीरता प्रदर्शित करने में कोई कसर न की। कलकत्ते पर विजय प्राप्त हुई, नगर का नाम तक मिट गया, उस विशाल इन्द्रपुरी से अंगरेज़

बाहर निकाले गये। मानिकचन्द ने समझा कि अब बिना युद्ध के अंगरेज़ों का अलीनगर में पैर रखना असम्भव है। परन्तु वह यह जानता था कि विपत्ति में पड़कर ब्रिटिश सिंह कुछ दिन के लिए भाग जाने पर बाध्य होते हुए भी अवसर पाकर फिर वीरता के जोश में कलकत्ते पर टूट पड़ेंगे, और उस आक्रमण में मेरा ही सर्वनाश होगा। इसीलिए वह मूलाजोड़ नामक स्थान पर एक नया क़िला बनवाकर माल-असबाब तथा स्त्री-पुत्रों को वहीं सुरक्षित अवस्था में रखने का प्रबन्ध कर रहा था। परन्तु इस बीच में हवा बदल गई! सिराजुद्दौला की नीति ने शान्ति का अवलम्बन किया, अङ्गरेज़ों के पुनः कलकत्ते लौटने की आशा का बीज अंकुरित होने लगा। इसलिए उनके करुण-क्रन्दन की उपेक्षा करना मानिकचंद को बुद्धिमानी का कार्य न समझ पड़ा। उमीचंद के अनुरोध करने पर मानिकचंद ने अंगरेज़ों से मेल-मिलाप बढ़ाने के लिए तत्काल ही एक पत्र लिख भेजा।

अब नवाब के दरबार में अंगरेज़ों के कातर निवेदनों से सुफल फलने की सम्भावना हुई। इसी दर्मियान में क़ासिम-बाज़ार से वारन् हेस्टिंग के पत्र-द्वारा अचानक यह ख़बर मिली कि "मुर्शिदाबाद में बड़ा गड़बड़ मच रहा है! बादशाह ने पुर्निया के नवाब शौकतजंग के पास बंगाल, बिहार और उड़ीसा की नवाबी का परवाना भेज दिया है। अतएव उसके अनुसार लड़ाई के लिए कूच का बन्दोबस्त होने लगा है। शौकतजंग के युद्ध-क्षेत्र में अवतीर्ण होने पर अधिकांश लोग उसके पक्ष में तलवार उठायेंगे। अब वह सिराजुद्दौला नहीं, उसका प्रबल गर्व चूर होना ही चाहता है;—उसका रत्न-जटित सिंहासन डगमगा रहा है।"

इस सूचना के मिलते ही अङ्गरेज़ों के इरादे बिलकुल बदल गये। सब कहने लगे, बस अब क्या? कसो कमर, तैयार हो जाओ। अङ्गरेज़ी कौंसिल ने चट ऐसा ही किया। शौकतजंग के साथ मेल करने और सिराजुद्दौला के सर्वनाश के लिए उसे उत्साहित करने के लिए "नज़र" भेजकर पत्र लिखने का निश्चय किया गया।

सिराजुद्दौला यह कुछ भी न जान सका। उसके पास पूर्व की भांति ही अनुनय-विनय और खुशामद-बरामद की चिट्ठियां चलती रहीं। यदि उसे इस राजविद्रोह का रंचमात्र भी पता लग जाता तो शायद पलता बन्दर को अङ्गरेज़ों के समाधिक्षेत्र के रूप में परिणत हो जाने में तनिक भी देर न लगती।

इस ओर मदरास वाले अङ्गरेज़ दो महीने में भी अपने वाद-विवाद को समाप्त न कर सके। उनमें इस बात पर परस्पर बड़ा मतभेद उठा कि हमारी फ़ौज बहुत कम है, फिर, हमारा सदा का वैरी फ्रांस शायद शीघ्र ही भारतवर्ष पर आक्रमण करेगा; अतएव ऐसी नाज़ुक दशा में कलकत्ते को फ़ौज भेजना उचित है या नहीं। इस वाद-विवाद में बड़ी देर लग गई। अन्त में यह निश्चय हुआ कि अन्यान्य प्रदेशों के भाग्य में जो कुछ भी हो, कलकत्ते पर पुनः अधिकार प्राप्त कर लेना ही सब से पहला कर्त्तव्य है। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक अर्मी साहब उन दिनों मदरास-कौंसिल के सदस्य थे। उन्होंने इतिहास में इस वाद-विवाद का विस्तृत वर्णन किया है। अन्त में, कलकत्ते पर पुनः अधिकार कर लेने का निश्चय तो हो गया, परन्तु यह प्रश्न सहज ही हल न हो सका कि सेनापति किसे बनाया जाय?

पिगट साहब उस समय मद्रास के गवर्नर थे पद-गौरव में वही सर्वश्रेष्ठ थे। परन्तु युद्धकला से वे सर्वथा अनभिज्ञ थे। कर्नल अलड्गारक्रन सबसे बड़े सेनानायक थे, किन्तु बंगाल के लड़ाई-झगड़ों से वे भी परिचित न थे। कर्नल लारेन्स योग्य थे, जानकार थे, सभी बातों में परिपक्व थे, परन्तु वे बिचारे श्वास-रोग से जर्जरित हो रहे थे! बंगाल का जल-वायु उनके अनुकूल न होता। इस प्रकार जब एक एक करके सभी सेनापतियों ने जाने से पीछे पग हटाया तो अन्त में यह भार कर्नल क्लाइव पर डाला गया। क्लाइव के पक्षपातियों ने कहा है कि अङ्गरेज़ों के भाग्य के साथ क्लाइव का संयोग मानो मणिकांचन-संयोग था।

कर्नल क्लाइव का नाम भारतवर्ष में चिरस्मरणीय है। कलकत्ते के गवर्नमेंट हौस में गर्वोन्नत और वीरता-व्यंजक उनका जो विशाल चित्रपट विराज रहा है उसके एक एक बिन्दु से मानो आज भी उनका दृढ़ प्रतिज्ञा-व्यंजक तीव्र तेज जाज्वल्यमान हो रहा है। कितने ही सुलेखक उसकी वीरता का यशगान करके साहित्य-संसार में अमर हो गये हैं। उन्होंने कहा है—"कर्नल क्लाइव "आजन्म सैनिक" था! इतना साहस, ऐसी वीरता, ऐसी प्रतिभा अन्य किसी मनुष्य के जीवन में भी विकसित हुई या नहीं, यह संदिग्ध है।"

मदरास-दरबार ने यह निश्चय कर दिया था कि कप्तान क्लाइव कलकत्ते के अङ्गरेज़ी दरबार की आज्ञा के अधीन न होंगे, बल्कि वे स्वयमेव स्वाधीन-भाव से सारा काम पूरा करके सेना के सहित मदरास लौट आयेंगे। इङ्गलैंड-नरेश की जल-सेना के अध्यक्ष आडमिरल वाट्सन को भी क्लाइव के साथ भेजने का निश्चय किया गया।

भारत-भाग्य-विधाता महावीर क्लाइव और वाट्सन ने पांच सैनिक जहाज़ों के साथ १६वीं अक्टूबर को मद्रास का किनारा छोड़कर फ़ौज के साथ युद्ध-यात्रा की। कम्पनी के पांच जहाज़ असबाब लेकर चले। ९०० गोरे और १५०० काले सिपाही बड़े गर्व के साथ बंग-उपसागर को विकम्पित करके ब्रिटिश सामरिक बाजों के ऊंचे निनादों की ताल पर क़दम रखते हुए जहाज़ों पर सवार हो कलकत्ते की ओर अग्रसर होने लगे। जहांतक नज़र पहुंची, किनारे पर खड़े हुए अङ्गरेज़ स्त्री-पुरुषों ने रूमाल उड़ा उड़ाकर सैनिकों का उत्साह बढ़ाने में कोई कसर न की।

एक बंगाली कवि ने श्रुति-मधुर संस्कृत कविता में नवीन भारत के इतिहास का संकलन किया है। काव्य-रस-माधुर्य की प्रखरता बढ़ाने के हेतु वह एक स्थान पर लिखता है:—

"अनुकूलोऽहमवद्वायुः प्रयाणे क्लाइवस्यहि।"

परन्तु वायु अनुकूल न रह सका; हवा के ज़ोर से जहाज़ इधर उधर विक्षिप्त होने लगे। आडमिरल पोकक २५० गोरों के साथ "कम्बरलेण्ड" नामक बड़े जहाज़ पर सवार हुए थे, और "मारलबरा" नाम्नी कम्पनी के एक दूसरे जहाज़ में अधिकांश हथियार और गोले इत्यादि सामान भरा हुआ था। ये दो बड़े उपयोगी जहाज़ न जाने किधर बह गये, कुछ पता ही न चला! शेष जहाज़ वायु की प्रतिकूलता के कष्ट झेलते हुए अन्त में बालेश्वर बन्दर के पास से धीरे धीरे कलकत्ते की ओर बढ़ने लगे।

---

# अठारहवां परिच्छेद ।

## सिराज या शौकतजंग,--किसे चाहते हो ?

अङ्गरेज़ों की असाधारण उद्योग-शीलता से इस देश के निवासियों की यह धारणा हो गई थी कि उन्हें नीचा दिखाना कदाचित् मनुष्य के लिए दुःसाध्य है । दक्षिण में ब्रिटिश संगीनों से फ़रासीसी सेना बारम्बार परास्त हो रही थी, जिसकी ख़बरों को सुनकर लोगों में अङ्गरेज़ों के प्रबल प्रताप का चर्चा दिनोंदिन फैलता जा रहा था । ऐसे समय में अपने बाहुबल से उसी अजेय महाशक्ति को पलमात्र में चूर्ण-विचूर्ण करके बड़े समारोह के साथ सिराजुद्दौला के राज-धानी में वापिस आने पर सारे देश में शोर मच गया । जो लोग अपना पेट भरने के लिए कंगाल दरिद्रों के मुंह का ग्रास छीनने में तनिक भी नहीं लजाते थे; उन सभी स्वार्थी अमीर-उमरावों में एकदम सन्नाटा छा गया । राष्ट्र-विप्लव की आशा केवल शौकतजंग पर अवलम्बित रह गई, परन्तु अब यह कहां सम्भावना थी कि वह सिराजुद्दौला के साथ युद्ध ठानने के लिए तैयार हो । अतएव सिराजुद्दौला बेखटके राज्य-कार्य में योग देने का प्रबन्ध करने लगा ।

भाग्यवश सिराजुद्दौला को कभी निश्चिन्त रहने का अवसर नहीं मिला । एक महीना भी शान्तिपूर्वक नहीं बीता था कि इस तरह की अफ़वाह देश में चारो ओर फैलने लगी कि पुर्निया का शासक शौकतजंग ससैन्य मुर्शिदाबाद पर

आक्रमण करने के लिए आरहा है। गुप्तचरों के द्वारा शीघ्र ही सिराजुद्दौला को भी सम्वाद मिला कि यह बात ठीक है। दिल्ली के बादशाह ने बहुत दिनों से राजकर का रुपया न वसूल होने के कारण अन्त में मंत्रियों के परामर्श से शाहज़ादे को बंगाल, बिहार और उड़ीसे का सूबेदार नियुक्त किया है। अतएव इसी आज्ञा के अनुसार शाहज़ादा फ़ौज लेकर पुर्निया की ओर बढ़ रहा है। शाहज़ादा और शौकतजंग के मिलकर राजधानी पर आक्रमण करने और सिराजुद्दौला को गद्दी से उतार देने पर शाहज़ादा के नाम से शौकतजंग राज्य का शासन करेगा। इस रण-सम्वाद को सिराजुद्दौला गुप्त न रख सका, और वह भी सिंहासन की रक्षा के लिए प्रयत्न-पूर्वक सैन्य संग्रह करने लगा।

सिराजुद्दौला जानता था कि मेरे मंत्रियों के षड़यंत्रों ही से इस नये नाटक का सूत्रपात हुआ है। जो लोग उस का सर्वनाश करके शौकतजंग को गद्दी पर बैठा देने के लिए लालायित हो रहे थे, वे कैसे स्वदेश-हितैषी, परिणाम-दर्शी और वीर पुरुष थे, सो भी सिराजुद्दौला अच्छी तरह जानता था। अतएव अब उसने किसी की बात पर विश्वास नहीं किया। उसने सोचा कि शौकतजंग तो दुराचारी नव-युवक है, उसके साथी सलाही सब स्वार्थी और चाटुकार हैं। इसलिए उसको हराना कोई कठिन काम नहीं। परन्तु शौकत-जंग के साथ यदि शाहज़ादा मिल गया है तो इन दो सम्मि-लित शक्तियों को पराजित करना वास्तव में असाध्य हो जायगा। यद्यपि दिल्ली का वह प्रबल प्रताप अब भस्मीभूत हो चुका है, तथापि बादशाह के नाम की ऐन्द्रजालिक शक्ति का अभी तक नाश नहीं हुआ है। बादशाह के नाम की दुहाई

देकर शाहज़ादा जब युद्ध-क्षेत्र में खड़ा होगा तो इस देश के सभी प्रतिष्ठित पुरुष उसी के पक्ष में जा मिलेंगे। और शायद मेरे ही पक्ष के लोग—यही स्वार्थी अमीर-उमराव—युद्ध शुरू होने के पहले ही मुझे पकड़कर बादशाह के पास भेज देंगे। अतएव सिराजुद्दौला ने मौक़ा हाथ से न देकर शाहज़ादे के आने से पहले ही पुर्निया के विद्रोह को मिटाने का निश्चय किया।

शौकतजंग राजविद्रोही था, तथापि वह नवाब का परम आत्मीय था। अलीवर्दी का वंशज होने के कारण लोक और समाज में उसकी प्रतिष्ठा थी। अतएव सहसा उसके साथ युद्ध-घोषणा कर देने से लोग तरह तरह के षड्यंत्रों की रचना करके मुझे अपना मनोरथ पूरा करने का अवसर नहीं देंगे, यह सोचकर सिराजुद्दौला ने एक दूसरा ही कौशल-जाल फैलाया।

पुर्निया-प्रदेश के वीरनगर नामक स्थान में एक फ़ौजदार नियुक्त रहता था। उस पद को रिक्त देखकर सिराजुद्दौला ने रासविहारी नामक एक अनुगत व्यक्ति को उस स्थान पर नियुक्त करके शौकतजंग को एक पत्र लिख भेजा। सिराज ने जो चाहा था, वही हुआ। पत्र को पढ़कर शौकतजंग ने उत्तर लिखा कि "हम बादशाह की सनद पाकर बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के नवाब हुए हैं। तुम हमारे परम आत्मीय हो। इसलिए हम तुम्हारे प्राण नहीं लेना चाहते। यदि पूर्वीय बंगाल के किसी निर्जन स्थान में भागकर तुम अपने प्राण बचाना चाहो तो हम उसमें बाधा नहीं डालेंगे। बल्कि तुम्हारे लिए हमें ऐसी सुव्यवस्था कर देना भी स्वीकार है, जिससे तुम्हें अन्न-वस्त्र का कष्ट न होने पाये। बस, देर

मत करना, इस पत्र को पढ़ते ही राजधानी छोड़कर भाग जाओ। परन्तु ख़बरदार ! ख़ज़ाने के एक पैसे में हाथ न लगाना। जितनी जल्दी हो सके, इस पत्र का प्रत्युत्तर लिख भेजो। अब समय नहीं है। घोड़े पर ज़ीन कसा हुआ है, पांव रकाब में डाल चुका हूं। केवल तुम्हारे जवाब के आजाने-भर की देर है।"

यथासमय सिराजुद्दौला ने यह उच्छृङ्खलता-पूर्ण पत्र दरबार के अमीर-उमरावों को पढ़ सुनाया। उसे आशा थी कि इस पत्र को सुनकर अब कोई लड़ाई के लिए कूच करने के निश्चय में बाधा न डालेगा, और बाग़ी शौकतजंग के पक्ष का समर्थन करने के लिए किसी को वाद-विवाद करने का भी साहस न होगा। परन्तु ऐसा नहीं हुआ, बात छिड़ते ही प्रतिवाद आरम्भ हो गया। मंत्रियों ने सोचा कि शाहज़ादे के आने में अभी बहुत देर है। उसके स्वयम् न आ जाने तक प्रकट-रूप से शौकतजंग के पक्ष का अवलम्बन विडम्बनामात्र है। इस बीच में यदि सिराजुद्दौला शौकतजंग से युद्ध ठान देगा तो शौकतजंग के सारे षड़यन्त्रों का नाश हो जायगा। निदान उन्होंने प्रतिवाद की आवाज़ें उठाकर सिराजुद्दौला को नाराज़ कर डाला। जगत्-सेठ सब का प्रतिनिधि बनकर कहने लगा कि "दिल्ली का बादशाह ही बंगाल, बिहार और उड़ीसे का स्वामी है, उसी की सनद के बल पर सूबेदार शासन का कार्य करता है। आपके पास सनद नहीं है, शौकतजंग ने सनद प्राप्त की है। ऐसी दशा में कौन राजा और कौन प्रजा, इसका अधिक निर्णय नहीं हो सकता।" सिराजुद्दौला ने देखा कि इस विद्रोह ने टेढ़े मार्ग का अवलम्बन किया है। उसने गुस्से में आकर जगत्-सेठ को जेलख़ाने में

बन्द करने की आज्ञा देकर सभा भंग कर दी। किसी किसी ने यह ख़बर उड़ाई कि क्रोध में लालताल होकर नवाब ने जगत्-सेठ के गाल पर तमाचा मार दिया, इसीसे एकाएक सभा भंग हो गई। अस्तु। अब सिराजुद्दौला को कोई सन्देह न रहा। उसने फ़ौज के साथ पुर्निया पर आक्रमण करने के लिए कूच किया।

शाहज़ादे के आने से पहले ही पुर्निया पर हमला करना पड़ा। पश्चिम और दक्षिण की ओर से एक ही साथ आक्रमण करना आवश्यक था। उत्तर की ओर हिमालय पहाड़ होने के कारण आक्रमण करना भी असम्भव था और भागना भी दुःसाध्य था। सिराजुद्दौला ने तीन फ़ौजों के साथ तीनों ओर से पुर्निया पर आक्रमण करने का निश्चय किया। किन्तु रणविज्ञ और विश्वस्त तीन सेनापति कहां थे! जगत्-सेठ को क़ैद कर देने पर मीरजाफ़र ने सर्वसाधारण के सामने तलवार पर हाथ रखकर प्रतिज्ञा की कि मैं अब सिराजुद्दौला के पक्ष में हथियार नहीं उठाऊंगा। बढ़ती हुई बग़ावत की इस स्पष्ट सूचना से सिराजुद्दौला घबरा गया, और अपना कर्त्तव्य निश्चित न कर सका। अंत में जगत्-सेठको जेल से मुक्त करना पड़ा, मीरजाफ़र के कूट व्यवहारों को भली प्रकार जानते हुए भी उसे साथ रखना पड़ा, और राजा मानिकचंद को कलकत्ते में रखकर अन्यान्य दल-बल के साथ पुर्निया को कूच करना पड़ा। एक दल स्वयम् नवाब के साथ राजमहल के रास्ते से धावित हुआ। मीरजाफ़र को इसी दल का सेनापति बनाकर नवाब ने उसे अपनी देखरेख में रक्खा। एक दल को, जो राजा रामनरायन की अधीनता में था, पटना के पश्चिमी प्रदेश पर आक्रमण करके शाहज़ादे को आगे बढ़ने से रोकने

की आज्ञा दी गई, और महाराज मोहनलाल की तहत में एक दल को, नावों के द्वारा पद्मा को पार करके, स्थल-मार्ग से पुर्निया पर आक्रमण करने का भार सौंपा गया।

शौकतजंग बड़ा ऐयाश, घमंडी और निकम्मा नौजवान था। उसने किसी के परामर्श पर ध्यान न दे स्वयम् ही सेना का सिपहसालार बनकर नवाबगंज नामक स्थान में पड़ाव क़ायम किया। ज़िन्दगी में कभी एक दिन के लिए भी उसने किसी युद्धक्षेत्र में क़दम न रक्खा था। धूम-पुंज से आकाश में अंधकार करके उसके गोलंदाज़ों ने तोपों से लगातार गोले तो बरसाये; परन्तु कहां और किस तरह से सेना जुटाई जाय, इसका उन्हें कुछ भी ज्ञान न था! प्रवीण और अनुभवी सेनानायकों ने यदि किसी विषय में कुछ राय भी देनी चाही तो शौकतजंग ने साफ़ कह दिया:—"मैंने इस उमर में ऐसी सौ लड़ाइयों में फ़ौजकशी की है।" सेनानायक बिचारे फिर भी नौकर ठहरे, शौकतजंग उनका मालिक था। अतएव वे बिचारे क्या करते। सम्मानपूर्वक अभिवादन करके अपने अपने डेरों को लौटने लगे।

इसपर भी शौकतजंग के अनुभव-प्राप्त सेनापतियों ने उसके पक्ष के अनुकूल और लड़ाई के लिए सर्वथा उपयुक्त युद्ध-भूमि निर्दिष्ट कर दी थी! थोड़ी सी सेना लेकर सिराजुद्दौला की प्रकाण्ड फ़ौज से मुक़ाबिला करने के लिए ऐसे उपयुक्त स्थान का मिलना कठिन था। इस स्थान के सामने कोसों तक पानी भरा था, उसके ऊपर से होकर शत्रु के गोलंदाज़ों और सवारों के आगे बढ़ने की सम्भावना न थी। इस जलाभूमि को पार करके शौकतजंग पर आक्रमण करने के योग्य सिर्फ़ एक संकीर्ण रास्ता था, जिसके सिरे पर केवल

कई सौ सिपाही तईनात कर देने ही से शत्रु की सेना उन्हें भेदकर आगे नहीं बढ़ सकती थी। इस तरह के अनुकूल स्थान पर पड़ाव डालकर भी शौकतजंग अपनी मूर्खता के कारण यथोपयुक्त व्यूह-रचना न कर सका। भला उसने इतनी उमर में जब ऐसे सौ युद्धों में फ़ौजकशी की थी तो उसकी बात का प्रतिवाद कौन करता? दो दो कोस के फ़ासिले पर उसने एक एक सेनापति का डेरा क़ायम कर दिया।

शौकतजंग ने जिस समय बड़े समारोह के साथ युद्ध-क्षेत्र में पदार्पण किया उस समय मोहनलाल और मीरजाफ़र की फ़ौजें मिलकर मार-मार की आवाज़ें करती हुई आगे बढ़ रही थीं; परन्तु कोई भी उन्हें रोकने की चेष्टा नहीं करता था। क्रमशः वे दोनों फ़ौजें जलाभूमि के सामने आ उपस्थित हुई। उस स्थान पर खड़े होकर मोहनलाल की फ़ौज ने गोले बरसाने शुरू किये। परन्तु उसके अधिकांश गोले आधी दूर पहुंचकर पानी ही में गिरने लगे। दो एक गोला यदि कहीं शौकतजंग की सेना के पड़ाव में पहुंचने लगा तो बस उसी से उसके सिपाही रफ़ूचक्कर होने लगे। शौकतजंग ने सोचा कि अब क्या करना चाहिये। परन्तु वह कुछ भी स्थिर न कर सका, और नितान्त हतबुद्धि हो एक स्थान पर खड़ा रह गया! फ़ौज क्रमशः विपन्न हो रही थी, मौक़ा पाकर मोहनलाल धीरे धीरे उसी संकीर्ण रास्ते से आगे की ओर बढ़ रहा था! इसी समय एक प्रवीण अफ़ग़ान सरदार ने शौकतजंग के सामने आ हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि "जहांपनाह! यह युद्ध कैसा? मैंने दक्खिन में निज़ामुलमुल्क की अधीनता में बहुतेरी लड़ाइयां लड़ीं, परन्तु ऐसी लड़ाई मैंने कभी न देखी। जिस सिपाही की जो इच्छा होती है वह वही

करने लगता है, जिधर जिसे रास्ता मिलता है, भाग निकलता है! भला इस तरह से लड़कर आप कितनी देर तक शत्रु-सेना का बढ़ाव रोक सकेंगे? गोलंदाज़ों को आगे करके उनके पीछे सवारों को रखकर युद्ध-शास्त्र के नियमानुसार लड़ाई लड़िये।" शौकतजंग के तरुण हृदय में अफ़ग़ान सरदार के ये उपदेश-वाक्य तेज़ तीरों की तरह जा चुभे! वह मुंह फाड़कर चिल्ला उठा--"जाओ! जाओ! अब कभी मुझे लड़ाई की शिक्षा देने मत आना। निज़ामुल्मुल्क गधा! जो तुम्हारे कहने के मुताबिक़ फ़ौजकशी करता था। मैं इतनी उम्र में ऐसे तीन सौ युद्धों में लड़ चुका हूं, आज तुम मुझे युद्ध-कौशल की शिक्षा देने आये!" अफ़ग़ान सरदार बिचारा अपनी इज़्ज़त बचाकर चुपचाप वहां से खिसक गया।

श्यामसुन्दर नाम का एक हिन्दू सेनानायक पास खड़ा हुआ यह सब बातचीत सुन रहा था। वह शौकतजंग की आज्ञा पर निर्भर नहीं रहा। पैदलों की जो सेना आगे रहने के कारण तोपें दाग़ने में बाधक होती थी, उसे पीछे हटाकर श्यामसुन्दर तोप लेकर आगे आया! श्यामसुन्दर लेखकी का व्यवसाय करनेवाला एक स्वामिभक्त व्यक्ति था, युद्ध-व्यवसाय से वह नितान्त अनभिज्ञ था। शत्रु-सेना के आक्रमण की ख़बर पाकर उसने क़लम ताक़ में रख दी, और फ़ौज में भर्ती होकर गोलंदाज़ों का अफ़सर बन गया। अशिक्षित श्यामसुन्दर बड़ी वीरता के साथ युद्धक्षेत्र में ऐसी आग बरसाने लगा कि रणविज्ञ मोहनलाल स्तम्भित होकर बीच रास्ते में अपने सवारों को रोकने के लिए बाध्य हुआ। श्याम-सुन्दर की तोप ने बड़े ज़ोर-शोर से गोले बरसाकर मोहन-लाल की फ़ौज को अस्त-व्यस्त कर डाला।

श्यामसुन्दर की रण-शूरता से शौकतजंग ऐसा जोश में आया कि उसने आगे पीछे का विचार न करके अश्वारोही सिपाहियों को भी आगे हो जाने की आज्ञा दी। चतुर सिपहसालारों ने शौकतजंग की भूल उसे समझाई, और कहा कि घुड़सवारों के आगे होनेपर उनमें से एक भी ज़िन्दा न लौटेगा। दोनों दलों की गोलाबारी के बीचमें पड़कर सब जहां के तहां भस्म हो जायँगे। किन्तु शौकतजंग यह कुछ न समझ सका। वह क्रोधान्ध होकर कहने लगा कि "हिन्दू श्यामसुन्दर कैसी वीरता के साथ आगे हो रहा है, वह तो मरा ही नहीं, फिर तुम तो बहादुर मुसलमान हो, क्या तुम्हीं को मौत का डर खाये जाता है ? मैं समझ गया, तुम सब कायर हो।" सरदार लोग इस धिक्कार को न सह सके। क्षण-मात्र में घोड़ों पर सवार होकर दल के दल बड़े जोश के साथ बीच मैदान में आगये। शौकतजंग ने सोचा कि अब युद्धक्षेत्र में ठहरना व्यर्थ है। बड़ी वीरता के साथ अश्वारोही सेना आगे हुई है; बस, दूसरे किनारे पर पहुंचने ही भर की देर है, युद्ध-विजय में अब सन्देह ही क्या ? निदान उसने फ़ौरन् ही विजय की खुशियां मनाते हुए डेरे में आकर शराब का प्याला उठाया। नृत्य-गीत आरम्भ हो गया। बजं-तरी ने सारंग उठाकर बजाना शुरू किया, सहचरी बारवनि-ताओं ने स्वर में स्वर मिलाकर हावभाव कटाक्षों से तालों को अदा करने में देर न की। शौकतजंग नशे और नाचगान में आपे को भूलकर बेहोश पड़ गया।

इस ओर अश्वारोही सेना जलाभूमि को पार करने की चेष्टा करते ही कीचड़ में फंस जाने पर चलने की शक्ति से हीन हो वहीं खड़े खड़े मृत्यु की गोद में आश्रय लेने लगी।

युद्ध नहीं हुआ, केवल निरंतर नर-हत्या के कारण समर-भूमि रक्त से रंगी जाने लगी। ऐसी असहाय अवस्था में भला कौन क्षण भर भी, मौत की चाह में, दृढ़ता से खड़ा रह सकता था? एक एक करके सिपाही पीछे हटने लगे। सरदारों ने सोचा कि इस वक्त यदि शौकतजंग सामने मौजूद हो तो शायद सिपाहियों का उत्साह बढ़ सकता है। इसलिए वे भागकर शीघ्र ही शौकतजंग के डेरे में पहुंचे। शौकतजंग उस समय बेहोश था। पगड़ी उतर पड़ी थी, तलवार कमर से निकल गई थी, हांथ-पांव ढीले हो रहे थे, पटमंडप को प्रतिध्वनित करके नर्त्तकियों के नूपुर-कंकणों की झमाझम आवाज़ आ रही थी, तथापि सरदार लोग ख़ाली न लौटे, उन्होंने शौकतजंग को हाथोंहाथ उठाकर हाथी की पीठ पर रख लिया, और उसी दशा में उसे रणभूमि में ले आये। उसे देखकर भला सिपाहियों को क्या साहस होता, और भी हिम्मत टूट गई। दुश्मन के डेरों से लगातार गोले आ रहे थे; साहसी, चतुर और स्वामिभक्त सेना घड़ी घड़ी में महान् यातनाएँ भोगकर धराशायिनी हो रही थी। सरदार लोग निरुपाय होकर शौकतजंग को होश में लाने के लिए बहुतेरे उपाय कर रहे थे। परन्तु हा! शौकतजंग उस समय बिलकुल बेहोश था! दोनों आंखें मूंदे हुए, बस कभी कभी बीच बीच में "बहुत अच्छा बीबी जान"--इन शब्दों से संगीत के तालों की रक्षा कर रहा था।

हा! सिराजुद्दौला! इसी शौकतजंग को सिंहासन पर बैठाकर तुम्हें रसातल पहुंचाने के लिए जिन्होंने कमर बांधी थी, आज इतिहास के निकट वेही सम्मानास्पद हैं, उन्हीं की

प्रशंसा की गई है, और तुम उनके राजा, आश्रयदाता और प्रतिपालक होकर भी सौ सौ कलंकों से कलंकित हुए !

शौकतजंग को बहुत देर तक विपत्ति-विडम्बना न सहनी पड़ी। सिराज के एक अव्यर्थ निशानेबाज़ सिपाही की गोली ने आकर उसका मस्तक तोड़ दिया, और उसके सारे क्लेशों का अंत हो गया।

पुर्निया में शान्ति संस्थापित हो गई। महाराज मोहनलाल उस का शासन-भार ग्रहण करके यथोपयुक्त व्यक्तियों को मंत्री आदि ऊंचे ऊंचे राजपद प्रदान करने का प्रबन्ध करने लगा। सिराजुद्दौला राजकोष हस्तगत करके शौकत की मां को बड़े सम्मान के साथ मुर्शिदाबाद लिवा लाया, और वह सिराज की मां के साथ अन्तःपुर में रहने लगी।

---

# उन्नीसवां परिच्छेद ।

## कलकत्ते का पुनरुद्धार ।

पर्निया की बग़ावत को दबाने में फंसे रहने के कारण सिराजुद्दौला को अङ्गरेज़ों पर देखरेख रखने का मौक़ा नहीं मिला। अङ्गरेज़ों ने इस बीच में बहुतों से मेलजोल पैदा कर लिया। अनेक लोगों के कृपापात्र बनकर उन्होंने पुनः कलकत्ते में वापिस आने का मार्ग अपने लिए सहज कर लिया। अमीर-उमरावों ने जब सिराजुद्दौला से नम्रतापूर्वक अङ्गरेज़ों पर कृपा करने के सम्बन्ध में निवेदन किया तो उसने सहज ही उसे स्वीकार कर लिया। चारो ओर ख़बर फैल गई कि शीघ्र ही अङ्गरेज़ों को पुनः कलकत्ते में वापिस आने का आज्ञापत्र मिल जायगा।

सिराजुद्दौला शक्तिशाली था, बुद्धिमान् था, बड़े उत्साह और दृढ़ता से वह अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन करता था। बचपन में जब वह किसी बात के लिए मचलता तो कोई भी उसका हठ छुड़ा न सकता था। जवानी में भी वह जो कुछ करना चाहता था, किसी की मजाल नहीं कि उसमें ज़रा भी बाधा डाल सके। अमीरों और वज़ीरों के छलपूर्ण व्यवहार से उसका स्वभाविक स्वाधीन हृदय क्रमशः और भी अधिक स्वाधीन हो गया था। उसकी राय का, उसके विचारों का यदि कोई ज़रा भी प्रतिवाद करता तो वह चट यह शुबह करता था कि शायद इसका कोई गुप्त रहस्य

है। लोगों के व्यवहार से उसके हृदय में इस तरह के सन्देहों का बीज बो जाने पर भी उसके स्वभाव में सुलभता, और विश्वास में सरलता परले सिरे की थी। धर्म का नाम ले, ईश्वर को साक्षी दे अथवा कुरान की क़सम खा कर दुश्मन भी जो कुछ कहता, वह सहज ही उस पर विश्वास कर लेता था। यदि वह इतना सरल-विश्वासी न होता तो सहज ही में कोई कदापि उसे धोखा नहीं दे सकता था। परन्तु सिराजुद्दौला के चरित्र में जो सद्गुण थे, भलाइयाँ थीं, दुश्मन के हाथ में फंसाकर उन सद्गुणों और भलाइयों ही ने उसके सर्वनाश का रास्ता साफ़ कर दिया। जब सब लोगों ने कहा कि "अब अङ्गरेज़ों को काफ़ी सज़ा मिल चुकी, अब वे निरंकुशता का व्यवहार न करेंगे, इस लिए उन्हें पुनः कलकते में वापिस आने की आज्ञा दी जाय तो सिराजुद्दौला ने कहा, तथास्तु! स्वभाव-सारल्य के कारण वह इस गूढ़ मर्म को न समझ सका कि शौकतजंग की पराजय के बाद अपने अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए ही ये लोग मिल-कर पुनः अङ्गरेज़ों को कलकत्ते में बुलाने के लिए आतुर हो रहे हैं।

इस ओर राजवल्लभ, जगत्-सेठ, मीरजाफ़र, मानिकचंद आदि सभी लोग सिराजुद्दौला की शक्ति और शासन-कुशलता का परिचय पाकर भयभीत हो रहे थे। वे उभय-संकट में थे। काम पड़ने पर उन्होंने सिराजुद्दौला के रग-रवैयों को पहिचाना था, और सिराजुद्दौला को भी उन सब के पहि-चानने का मौक़ा मिला था। अमीर-उमराव इन दो समान पक्षों की उलझन में फंस गये कि सिराजुद्दौला में विश्वास रखकर बेखटके से की नींद सोयें, अथवा उसे तख़्त से उतारने

के लिए प्रकट रूप से बग़ावत की घोषणा करें। अंत में अङ्गरेज़ों के आगमन की ख़बर पाकर उन्हें कुछ आशा हुई, और जिस प्रकार अङ्गरेज़ों से घनिष्ठता और मेलजोल बढ़े, उसके विविध उपाय करने लगे। जगत्-सेठ के साथ अङ्गरेज़ों का पत्र-व्यवहार होने लगा। नवम्बर मास के अंत में मेजर किलप्याट्रिक ने उसको इस आशय का एक पत्र लिखा:--"यह निश्चय जानिये कि अङ्गरेज़ों को एकमात्र आपही का भरोसा है। इसलिए वे क़तई आप ही के ऊपर निर्भर हैं"। सेठजी को भी अब कोई सन्देह नहीं रहा, वे भी मनसा-वाचा-कर्मणा, सब तरह से अङ्गरेज़ों के कल्याण-साधन में तत्पर हुए।

बंगाल में एक पुरानी कहावत चली आती है:—

"स्वकार्य साधिते खल तोषामोद करे,
ताहे मुग्ध हय जत बोधहीन नरे।"

अर्थात् अपना काम बनाने के लिए लोग ख़ुशामद किया करते हैं; परन्तु उनकी ख़ुशामदों और चिकनी-चुपड़ी बातों पर मूर्ख ही रीझते हैं, बुद्धिमान नहीं। सेठजी इस पुरानी कहावत की मर्यादा को न रख सके। जो अङ्गरेज़ एक वर्ष पहले तक कलकत्ते में टकसाल स्थापित करके जगत्-सेठ की आर्थिक आय का मार्ग संकुचित कर देने के लिए गुप्तरूप से बादशाह के दरबार में नज़र-भेंट और घूस-रिश्वत के द्वारा रुपये की बौछार कर रहे थे, वेही अङ्गरेज़ काम पड़ने पर जब जगत्-सेठ को मारे ख़ुशामदों के आसमान से भी ऊंचा उठाने लगे तो सेठजी एकाएक सब भूल गये। पिछली बातों का पश्चात्ताप छोड़कर हतभाग्य उमीचंद भी तन-मन से अङ्गरेज़ों के हित-साधन में तत्पर हुआ, और इसपर उसकी नज़र न गई कि भविष्य की जवनिका को कैसे भीषण दृश्य-पटों ने

आच्छादित कर रक्खा है। दिन गुज़रते गये, और दिनोंदिन अङ्गरेज़ों की आशालता बढ़ती गई।

चतुरच्चूड़ामणि मानिकचंद फूंक फूंककर क़दम रखने लगा। उसका विश्वास था कि पुर्निया के युद्ध ही में सिराजुद्दौला का सर्वनाश हो जायगा। जब ऐसा नहीं हुआ तो वह गुप्तरूप से अङ्गरेज़ों की मदद और प्रकट रूप से कलकत्ते की रक्षा के लिए बाह्य आडम्बर रचने लगा।

वेन्टू नामक एक व्यक्ति चुंचुड़ा का पादरी था। अङ्गरेज़ों के अनुरोध से कई सप्ताह तक कलकत्ते में रहने के बहाने से उसने वहां की गुप्त ख़बरें संगृहीत करके अङ्गरेज़ों के पास भेज दीं। उसकी चिट्ठी से पलता के अङ्गरेज़ों को मालूम हुआ कि "मानिकचंद ने नदी की ओर बहुत सी तोपें लगाकर अपना प्रभाव जमा रक्खा है; परन्तु ये सब उसके दिखावे हैं। तोपें निकम्मी अवस्था में टूटी पड़ी हैं। टाना के क़िले में सिर्फ़ २०० सिपाही हैं। हुगली में क़िले के भीतर ५० आदमी और बाहर ५०० आदमियों से ज़्यादा फ़ौज नहीं दिखाई पड़ती।"

उमीचंद ने लिख भेजा:— "लोग नवाब के डर से कुछ कहने का साहस नहीं करते हैं, परन्तु अङ्गरेज़ों के पुनरागमन के लिए ख़्वाजा वाजिद इत्यादि प्रधान प्रधान सौदागर बड़े उत्सुक हो रहे हैं।" हालवेल साहब को ख़बर मिली कि कलकत्ते का क़िला एक प्रकार से अरक्षित है। उसके चारो बुर्ज टूटे फूटे निकम्मे पड़े हैं। शहर के निवासी बेखटके ख़र्राटों की नींद सो रहे हैं। उनका विश्वास था कि नवाब के दरबार की ओर से अङ्गरेज़ों को वापिस आजाने का आदेश मिल जाने की सम्भावना देखकर लोग कलकत्ते की रक्षा और देखरेख में भली प्रकार योग नहीं देते हैं। इन सब समाचारों से पलता

के अङ्गरेज आशा के आनन्द में निमग्न होकर मद्रास से फ़ौज आने की बाट देखने लगे।

क्लाइव और वाट्सन पुराने मित्र थे। कुछ दिन पहले इन दोनों ने मिलकर मलाबार किनारे पर युद्ध-व्यापार में लिप्त हो खूब लाभ उठाया था। वहां पर सुवर्णदुर्ग के बन्दर में मराठों के सामरिक जहाज़ों का अड्डा था। अंग्रिया नामक एक महाराष्ट्र सरदार उसके जल-सेनाध्यक्ष के पद पर नियुक्त था। कुछ दिन पहले मराठों के राज्य से बाग़ी होजाने पर वह सामुद्रिक जहाज़ों को लूटकर धन संग्रह करता था। उसके अत्याचारों से महाराष्ट्र सैनिक और युरोपीय सौदागर सभी तंग आगये थे। उस समय क्लाइव और वाट्सन अपनी प्रभूत सेना के साथ बेखटके समुद्र के किनारे पर ठहरे हुए थे। इस अवसर को पाकर मराठों ने क्लाइव और वाट्सन की सहायता ली, और उसके बदले में उन्हें बहुतसा धन दिया। इन सम्मिलित शक्तियों ने मिलकर सुवर्णदुर्ग को चूर चूर कर डाला। हिन्दुओं की जहाज़ी सेना का प्राबल्य, जो बहुत बढ़ रहा था, सदा के लिए विलुप्त हो गया। क्लाइव और वाट्सन को यथेष्ट धन लूटने का अच्छा मौक़ा हाथ लगा। क्लाइव ने स्वयम् स्वीकार किया है कि उसे इस युद्ध में लगभग १५,००,००० रुपये मिले थे। क्लाइव और वाट्सन के सामरिक जहाज़ जब उड़ीसा के किनारे पर पहुंचकर धीरे धीरे कलकत्ते की ओर अग्रसर हो रहे थे, उस समय एक दिन क्लाइव, वाटसन को बुलाकर परामर्श करने बैठे। परामर्श का विषय और कुछ नहीं था, सिर्फ़ यह कि यदि अपने बाहुबल से बंगाल को हम लोगों ने लूट पाया तो लूट के माल में किसे कितना हिस्सा मिलेगा! वाट्सन ने इस

सम्बन्ध में सुवर्णदुर्ग का उदाहरण देना चाहा; परन्तु क्लाइव ने उसे स्वीकार नहीं किया। कारण यह था कि उस बार क्लाइव का भाग कुछ कम लगाया गया था। अंत में बड़े बहस-मुबाहिसे के बाद यह निश्चय हुआ कि भाई उस बार जो हुआ सो हुआ, अब से भाग बराबर बराबर होगा।

जिन्होंने क्लाइव और वाट्सन को बंगाल भेजा था, उन्होंने किसी न किसी तरह कलकत्ते के वाणिज्याधिकार ही को पुनः प्राप्त करने की कोशिश की थी। और बिना ही रक्तपात एवं मारकाट के यह कार्य सिद्ध करने के लिए दक्खिन के निज़ाम और अरकाट के नवाब से सिफ़ारिश की चिट्ठियां लिखाकर उन्होंने सिराजुद्दौला के पास भेज दी थीं। परन्तु मदरास-दरबार की उक्त आज्ञा का पालन करने के लिए जो सरदार ( क्लाइव और वाट्सन ) सेना के सहित बंगाल में आये, वे इसी चिन्ता में निमग्न रहने लगे कि सेना की सहायता से बङ्गाल को लूटकर कौन कितना धन प्राप्त करेगा! उनके इन विचारों की बदौलत मीरजाफ़र के भाग्य-वृक्ष में कैसे सुधा-फल फले थे, उसका वर्णन इतिहास में विस्तृत रूप से प्रकाशित हुआ है।

इस गुप्त-मंत्रणा का भेद सिराजुद्दौला बिलकुल न जानता था। मेजर किल्प्याट्रिक और पलता के अङ्गरेज़ों को भी यह कुछ नहीं मालूम था। वे 'येन केन प्रकारेण' केवल वाणिज्य का अधिकार प्राप्त करने के लिए ही विनीत प्रार्थनाएं करने लगे, और सिराजुद्दौला ने भी उन्हें स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नहीं की।

सब झगड़े-बखेड़ों का अन्त होने ही वाला था कि इतने में ख़बर आई कि अंगरेज़ सौदागरों ने बहुत से सामान गोला-

बारूद इत्यादि के साथ मदरास से आकर पलता बन्दर पर जहाज़ों के लंगर डाले हैं। यह ख़बर आने के साथ ही एक राजदूत सेनापति वाट्सन का पत्र लेकर उपस्थित हुआ। पत्र यह थाः—

ब्रिटानिया-नरेश का केन्ट नामक जहाज़,
स्थान पलता, १७ दिसम्बर सन् १७५६ ई०।

"मेरे स्वामी इंगलैंड-नरेश ने (जिनका नाम संसार के अन्य राजाओं में आदरणीय है) मुझे इस प्रदेश में ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के स्वत्वों और अधिकारों की रक्षा के हेतु एक बड़ी जहाज़ी सेना के साथ भेजा है। जो लाभ मेरे राजा की प्रजा के व्यापार से मुग़ल राज्य को हुए हैं, उन्हें गिनाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे स्पष्ट ही हैं। ऐसी दशा में यह सुनकर मुझे बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि आपने एक बड़ी सी फ़ौज लेकर कम्पनी की कोठियों पर आक्रमण किया, और नौकरों को ज़बरदस्ती निकाल दिया, एवं उनका माल-असबाब, जो बहुत क़ीमती था, लूट लिया, और मेरे राजा की बहुत सी प्रजा को मार डाला। मैं कम्पनी के नौकरों को फिर उनकी कोठियों तथा मकानों में बसाने के लिए आया हूं। आशा करता हूं कि आप उनको फिर वही पुराने हक़ और आज़ादी दे देंगे, जो उन्हें पहले हासिल थे। आपको वे भलाइयां याद रखनी चाहिये, जो आपके देश में अंगरेज़ों के रहने से हुई हैं। मैं निस्सन्देह आशा करता हूं कि आप उनके उन घावों को भरने और नुक़सानों को पूरा करने के लिए राज़ी हो जायँगे, जो आपने पहुंचाये हैं। और इस प्रकार शान्तिपूर्वक सब क्लेशों का अन्त करके मेरे उस राजा के मित्र बन जायँगे, जो शान्तिप्रिय और न्यायपरायण है। इससे अधिक मैं क्या कहूं।"

## बीसवां परिच्छेद।

### शान्तिप्रिय कौन,—

### मुसलमान सिराज या क्रिश्चियन अंगरेज़ ?

क्लाइव और वाट्सन पलता पहुँचते ही वीरता के जोश में कलकत्ते पर पुनराधिकार करने के लिए आतुर हो उठे थे। परन्तु इस गुप्त रहस्य को पलता के अंगरेज़ कुछ न जान सके कि लूटमार के द्वारा इच्छित धन प्राप्त करके बांट चूंटकर हड़प जाने के लिए ही वे इतने व्याकुल हो रहे थे। पलता के अंगरेज़ युद्ध-कलह के लिए कदापि तैयार नहीं थे। उनका निश्चय था कि जब नवाब ने बिना ही युद्ध के वाणिज्य का अधिकार देना स्वीकार कर लिया है तो फिर अनर्थक मार-काट और नर-हत्या में फँसने की क्या ज़रूरत? वे कहने लगे—"लड़ाई में न जाने कौन हारे कौन जीते, युद्ध के फलाफल को पहले से निश्चय कर लेना सर्वथा असम्भव है। धैर्यपूर्वक कुछ दिन और ठहरने के बाद निस्सन्देह हमें वाणिज्य का अधिकार प्राप्त हो जायगा।" परन्तु क्लाइव ने इन बातों पर बिलकुल ध्यान न दिया। कलकत्ते पर हमला करना ही निश्चय हो गया। क्लाइव ने बड़े अभिमानपूर्वक अनेक कटु-शब्दों का प्रयोग करके एक पत्र लिखा, और सिराज़ुद्दौला के पास भिजवा देने के लिए वह पत्र मानिकचन्द को दे दिया। परन्तु मानिकचन्द की हिम्मत न पड़ी, और वह इस

निरंकुशतापूर्ण पत्र को नवाब के पास भेजने के लिए तैयार नहीं हुआ।

२१ दिसम्बर को मैदापुर के मैदान के पास जहाज़ लगाकर क्लाइव ने स्थल-मार्ग से युद्ध-यात्रा करने का प्रबन्ध किया। गंगा के किनारे पर बजबज नामक एक छोटा सा क़िला था। इस निश्चय के साथ कूच का डंका बजा कि वाट्सन जल-मार्ग से जाकर बजबज के क़िले पर आक्रमण करेंगे, और जो लोग क़िला छोड़कर भागेंगे, स्थल-मार्ग से क्लाइव उनका काम तमाम कर डालेंगे। परन्तु लड़ाई की तैयारी ही में पारस्परिक कलह का सूत्रपात हुआ। स्थल-मार्ग से युद्ध-यात्रा करने पर, तोपें लेजाने, बारूद ढोने और रसद पहुंचाने के लिए गाड़ी-घोड़े और भैंसों की ज़रूरत थी। कलकत्ते के भागे हुए अँगरेज़ों ने जब यह सब सामान प्रस्तुत न किया तो क्लाइव बिचारे को अनन्योपाय रहना पड़ा। वे लोग किसी प्रकार नवाब के क्रोध को उभारकर क्लाइव का साथ देने के लिए राज़ी नहीं हुए। निदान क्लाइव उनको भीरु, कायर इत्यादि सुमिष्ट सम्बोधनों से परितृप्त करके स्वयम् ही सारा सामान एकत्र करने का उद्योग करने लगा। दो तोपें और सिर्फ़ एक गाड़ी बारूद की तैयार हुई। बारी बारी से पैदल सिपाही ही उन गाड़ियों को खींचकर ले चले। इस प्रकार बड़े साहस, निर्भीकता और अपराजित उत्साह के साथ क्लाइव की सेना कलकत्ते की ओर अग्रसर होने लगी। वाट्सन जल-मार्ग से चढ़ाव की ओर धीरे धीरे चल दिये।

मैदापुर से बजबजिया स्थान आठ कोस था। पथ और घाट ठीकठाक नहीं थे। जंगलों को पार करके आठ कोस आते ही अङ्गरेज़ी सेना परिश्रान्त हो गई। क़िला बहुत छोटा

था, सिपाहियों की संख्या बिलकुल मामूली थी। तथापि वाट्सन साहब के न आजाने तक क्लाइव को क़िले पर हमला करने का साहस न हुआ। मार्ग की थकावट से सब लोग ऐसे लथर-पथर हो गये थे कि संतरियों के समेत एक एक करके सब लोग भूमि ही के फ़र्श पर प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गये।

इस ख़बर को सुनकर मानिकचन्द विषम समस्या में पड़ गया कि अङ्गरेज़ लोग ससैन्य कलकत्ते की ओर आ रहे हैं। वह अभीतक इसी आशा में था कि संधि का प्रस्ताव चल रहा है, आज होती है, कल होती है, वह लड़ाई के लिए तैयार नहीं था। तथापि लोगों के दिखाने को, नवाब के नमक का हक़ अदा करने के लिए, उसे वाह्य आडम्बर बनाना पड़ा, और सेना के सहित उसने स्वयम् बजबजिया पर धावा किया।

मानिकचन्द ने गोले बरसाकर ज्योंही सोते हुए सिंहों को जगाया कि फ़ौरन् ही दोनों दलों में लड़ाई शुरू हो गई। इस रण-परीक्षा में मानिकचन्द ने वीरोचित कर्त्तव्य पर ध्यान नहीं दिया, और अङ्गरेज़ों ने दोही चार गोले फेंके थे कि मानिकचन्द भाग गया। अङ्गरेज़ों ने इसपर परिहास की भांति लिखा है—"मानिकचन्द की पगड़ी के पास से होकर ज्योंही बंदूक़ की गोली सनसनाती हुई निकली कि वह चट चम्पत हो गया! मैदान में वह फिर मुहूर्त भर भी न ठहरा; बजबज छोड़कर, कलकत्ता छोड़कर हांफता-कांपता सीधा एकदम मुर्शिदाबाद को भाग गया।" परन्तु मानिकचन्द के भागने का रहस्य कुछ और ही था, जो अत्यन्त आश्चर्य-जनक है। किन्तु इतिहास ने उस रहस्य का निर्णय

न करके भीरु और कायर कहकर मानिकचन्द का मज़ाक़ उड़ाया। अङ्गरेज़ों के साथ मानिकचन्द का जो मेलजोल हो गया था, क्या मानिकचन्द के भागने से उसका कुछ सम्बन्ध न था ?

इसके बाद युद्ध बन्द हो गया। क्लाइव और वाट्सन दूसरी जनवरी को जिस समय कलकत्ते के क़िले के पास पहुंचे तो क़िले के संरक्षक सिपाहियों ने दो ही चार गोले चलाकर पीठ दिखाई। सूने क़िले में क्लाइव ने अपनी विजय-पताका बड़े ज़ोरों के साथ फहरा दी !

क़िला फ़तह हो गया, रण-कोलाहल शान्त हुआ। परन्तु अब अङ्गरेज़ सैनिकों में परस्पर ईर्ष्या-द्वेष बढ़ने लगा। क्लाइव और वाट्सन दोनों ही बड़े चतुर थे। दोनों में परस्पर लड़ाई ठन जाने की नौबत आ पहुँची। दोनों ने सोचा कि क़िले पर जिसका अधिकार रहेगा; लूट के माल पर भी उसी का आधिपत्य हो जायगा। अतएव वाट्सन ने क़िले पर क़ब्ज़ा करने के लिए कप्तान कूट को एक परवाना दे दिया। कप्तान कूट जिस समय यह परवाना लेकर क़िले के फाटक पर पहुंचे तो क्लाइव ने चट उन्हें वहां से भगा दिया, और कह दिया कि "मैं वाट्सन के अधिकार को नहीं मानता, क़िले का मालिक मैं हूं। यदि आज्ञा-पालन में ज़रा भी चीं-चपड़ करेगा तो फ़ौरन् जेलख़ाने में ठूंस दूंगा।"

क्लाइव की कूटनीति से परास्त होकर बिचारे कूट साहब ने परवाना ले जाकर वाट्सन साहब को वापिस दे दिया। वाट्सन सहज ही कब छोड़नेवाले थे, उन्होंने कप्तान स्पिक को भेजा। स्पिक ने आकर क्लाइव से प्रश्न किया कि "किसकी आज्ञासे तुमने क़िले पर अधिकार किया है?" क्लाइव ने कहा

कि सेनापति मैं हूं, इसलिए क़िले पर अधिकार जमाने का हक़ मुझे ही है, वाट्सन को कोई मजाज़ नहीं। इस ख़बर के जवाब में वाट्सन ने क्लाइव से कहला भेजा कि "यदि सीधी तरह से क़िला नहीं छोड़ोगे तो मैं तुम्हें तोप के गोले से उड़ा दूंगा।" क्लाइव ने कहा, बहुत अच्छा, परन्तु इस आत्म-कलह का उत्तरदायित्व आपही पर होगा। अन्त में कप्तान लाथम और स्वयम् वाट्सन क़िले तक आये, और बहुत से बाद-विवाद के अनंतर दोनों पक्षों में संधि हो गई। इस संधि के अनुसार क़िले का अधिकार क्लाइव को दिया गया। संसार के इतिहास में दुर्गों की विजय के बहुतेरे वर्णन हैं, परन्तु आत्म-कलह के ऐसे दृष्टान्त बहुत कम देखने में आते हैं।

दोनों पक्षों का मनोमालिन्य दूर करने के लिए ड्रेक साहब को कलकत्ते का शासक नियत किया गया, और पुनः बड़े गौरव के साथ उन्होंने कलकत्ते के अधिकारी का आसन ग्रहण किया।

क़िले में प्रवेश करने पर अङ्गरेज़ों ने देखा कि कम्पनी के कर्मचारी क़िले के भीतर जो चीज़ें, जिस दशा में, जहां, रख गये थे वे सब ज्यों की त्यों रक्खी हुई हैं। न किसी ने उन्हें चुराया, न लूटा। क़िले की चारदीवारी के बाहर जो मकान थे, केवल उन्हीं को सिपाही लोग लूट ले गये।

क़िला हाथ में आ गया। स्वदेशी लोगों के दल के दल कलकत्ते को लौट आये। अङ्गरेज़ों का वाणिज्य पुनः संस्थापित होने लगा। क्लाइव का कर्त्तव्य-कार्य तो पूरा हो गया, परन्तु लूटपाट और बांटचूट की नौबत अभी नहीं आई। अतएव अब सब लोग देश को लूटने के लिए आतुर होने लगे! हुगली को

लूटने का निश्चय हुआ। हुगली बहुत पुरानी जगह थी, वहां फ़ौजदार की राजधानी थी, वाणिज्य-व्यापार का वह सब में मुख्य और मूल स्थान था। इन कारणों से वहां प्रभूत सम्पत्ति का संचय सर्वथा ही सम्भव था। मेजर किलप्याट्रिक बहुत दिनों से बेकार बैठे हुए थे, उन्हीं के ऊपर लूट का भार डाला गया! पैदल, गोलंदाज़ और वालंटियर,—लूट के लालच से अङ्गरेज़मात्र हुगली पर दौड़ पड़े। क़िला और राजधानी लूट ली गई, जल्दी जल्दी लूटपाटकर अङ्गरेज़ी फ़ौज से जहां तक हो सका, नगरनिवासियों के घरों को भूमिसात् करके कलकत्ते को वापिस आई!

वाट्सन् और क्लाइव ने बंगाल में क़दम रखते ही सिराजुद्दौला के पास संधि का प्रस्ताव भेजा था। अपनी रज़ामन्दी प्रकट करते हुए सिराजुद्दौला ने भी उसका प्रत्युत्तर भेज दिया था। परन्तु अङ्गरेज़ों ने उसकी बात पर ज़रा भी विश्वास न करके बलपूर्वक कलकत्ते पर आक्रमण कर अपनी धृष्टता का पूरा परिचय दिया, तथापि सिराजुद्दौला ने इस पर भी एकाएक क्रोधित न होकर पुनः एक पत्र लिख भेजा, जिसका आशय यह था:—

२३ जनवरी सन् १७५७ ई०

"तुमने लिखा है कि तुम्हारे स्वामी एवं राजा ने तुम्हें कम्पनी के कारबार और व्यापार की रक्षा के लिए ही भारतवर्ष में भेजा है। मुझे जिस समय यह पत्र मिला था उस समय पढ़कर फ़ौरन ही मैंने उसका जवाब भेज दिया था। अब देखता हूं कि मेरा जवाब तुम्हें नहीं मिला, इसलिए पुनर्वार यह चिट्ठी लिखता हूं।

मैं कह चुका हूं कि कम्पनी के अध्यक्ष राजर ड्रेक ने, मेरी आज्ञा के विपरीत आचरण करके, मेरी शासन-शक्ति का उल्लंघन किया था। दरबार की निकासी का पावना रुपया अदा न करके मेरी जो प्रजा राज्य से भागी, उसे उन्होंने आश्रय दिया। मेरे निषेध करने पर भी वे इस तरह के कामों से बाज़ न आये। केवल इसीलिए मैंने उन्हें दण्ड देने का निश्चय किया, और उन्हें अपने राज्य से निकाल दिया था। परन्तु मैं चाहता था कि यदि अङ्गरेज़ लोग किसी और व्यक्ति को अध्यक्ष बनाकर भेजेंगे तो मैं उन्हें पूर्ववत् ही वाणिज्य के अधिकार प्रदान करूंगा। अतएव राज्य और राज्य के निवासियों के कल्याण के लिए मैं यह पत्र लिखता हूं। यदि कम्पनी का वाणिज्य ही संस्थापित करने की तुम्हें इच्छा हो तो एक व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त करो। ऐसा करने पर पूर्व-प्रचलित नियम के अनुसार ही तुम वाणिज्य के अधिकार को व्यवहार में लाने की आज्ञा पा सकोगे। यदि अङ्गरेज़ों का बर्ताव वणिकों का सा रहेगा, और वे मेरे आज्ञानुवर्ती रहेंगे तो इस सम्बन्ध में वे निश्चिन्त रहें कि मैं उनका पालन करूंगा, और वे मेरे कृपापात्र रहेंगे।"

इस पत्र से सिराजुद्दौला के जैसे चरित्र का परिचय मिलता है, उसमें और इतिहास-वर्णित सिराजुद्दौला के चरित्र में बहुत बड़ा अन्तर है। परन्तु अङ्गरेज़ लोग इन सब बातों को जान बूझकर भी अपनी शान्ति-प्रियता का परिचय न दे सके। यह पत्र जिस समय अङ्गरेज़ों के हाथ में पहुंचा तो उस समय वे कलकत्ते पर पुनराधिकार कर हुगली की लूट पाट, वीरसिंह हो अङ्गरेज़ी क़िले में विश्राम-सुख का उपभोग कर रहे थे। अस्तु, पत्र को पढ़ते ही वाट्सन की शान्त मूर्ति

विलीन हो गई। आपे से बाहर हो, सिहवीरता के जोश में इस बार उन्होंने यह प्रत्युत्तर भेजाः—

"आपने अपने पत्र में लिखा है कि इस देश से अङ्गरेज़ों के निकालने का एकमात्र कारण, कम्पनी के गुमाश्ता मि० ड्रेक का उद्दण्ड व्यवहार था। परन्तु इसके साथ ही यह ध्यान देने के योग्य है कि राज्य के शासक और राजकुमार—जो न आंखों से देखते और न कानों से सुनते हैं—प्रायः असत्य ख़बरें पाते हैं, और दूसरों से ईर्ष्या करनेवाले बुरे आदमी सच्चाई को उनसे हमेशा दूर रखते हैं। क्या न्यायानुसार एक शाहज़ादे को यह उचित था कि वह एक आदमी के अपराध से इतने आदमियों को दण्ड देता? या ऐसे निर्दोष आदमियों का, जिन्होंने कभी कोई अनुचित कार्रवाई नहीं की, इस प्रकार सर्वनाश करता! वे लोग शाही फ़रमान पर भरोसा रखकर उस रक्तपात और उन अत्याचारों के बजाय—जो दुर्भाग्य से उन्हें सहने पड़े—हमेशा अपने जान-माल के सुरक्षित रहने की आशा रखते थे। क्या यह काम एक शाहज़ादे की प्रतिष्ठा और महत्व के योग्य है? कोई इसे योग्य नहीं कह सकता। यह केवल उन्हीं बुरे लोगों की वजह से हुआ, जिन्होंने ईर्ष्या और स्वार्थ के वशीभूत होकर आपके पास मिथ्या ख़बरें पहुंचाई। परन्तु बड़े शाहज़ादे सदा न्यायानुकूल काम और दयालु वर्ताव करने में प्रसन्न होते हैं। इसलिए यदि आप एक बड़े शाहज़ादे की तरह न्यायी और यशस्वी बनने की अभिलाषा रखते हों तो कम्पनी के साथ आपने जो व्यवहार किया है, उसके लिए उन बुरे सलाहकारों को—जिनकी राय से आपने ऐसा किया—दण्ड देकर कंपनी को संतुष्ट कीजिये। और उन लोगों को,

जिनका माल-असबाब छीना गया है, राज़ी कीजिये। एवम् अपने इन कामों से हमारी उन तलवारों की धारों को फेरिये, जो शीघ्र ही आपकी प्रजा के शिरों पर गिरने के लिए तैयार हैं। यदि आपको मिस्टर ड्रेक के विरुद्ध कोई शिकायत है तो उचित है कि आप अपनी शिकायत कंपनी को लिखें। क्योंकि नौकर को दण्ड देने का अधिकार केवल मालिक ही को है। मैं उन शिकायतों का आपको संतोष-प्रद उत्तर दूंगा। यद्यपि मैं भी आपकी तरह एक सिपाही हूं, तथापि मैं यह पसंद करता हूं कि आप स्वयम् अपनी इच्छा से न्याय करें तो इसकी अपेक्षा अच्छा होगा कि मैं आपकी निरपराध प्रजा को पीड़ित करके आपको न्याय करने के लिए बाध्य करूं।"

यह पत्र जिस समय सिराजुद्दौला को मिला, उसके पहले ही वह हुगली की लूट का वृत्तान्त सुन चुका था। वह अङ्गरेज़ों के उद्दण्ड व्यवहार से सदा ही चिढ़ता रहा था, वाट्सन के पत्र से भी वही हुआ। सिराजुद्दौला मुसलमान, और वाट्सन सुसभ्य क्रिश्चियन। अतएव मुसलमान नवाब क्रिश्चियन सौदागरों की धर्म-नीति और तर्क-प्रणाली को भली भांति न समझ सका। अङ्गरेज़ ठहरे बातों के नवाब। वे इस गूढ़ नैतिक रहस्य के उपासक थे कि "जो कहें उसे करो, जो करें उसका अनुसरण मत करना।" दूसरों के कामों की समालोचना करने में बड़े दक्ष, परन्तु उनके कामों पर कोई दृष्टि डालना चाहे तो बस, आग बबूला बन जायँ। काम चाहे जिस तरह हो, पर बातों से उसके दोषों पर पानी फेरने के समय पंचमुखों से अङ्गरेज़ों का गुणगान करने के लिए लालायित। सिराजुद्दौला नौजवान था, अंगरेज़ों के इस तरह के रीति-व्यवहार को देख

उनका नाम सुनते ही उसका दिल दहल जाता था। जिन्होंने पदाश्रित वणिक होते हुए भी हुगली के निरपराध नागरिकों को केवल रुपये के लालच से लूटकर बरबाद कर दिया, और उनके मकानों को धूलि-धूसरित करके चोर तथा डाकुओं की तरह सारा माल-असबाब हड़प लिया ! और इधर अपनी रक्त से रंगी हुई तलवारों को साफ़ किया ही था कि उधर चट से लेखनी थामकर बड़े प्रवीण धर्मोपदेशकों की तरह कलकत्ता लूट लेने के लिए सिराजुद्दौला की निन्दा और भर्त्सना करने लगे ! युद्ध-कलह में एक व्यक्ति के अपराध से सदा ही दस को दण्डित होना पड़ता है। एक रावण के अपराध से सारा राक्षस-वंश निर्मूल हो गया, और एक नेपोलियन की बदौलत अगणित फ़रासीसों का सर्वनाश हुआ। अंगरेज़ों के राज्य में भी एक राजा के कल्पित अपराध के कारण असंख्य नागरिकों के ख़ून की धारा से सारा इङ्गलैंड रुधिर-चर्चित लोहित रंग से रंजित हो गया था। कलकत्ते के सर्वसाधारण अङ्गरेज़ों ने मिलकर सभा में प्रस्ताव पास करके नवाब के भेजे हुए दूत को गरदनियां देकर निकाल दिया, क्या यह कोई समुचित अपराध नहीं था ? अथवा क्या यह किसी एक ही व्यक्ति का अपराध था ? जो अपराधी ड्रेक साहब के साथ मिलकर कमर बांध लड़ने के लिए तैयार हो टाना के क़िले पर आक्रमण करने और उमीचन्द का सर्वनाश साधन करने में अप्रशंसनीय वीर-कीर्ति का चिह्न छोड़ कार्य के समय प्राण लेकर भाग गये थे, वे पहले निरपराध होते हुए भी भविष्य में अपनी ही करतूत से अपराधी बने। सभी देशों में ऐसा ही होता है। राजा के अपराध से प्रजा को और सेनापति की भूल से सेना को सब कहीं विविध

दुःख झेलने पड़ते हैं। युद्धानल की लपट में राजाओं के क़िलों के साथ साथ कितने ही कंगालों की कुटियां जलकर भस्म होजाती हैं, कौन इसे रोक सकता है? वाट्सन ने लज्यावश सत्य को छिपाकर यह लिख भेजा कि सिराजुद्दौला ने दूसरों की बातों पर विश्वास करके अङ्गरेज़ों का सर्वनाश किया! नवाब के दूत को अपमानित करके बाहर निकाल देने की बात को कलकत्ते के अङ्गरेज़ों ने भी स्वीकार किया है, वाट्सन अपने वाक्चातुर्य से क्या उन सभी बातों को उड़ा देना चाहते थे? अस्तु, वाट्सन साहब चाहे कुछ कहें, पर अङ्गरेज़ों के काग़ज़-पत्रों से उनके पक्ष का समर्थन नहीं होता। वाट्सन कहते हैं कि ड्रेक साहब ने जिस निरंकुश व्यवहार का परिचय दिया था, उसके प्रति सिराजुद्दौला को उचित था कि वह अङ्गरेज़ी कम्पनी की अदालत में अपना दावा पेश करता। सिराजुद्दौला इसका और क्या जवाब देता? वह जिस देश का नवाब था, ड्रेक साहब उसी देश की एक व्यापारीय कम्पनी का साधारण गुमाश्ता था। उसी के देश में रहनेवालों के मुंह से उसे यह भी सुनना पड़ा कि कम्पनी के पास नालिश न करके सिराजुद्दौला ने स्वयम् ही ड्रेक साहब को दण्ड देने की व्यवस्था की, यह घोर अन्याय किया! शासन-शक्ति को संस्थापित रखने और अपने आत्मसम्मान की रक्षा करने तथा असहाय प्रजा के जान-माल को बचाने के लिए सिराजुद्दौला को पुनः दूसरी बार युद्ध-यात्रा करनी पड़ी। परन्तु क्रोधान्ध होकर उसने अपने कर्त्तव्य को नहीं भुलाया। मुसलमान नवाब क्रोधित और उत्यक्त होकर भी कितने क्षमाशील हो सकते हैं, यह बताने के लिए उसने पुनः वाट्सन को एक पत्र लिख भेजा :—

"तुमने' हुगली को लूट लिया, और मेरी प्रजा के साथ लड़ाई की। यह काम सौदागरों के योग्य कदापि नहीं था। विवश हो, मुझे मुर्शिदाबाद छोड़कर हुगली आना पड़ा। फ़ौज के साथ नदी पार कर रहा हूं। सेना का एक भाग तुम्हारे पड़ाव की ओर धावा कर रहा है। तथापि यदि कम्पनी के वाणिज्य को पूर्व प्रचलित नियमों के अनुकूल संस्थापित रखना हो, और व्यापार करने की तुम्हें उत्कट आकांक्षा हो तो एक विश्वासपात्र व्यक्ति मेरे पास भेजो, जो तुम्हारे सब दावों को समझाकर मेरे साथ संधि संस्थापित कर सके। कम्पनी की कोठी के पुनः प्रचलित और पूर्व नियमों के अनुकूल फिर वाणिज्य करने की आज्ञा देने में मुझे कोई विवाद न होगा। यदि इस प्रदेश में रहनेवाले अङ्गरेज़ सौदागरों का सा व्यवहार करें, आज्ञापालन के लिए तैयार रहें, और मुझे असंतुष्ट न करें तो वे इस विषय में निश्चिन्त रह सकते हैं कि मैं अवश्यही उनकी हानि के मामले पर विचार करके उन्हें संतुष्ट करूंगा।

"लड़ाई के वक्त फ़ौज के सिपाहियों को लूटमार से रोकना कैसा कठिन काम है, यह तुम्हें अच्छी तरह ज्ञात है। फिर भी यदि तुम मेरी सेना के द्वारा होनेवाली लूट के दावे को किसी अंश में छोड़ सको तो भविष्य में तुम्हारे साथ सौहार्द और मेल-मिलाप क़ायम करने की आशा से मैं उसके सम्बन्ध में भी तुम्हें संतुष्ट करूंगा।

"तुम क्रिश्चियन हो, और इसलिए तुम्हें यह अवश्य ही ज्ञात है कि शान्ति-संस्थापन के लिए सारे विवादों का फ़ैसला कर डालना और समस्त वैर-विद्वेष को तिलांजलि देना कितना कल्याणकारी है। परन्तु तुमने यदि कम्पनी के अन्यान्य वणिकों

के वाणिज्य-स्वार्थ का नाश करके लड़ाई लड़ने ही का दृढ़ निश्चय कर लिया है तो फिर उसमें मेरा कोई अपराध नहीं। सर्वनाश-जनक युद्ध-कलह के अनिवार्य कुपरिणाम को रोकने के लिए ही मैं यह चिट्ठी लिखता हूं।"

इस पत्र की एक एक पंक्ति से गम्भीरतापूर्ण शान्त-स्वभाव की उदारता झलक रही है। नौजवान होकर भी सिराजुद्दौला इस तरह के शान्तिमय चरित्र का परिचय देने में समर्थ हुआ था, यह उसके लिए विशेष गौरव की बात है। राजा होकर प्रजा के साथ युद्ध-कलह में लिप्त होना, राजा के लिए सर्वथा अनिष्टकारक है, उससे शिल्प और वाणिज्य की हानि होती है, एक के अपराध से सारे देश का सर्वनाश और सर्वसाधारण का अमङ्गल होता है। इन बातों को समझ-कर ही सिराजुद्दौला ने संधि संस्थापित करने के लिए वाट्-सन को पत्र लिखा था। अब इसके साथ अङ्गरेज़ी कम्पनी के व्यवहार की तुलना कीजिये। शान्तिप्रिय कौन था, मुसलमान सिराज या क्रिश्चियन अङ्गरेज़?

---

# इक्कीसवां परिच्छेद ।

## अलीनगर की संधि ।

मुसलमान इतिहास-लेखक सैयद गुलामहुसेन ने लिखा है कि "अङ्गरेज़ लोग जिस समय हुगली को लूटने में व्यस्त थे, ठीक उसी समय विलायत से उन्हें यह समाचार मिला कि इस देश में फरासीसों के साथ पुनः युद्ध आरम्भ हो गया है। अङ्गरेज़ और फ़रासीस शान्ति से रहना जानते न थे। इन दोनों जातियों में पांच छः सौ बरस से बराबर लड़ाई चली आती थी। कभी कभी रण के परिश्रम से परिश्रान्त होजाने पर ज़रा दम लेने के लिए परामर्श करके दोनों दल थोड़े दिन के लिए संधि संस्थापति कर लेते थे, परन्तु थोड़े ही दिन विश्राम करके फिर युद्ध की पिपासा से उन्मत्त हो उठते थे।"

हम जिस समय की बात कह रहे हैं, उस समय अङ्गरेज़ों की तरह फ़रासीस लोग भी धीरे धीरे भारतवर्ष में अपना बल-विस्तार कर रहे थे। वाणिज्य-रक्षा के बहाने से वे बंगाल-प्रदेश में तीन सौ गोरे और बहुत से सुशिक्षित गोलंदाज़ सिपाही तईनात रखते थे, और वीरता के लिए अङ्गरेज़ों की अपेक्षा फ़रासीस लोग ही भारतवासियों में अधिक प्रसिद्ध थे। युरोप में फ़रासीसों के साथ युद्ध छिड़ते ही अङ्गरेज़ों का अंतरात्मा कांप उठा। सदा के शत्रु फ़रासीसों की सेना के साथ नवाब की फ़ौज के मिल जाने पर अङ्गरेज़ों के सर्वनाश में देर ही क्या लगती? क्लाइव इसे जानता था। विलायत की

ख़बर पाते ही उसका जी दहल गया, और ऐसे नाज़ुक समय में बिना सोचे समझे सहसा सिराजुद्दौला से युद्ध ठानकर उसने जिन विपत्तियों को आह्वान देकर बुला लिया था, उनका ख़याल करके वह बहुत ही पश्चात्ताप करने लगा। निदान वह शीघ्र ही उमीचंद और जगत्-सेठ के शरणागत हो अपना कर्त्तव्य निश्चित करने की चेष्टा करने लगा। इस ओर एकाएक हुगली की लूट का समाचार सुनकर सिराजुद्दौला क्रोध से उन्मत्त हो कलकत्ते की ओर बढ़ रहा था! सब लोग कह रहे थे कि बड़ी मुद्दत के बाद अब अङ्गरेज़ों की नौका पाप-भार से पूर्ण हुई है।* यदि वे संधि के लिए आतुर हों तो भी कुछ फल न होगा, क्योंकि सिराजुद्दौला अब संधि के प्रस्ताव को कदापि न सुनेगा। परन्तु सिराजुद्दौला यदि "मनुष्यों के रक्त का प्यासा निरकुंश नवाब" होता तो ऐसा ही होता। उसने फिर भी आगा पीछा सोचकर शान्ति संस्थापित करना ही उचित समझा, और उसके लिए विशेष आग्रह प्रकट किया। कर्नल क्लाइव ने स्पष्ट शब्दों में स्वयम् ही स्वीकार किया है कि "संधि के लिए मुझे विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ी, स्वयम् सिराजुद्दौला ही ने सब से पहिले संधि का प्रस्ताव उठाकर सारी आशंकाओं को मेट दिया।" †

अधिकांश लोग कहने लगे कि सिराजुद्दौला ने संधि का प्रस्ताव क्यों उपस्थित किया? अङ्गरेज़ों के साथ संधि की चेष्टा करनी मानो समुद्र की तरंगों को बालू के बांध से रोकने के समान है। यदि वास्तव में संधि संस्थापित

---

* "मिल" जिल्द ११ पृष्ठ १५७।

† "थ्ररन्टन्स हिस्ट्री आफ़ दी ब्रिटिश इम्पायर।"

हो भी जाय तो वह कितने दिन मानी जायगी ? इङ्गलैंड के निकटवर्ती फ्रान्स देश के निवासियों के साथ ६०० बरस में भी जिनकी लड़ाई शान्त नहीं हुई, विदेश में उनकी धर्म-प्रतिज्ञा का पालन कै दिन होगा ? संधिपत्र तो सिर्फ़ अङ्गरेज़ों के मुंह की बात है; उनकी बात का क्या भरोसा ? हैं तो वही, जिन्होंने उस दिन विपत्ति पड़ने पर संधि का प्रस्ताव उठाया था; परन्तु बात पुरानी भी नहीं होने पाई कि लूट-मार के लोभ से हुगली का सर्वनाश कर डाला, और सर्वस्व लूट कर भी पेट न भरा ! कितने हो विशाल भवन भूमिसात् हो गये, कितने ही भूखे कंगालों की कुटियां जलकर ख़ाक होगईं, हुगली का इतिहास-प्रसिद्ध समृद्धिशाली नगर स्मशान की राख में परिणत होगया ! आज शायद फ़रासीसों के साथ युद्ध छिड़ने की आशंका से चिंतित और व्याकुल हृदय हो क्रिश्चियन अङ्गरेज़ भेड़ के बच्चे की तरह सरल-स्वभाव और कारुणिक स्वर से "शान्तिः शान्तिः" चिल्लाते और कातर विलाप करते हुए नवाब के दरबार की शरणागत हुए हैं; परन्तु अवसर मिलते ही वे फिर सिंह-रूप धारण न कर लेंगे, इसका क्या प्रमाण ?

यद्यपि उपरोक्त अनेक बातें उठाकर अधिकांश लोगों ने संधि के प्रस्ताव में बाधा डालने की बहुतेरी कोशिश की, तथापि सिराजुद्दौला ने इन सब बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। उसने कलकत्ते में पड़ाव डालते ही संधिपत्र निर्धारित करने के लिए अङ्गरेज़ों को निमंत्रित किया। किसी किसी ने कहा है कि सिराजुद्दौला अङ्गरेज़ों से भयभीत होकर संधि के लिए व्याकुल हो रहा था; परन्तु उस समय अङ्गरेज़ लोग अनेक मुसीबतों में फंसे थे, उनसे डरने का कोई कारण न था। उनके पास फ़ौज बहुत थोड़ी

थी, उसका भी कुछ भाग बंग-उपसागर की तरंगों से ताड़ित हो न जाने किधर बह गया था। जो लोग बंगाल में आये थे वे भी सब ज़िन्दा न थे, जो ज़िन्दा थे उनको बंगाल के जल-वायु ने थोड़े ही दिन में मृतःप्राय बना डाला था। जब महावीर क्लाइव सिराजुद्दौला का बढ़ाव रोकने के लिए गये तो उन्हें स्वयम् ही वहां से भागना पड़ा था। इतिहास-लेखक अर्मी ने लिखा है कि "कर्नल क्लाइव अपने बहुत से सिपाही और बन्दूकों को लेकर ज्योंही आगे बढ़े कि नवाब के सैनिकों ने उनपर तोपों के गोले बरसाये, और क्लाइव के अधिकांश सिपाही भाग गये।"* निदान उस समय अङ्गरेज़ों से भयभीत होने का कोई कारण न था; तथापि प्रश्न यह है कि फिर क्यों सिराजुद्दौला संधि के लिए आतुर हो रहा था?

सिराजुद्दौला अङ्गरेज़ों को भलामानस समझ कर विश्वास नहीं करता था। बाल्य संस्कारों के साथ यौवन के अनुभवों ने मिलकर उसे भली भांति समझा दिया था कि अङ्गरेज़ों का दमन किये बिना राज्य-सिंहासन कभी निष्कंटक न होगा। नवाब अलीवर्दी ने भी अपने आख़िरी वक़्त में उस से यही कहा था। सिराजुद्दौला को क्रमशः उन बातों का परिचय मिलने लगा, और अपनी दूरदर्शिता से अङ्गरेज़ों की भावी करतूतों के कीर्ति-कलापों की पहिले ही से आलोचना करके वह बहुत ही चिंतित हुआ। आज हुगली बरबाद हुआ, कल किसी अन्य स्थान का सर्वनाश होगा। सिराज ने देखा कि अङ्गरेज़ लोग मराठों के से उत्पात आरम्भ कर देंगे। कितने ही समृद्धिशाली प्रदेश स्मशान की भूमि बन

* "अर्मी" जिल्द २, पृष्ठ १३०।

जायँगे, कितने ही निरपराध नागरिक हाहाकार करेंगे, रक्त की कीचड़ से यह बंगभूमि कलंकित होगी, और इतना होने पर भी कभी शान्ति-सुख के उपभोग का अवसर हाथ न आयेगा। अङ्गरेज़ों को अधिकृत करने के सिर्फ़ दो ही उपाय हैं। या तो शत्रुता ठानना या फिर मित्रत्व के बंधन में बांधना; या तो तेज़ तलवार की धार, अथवा लेखनी की सहायता से। अलीवर्दी के अंतिम उपदेश के अनुसार शत्रुता करके देख ली, उससे परिणाम विपरीत ही हुआ। अङ्गरेज़ों का दमन न हुआ, बल्कि सदा के लिए शत्रुता का सूत्रपात हो गया। अतएव मित्रता के बंधन से उन्हें वशीभूत करने के लिए सिराजुद्दौला आतुर होने लगा। इससे उसकी प्रजाहितैषिता और अपूर्व बुद्धिमत्ता का परिचय पाकर षड़यंत्री मंत्रिदल इस प्रस्ताव में बाधा डालने की चेष्टा करने लगा।

नवाज़िशमोहम्मद और शौकतजंग के मर जाने पर इन षड़यंत्रियों की सभी आशाओं पर पानी फिर गया था। जो कुछ भी आशा शेष थी, वह केवल अङ्गरेज़ों से। ऐसी दशा में इन लोगों ने सोचा कि यदि अङ्गरेज़ों से भी सिराजुद्दौला का मित्रत्व-सम्बन्ध स्थिर हो गया तो वह बिलकुल ही निश्चिन्त हो जायगा। इसमें देश का कल्याण था, परन्तु दुष्ट मंत्रियों का सर्वनाश अवश्यम्भावी था। अब तक नवाब के विपद्ग्रस्त रहने के कारण ही ये लोग बचे रहे थे; इसलिए उसे निश्चिन्त हो जाने का मौक़ा देने की हिम्मत किसी को न हुई, और अङ्गरेज़ों के साथ सदा ही शत्रुता ठनी रखने और सिराजुद्दौला को उनसे सर्वदा सशंकित रखने के लिए ये लोग संधि के प्रस्ताव का प्रतिवाद करने लगे। परन्तु सिराजुद्दौला ने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया।

अङ्गरेज़ लोग संधि के लिए आतुर, और सिराजुद्दौला भी संधि के लिए लालायित। फिर भला संधि को कौन रोकता? उस समय षड़यंत्रियों ने मिलकर कुमंत्रणाएं करनी शुरू कीं। प्रकाश्य प्रतिवाद में परास्त होकर वे गुप्त रूप से सिराजुद्दौला की शान्ति-पिपासा में बाधा डालने का उद्योग करने लगे।

उस समय कलकत्ते में वणिकराज उमीचंद का राजमहल ही सर्वापेक्षा अत्यन्त रमणीय स्थान था। अतएव प्रदीप्त प्रदीपों के प्रकाश से विभूषित, उसके सुन्दर और सुसज्जित पुष्पोद्यान में सिराजुद्दौला का दरबार बैठा। चारों ओर गर्व से शिर ऊंचा किये हथियारबंद सेनापति खड़े, और यथोचित राजकीय वस्त्रों से अलंकृत मंत्री लोग उपयुक्त स्थानों पर हाथ जोड़े बैठे हुए। बीच में सिंहासन, जिसके ऊपर एक विशाल मसनद, और सुवर्णदण्डों के ऊपर विविध रत्नों की पंक्तियों से जड़ा विचित्र शामियाना लगा हुआ। उसी सुवर्ण-सिंहासन को सुशोभित करके सिराजुद्दौला की यौवनावस्था की सुकुमार कान्ति शीघ्र खिले हुए चम्पा के फूल की तरह विकसित हो रही थी। अङ्गरेज़ प्रतिनिधि वाल्स और स्क्राफ़्टन दरबार में आकर सिराजुद्दौला के सौभाग्य-गर्व की ज्वलंत ज्योति को देखकर आश्चर्य से स्तम्भित रह गये। वे सोचने लगे कि यह रत्न-जटित सिंहासन जिसके चरणों का स्थल है, ये सुशिक्षित और सुदृढ़ वीर जिसके सेनानायक हैं, ये विविध विद्याविशारद मंत्री जिसके परामर्शदाता हैं, यह विभवच्छटा जिसके रत्नमुकुट को समुज्ज्वल कर रही है,—सर्वनाश! भला इसके साथ अङ्गरेज़ व्यापारी किस बिरते पर लड़ाई लड़ने के लिए तैयार हो गये? परन्तु कुछ देर के बाद उन्हें ख़याल हुआ कि शायद यह सब इन्द्रजाल है। जान पड़ता है कि अङ्गरेज़ों को भयभीत करने

के लिए ही ये सब वाह्य आडम्बर बनाये गये हैं। यही सोचते हुए वे हिम्मत बांधकर ज़रा धीरे धीरे सिंहासन की ओर बढ़े, और सम्मानपूर्वक अभिवादन करके नवाब के सामने खड़े हुए।

सिराजुद्दौला ने सादर सम्भाषण से कुशल-प्रश्न पूछ कर उनसे कहा कि 'अपने और तुम्हारे दर्मियान संधि संस्थापित करने के लिए ही मैं इतनी दूर आया हूँ।" अङ्गरेज़ों ने कहा कि "हम भी संधि के लिए उत्कंठित हैं। लड़ाई-झगड़ों से हमारे व्यापार में वाधाएं पड़ती हैं।" इसके बाद सिराजुद्दौला संधि की शर्तें निर्धारित करने के लिए अङ्गरेज़ों को दीवान के डेरे में भेजकर स्वयम् विश्राम-भवन में चला गया।

अङ्गरेज़ों की मनोकामना पूरी हुई। वे हंसते हुए नवाब को अभिवादन करके चल दिये। परन्तु विद्रोही मंत्रियों की अभिलाष पूरी न हुई; अतएव वे विविध छल-चातुर्य से संधि के प्रस्ताव को रद्द करने की चेष्टा करने लगे।

ये जो दो अङ्गरेज़ राजपुरुष प्रतिनिधि-रूप से नवाब के दरबार में उपस्थित हुए, कोठीवाल सिविलियन थे। सिराजुद्दौला के नाम से बिचारों का अंतरात्मा सहज ही कांप उठता। मंत्रियों ने अनन्योपाय होकर इन्हीं दोनों अङ्गरेज़ों को सहसा भयभीत करके अपना काम बनाने की चेष्टा की।

ज्योंहीं ये दोनों अङ्गरेज़ दरबार के बाहर हुए कि चालाक उमीचन्द ने बड़े सच्चे शुभचिंतकों की भांति उनके कान में यह कहना शुरू किया—"देखते क्या हो? जान बचाना चाहो तो तुरंत भाग जाओ। क्या संधि का नाम सुनकर निश्चिन्त हो गये? यह संधि नहीं है, तुम्हारे हाथ से मौक़ा निकाल देने के लिए सिर्फ़ जाल रचा गया है। नवाब की फ़ौज आगई है,

परन्तु तोपें अभी पीछे पड़ी हुई हैं। इसीलिए संधि की बात उठाकर तुम्हें धोखा दिया जा रहा है। तोपें आ जाने पर क्षण-मात्र भी विलम्ब न किया जायगा। तुम आदमी ही कितने हो, सिराजुद्दौला की प्रबल सेना के सामने कै मिनट तक ठहर सकोगे ?" अङ्गरेज़ों का हृदय थरथर कांपने लगा। ग़ज़ब ! ये मीठी मीठी बातें, यह संधि की शान्ति-सूचना,—क्या सभी कूट कौशल हमारा अवसर छीनने के लिए रचे गये हैं ? अच्छा तो अब क्या उपाय है ? चेहरे का भाव देखकर उमीचंद ने समझ लिया कि दवा काम कर गई। मौक़ा पाकर कहने लगा:-"अब उपाय क्या ? बस दीवान के डेरे में जाते ही क़ैद हो जाओगे। अब भी चेतो। मशाल गुल करके अंधेरे अंधेरे क़िले में भाग जाओ।" उमीचंद का यह कहना था कि अङ्ग-रेज़ चट वहां से चल दिये; * दो में से किसी ने यह न सोचा कि सिराजुद्दौला तोपें न लेकर क्या ख़ाली हाथ ही इतनी दूर तक चला आया ?

सिराजुद्दौला को इस कुटिल षड्यंत्र का हाल कुछ भी न ज्ञात हुआ; परन्तु उस रात को अङ्गरेज़ों के पड़ाव में किसी ने सोने का अवसर न पाया। क्लाइव जलते अंगारे की तरह लाल होकर दौड़ा हुआ वाट्सन के पास पहुंचा, और उसके पास से ६०० जहाज़ी गोरे लेकर अपनी पैदल सेना में सम्मिलित किये। रात को ३ बजे के समय फ़ौज के साथ चुपचाप दबे पांव नवाब के पड़ाव पर आक्रमण करने के लिए अग्रसर हुआ। नवाब के पड़ाव में ६०,००० सिपाही और १८,००० सवार ४० तोपें लेकर ख़र्राटे की नींद सो रहे

* "आर्मी" जिल्द २ पृष्ठ १३१।

थे। क्लाइव ने यह न सोचा कि इस प्रकाण्ड सेना के जागते ही अङ्गरेज़ों का कैसा सर्वनाश संघटित होगा।

एक तो रात्रि का समय तिसपर कड़ाके का जाड़ा। सभी चुपचाप, सन्नाटा छाया हुआ। रात्रि की इस नीरवता में हलचल मचाती हुई अङ्गरेज़ों की तोपें भयंकर आवाज़ों से गरजने लगीं। गुड़ुम—गुड़ुमगुम—गुड़ुम - गुड़ुमगुम—गुड़ुम —गुड़ुमगुम—अङ्गरेज़ों की तोपें दनादन छूटने लगीं, गुड़ुम —गुड़ुम—गुम। एकाएक नींद से जागे हुए नवाब के सिपाहियों को इन तोपों की गरज का कारण न ज्ञात हो सका! भीषण कोलाहल से उसने नवाब की फ़ौज को व्याकुल कर डाला; जो सिपाही जहां थे, हथियार बांध एवं मशालें जलाकर तोपों के पास आ डटे। फिर तो नवाब की तोपों ने भी अपने प्रचंड विक्रम से आग बरसाने में कोई कसर न की।

सिराजुद्दौला भी उठा। सवेरा हो जाने पर भी नज़र से कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। धुएं के गुंबड़ों ने काले बादलों की तरह दिशाओं को व्याप्त कर डाला, तिस पर चारो ओर कोहरा छाया हुआ था। दूर या नज़दीक, कहीं नज़र कुछ काम न करती थी। केवल रह रहकर दोनों पक्षों की तोपों से कड़कड़ आवाज़ें आ रही थीं। बीचबीच में चारो ओर घायलों के आर्तनाद का कोलाहल मचा था। सब ने ख़याल किया कि लड़ाई हो रही है। परन्तु यह अचानक युद्ध छिड़ने का कारण क्या, सो कोई न जान सका।

सात बज गये, तथापि कोहरे के तूफ़ान, धुएं के समूह और तोपों की गरज में ज़रा भी कमी नहीं हुई। कौन कहां, सब तितर बितर हो गये। शत्रु दूर है या नज़दीक, कुछ जान ही न पड़ता था। केवल आवाज़ के सहारे मुसलमान सिपाही

तोपों में आग लगाते थे, और जलते हुए लोहपिण्डों के झुंड भकभक करते हुए बाहर निकल रहे थे। जब भगवान् भास्कर की किरणों का विकास हुआ, तब सब लोगों ने बड़ी आश्चर्य-दृष्टि से देखा कि क्लाइव की समर-पिपासा शान्त हो गई है। उनकी गर्वोन्नत गोरा फ़ौज नीचे को शिर झुकाये दूर मार्ग से क़िले की ओर भागी जा रही है, और मुसलमानों के अश्वारोही सैनिक उनके पीछे घोड़े डालकर दौड़ते जा रहे हैं। अङ्गरेज़ों की दो तोपें मुसलमान सिपाहियों ने छीन ली हैं। जहाँ तहां चारो ओर अङ्गरेज़ी सिपाहियों के वीर मुंड पृथ्वी पर पड़े हुए रक्त की कीचड़ में लोट रहे हैं। *

अङ्गरेज़ों का सर्वनाश हो गया! एक सामान्य सेना लेकर क्लाइव और वाट्सन बंगाल में पधारे थे, उसमें से क्लाइव की हठधर्मी के कारण एकही दिनमें १२० अङ्गरेज़ धराशायी हुए! नवाब के भी सौ से अधिक सिपाही कालग्रास हुए! नबाबी डेरों में भी हाहाकार मच गया! कितने ही हतभाग्यों ने नींद से जाग उठकर बैठने का भी मौक़ा नहीं पाया, और कितने ही विचारे, शत्रु-मित्र दोनों पक्षों की इकट्ठी अग्निवर्षा में भस्मीभूत हो गये!

जब सिराजुद्दौला इसके कारण का अनुसंधान करने के लिए बैठा कि अचानक यह युद्ध-कोलाहल क्योंकर उपस्थित हुआ तो अपने मंत्रियों के कूट-कौशलों की वीरता का परिचय

* "अर्मी" के इतिहास में इस रात्रि-रण का पूरा वृत्तान्त दिया हुआ है। पराजित अङ्गरेज़ी सेना ने इसके लिए क्लाइव की जो भर्त्सना की थी, उसका भी उसमें उल्लेख है। इस अवसर पर क्लाइव की वीर-कीर्ति प्रशंसा-लाभ न कर सकी।

पाकर उसका जी दहल उठा। मीरजाफ़र के व्यवहार से उसे यह स्पष्ट ज्ञात हो गया कि वह भी इस षड़यंत्र में सम्मिलित है। ऐसे स्वामिभक्त सरदारों और मंत्रियों के रहते सिराजुद्दौला को फिर अङ्गरेज़ों से लड़ने की हिम्मत न हुई। सुरक्षित और निरापद स्थान में जाकर उसने डेरे डलवाये, और संधि-संस्थापन के लिए शीघ्र ही अङ्गरेज़ों को बुला भेजा।

परन्तु अङ्गरेज़ लोगों को सहसा इस बात पर विश्वास न हो सका कि जिस सिराजुद्दौला ने अल्पकाल से अङ्गरेज़ों के दमन का निश्चय किया था, वही अब सरल-भाव से संधि के लिए लालायित हुआ है। क्लाइव रण से भयभीत होने के कारण संधि के लिए व्याकुल था, परन्तु वाट्सन ने उसको सावधान करने के लिए निम्नलिखित पत्र भेजा :—

"मुझे इस बात का पूरा निश्चय है कि नवाब का पत्र हमको बहकाने के लिए है। जिससे वह भाग जाय, और उसे कुछ समय मिल जाय, जिसमें उसकी और फ़ौज आ जाय। इसका परिणाम हम लोगों के लिए सर्वनाश-जनक हो सकता है। मेरी राय तो उसपर पीछे से हमला करने की है, जबकि वह चला जा रहा हो। उसकी तोपें छीन ली जायँ। इस अवसर पर इसी एक उपाय का उपयोग किया जा सकता है। क्योंकि महाशय! जबतक उसकी अच्छी तरह ख़बर न ली जायगी तबतक वह संधि करने के लिए हर्गिज़ तैयार न होगा। इसलिए हम लोगों को केवल कूट नीति ही पर भरोसा नहीं रखना चाहिये, बल्कि हथियारों से भी कुछ काम लेना चाहिये। संधि और शान्ति की अपेक्षा सर्वत्र प्रायः इसी उपाय का अवलम्बन किया जाता है।"

परन्तु क्लाइव ने वाट्सन के उक्त परामर्श पर ध्यान नहीं दिया। मंत्रियों के कूट-कौशलों और षड़यंत्रों का परिचय पाकर सिराजुद्दौला संधि के लिए इतना आतुर हो रहा था कि क्लाइव ने जो कुछ भी चाहा, उसने उसी को स्वीकार करके सं० १७५७ ई० में सातवीं फ़रवरी को एक संधिपत्र निश्चित कर डाला। अङ्गरेज़ों के अनुरोध से मीरजाफ़र और रायदुर्लभ को भी इस संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े। इतिहास में इसी का नाम है,—"अलीनगर का संधिपत्र।"

इसी संधिपत्र के द्वारा अङ्गरेज़ सौदागरों को बादशाही फ़रमान में लिखे हुए समस्त व्यापारीय अधिकार पुनः प्राप्त हुए। कलकत्ते के क़िले की मरम्मत करा लेने की आज्ञा मिल गई। वहां टकसाल क़ायम करके उन्हें बादशाह के नाम का सिक्का ढलवाने का अधिकार दिया गया, और कलकत्ते की लूट में अङ्गरेज़ों की जो क्षति हुई थी, सिराजुद्दौला ने उसे पूरा करना स्वीकार किया।

---

## बाईसवां परिच्छेद।

—:*:—

## संधि का परिणाम!

संधि होगई, परन्तु अङ्गरेज़ों के मन का मैल नहीं मिटा। सिराजुद्दौला ने मित्रता-बंधन को दृढ़ करने के लिए वाट्सन और ड्रेक के पास यथोचित "उपहार" भेजा। औरों ने तो उसे ग्रहण कर लिया, परन्तु वाट्सन ने उसके प्रतिवाद में कहला भेजा कि "हम इङ्गलैंड के राजा की प्रजा हैं, आपका "उपहार" ग्रहण करके आपकी अधीनता स्वीकार नहीं कर सकते।"*

अलीनगर की संधि से अपना अपमान समझकर सभी अङ्गरेज़ क्लाइव पर बिगड़ उठे। जो अङ्गरेज़ अपने प्राण बचाने के लिए सब से पहले कलकत्ते से भाग गये थे, मौक़ा पाकर वेही बड़े ज़ोर की आवाज़ों से क्लाइव को कायर इत्यादि मधुर सम्बोधनों से परितृप्त करने लगे। इसीसे वाट्सन ने समझ लिया था कि अलीनगर का संधिपत्र बहुत दिन न माना जायगा, और शायद इसीलिए नमकहरामी करना अनुचित

---

* पलासी-युद्ध के अंत में मीरजाफ़र ने जो "उपहार" वाट्सन के पास भेजा, उसे स्वीकार करने में कर्त्तव्यनिष्ठ वाट्सन ने कोई आपत्ति न की, और उसे ग्रहण करके मीरजाफ़र को यह लिख भेजा, कि "अत्यंत कृपापूर्वक आपने जो " उपहार " मेरे लिए मिरज़ा जाफ़रबेग के हाथ भेजा, वह मुझे मिला।"

समझकर उन्होंने सिराजुद्दौला के उपहार को ग्रहण करना स्वीकार न किया था।

भविष्य में हौस-आफ़-कामन्स में गवाही देते समय लार्ड क्लाइव ने कहा थाः—"उस समय हमारे पास सिर्फ़ २००० फ़ौज थी, यदि फ़रासीस नवाब के पक्ष में मिल जाते तो सहज ही में अङ्गरेज़ों का सर्वनाश संघटित होता। वीरत्व की उत्तेजना में ज्ञानशून्य होकर मैं भी संधि के प्रस्ताव पर हर्गिज़ ध्यान न देता। परन्तु केवल कम्पनी बहादुर का ख़याल करके ही वाणिज्य की रक्षा के लिए मुझे ऐसे (अपमान-सूचक) संधि-बंधन से सहमत होना पड़ा था।"

जो होना था वह हो गया। अब अंङ्गरेज़ों ने किसी तरह फ़रासीसों को यहां से सदा के लिए निकाल देने का निश्चय किया। इस विषय में नवाब की क्या राय है, यह जानने के लिए वे व्याकुल होने लगे। सिराजुद्दौला इस बात को सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ,—क्या यही शान्तिप्रियता का परिचय है? अभी एक सप्ताह भी व्यतीत नहीं हुआ, क्या इसी बीच में फिर लड़ाई? उसने नितान्त उदासीन भाव से अङ्गरेज़ों से कहला भेजा कि अङ्गरेज़ों की तरह फ़रासीस भी मेरी प्रजा और विदेशी सौदागर हैं। मैं अपने आश्रितों के सर्वनाश में कदापि सहायता न दूंगा। अङ्गरेज़ों के चुप हो जाने पर सिराजुद्दौला ने निश्चिन्त-हृदय हो कलकत्ते से प्रस्थान किया।

अग्रद्वीप में आकर सिराजुद्दौला को ख़बर मिली कि उसकी अनुपस्थिति का मौक़ा पाकर अङ्गरेज़ों ने फिर सिंह-मूर्त्ति धारण की है, और कन्धों पर संगीनें रख चन्दन-नगर को लूटने की चेष्टा कर रहे हैं। वाट्स साहब, जो नवाब

के साथ ही मुर्शिदाबाद को जा रहे थे, वे इस बात को सरासर मिथ्या प्रमाणित करने के लिए विविध प्रयत्न करने लगे। उनके अनुरोध से वणिकराज उमीचंद ने आकर ब्राह्मण का पादस्पर्श कर शपथ खाई कि "अङ्गरेज़ लोग कभी संधि नहीं तोड़ेंगे, उनके समान सत्य-प्रिय जाति भारतवर्ष में दूसरी नहीं है। वे जो कुछ कहते, वही करते हैं।" ईश्वर का नाम लेकर धर्म-शपथ देने पर सिराजुद्दौला ने उसकी बात मान ली, तथापि अङ्गरेज़ों को सावधान करने के लिए उसने वाट्सन को लिख भेजाः—

"सारे झगड़े-बखेड़ों का समूल सर्वनाश करने के लिए ही मैंने पुनः वाणिज्य का अधिकार प्रदान करके संधि क़ायम की है। तुमने भी उस पर हस्ताक्षर करके यह प्रतिज्ञा की है कि देश में हम कोई झगड़ा-फ़साद नहीं उठायेंगे। परन्तु मुझे ज्ञान पड़ता है कि तुम शायद हुगली के निकटस्थ फ़रासीसों की कोठी पर आक्रमण करके शीघ्रही समरानल प्रज्ज्वलित करोगे। मेरे राज्य में तुम क्यों फिर से कलह की सृष्टि का उपाय कर रहे हो? यह समस्त देशों के लिए सुनीति-विरुद्ध व्यवहार है। तैमूरलंग के समय से आजतक कभी यहां युरोपियन लोग परस्पर झगड़ा नहीं मचा सके। तुम यदि युद्ध के लिए तैयार होगे तो मैं और क्या करूंगा, सिवाय इसके कि अपने राजकीय कर्त्तव्य का पालन और अपने सम्मान की रक्षा करने के लिए सेना के सहित मुझे फ़रासीसों के पक्ष का अवलम्बन करना पड़ेगा। अभी तो उस रोज़ संधि की थी, क्या इसी बीच में फिर युद्ध ठान देना चाहते हो? देखो, मराठों ने बहुत दिन तक देश में अशान्ति मचा रक्खी थी, परन्तु जिस दिन से उन्होंने संधि

की, उस दिन से आजतक कभी उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी, और न भविष्य में उनसे ऐसी सम्भावना ही है। धर्म-शपथपूर्वक संधि संस्थापित करना और फिर जान बूझकर इसके विपरीत आचरण करना घोर पाप है। तुमने संधि की है, अतएव संधि की शर्तों का पालन करने के लिए बाध्य हो। ख़बरदार! मेरे राज्य में लड़ाई झगड़ा न मचे। मैंने जो जो प्रतिज्ञाएं की हैं, उनका अक्षरशः प्रतिपालन होगा।"*

यह पत्र लिखकर ही सिराजुद्दौला निश्चिन्त नहीं हुआ। उसने प्रजा की रक्षा के लिए महाराज नन्दकुमार की अधीनता में हुगली, अग्रद्वीप और पलाशी में सेनाएं नियुक्त कर दीं, और स्वयम् राजधानी में वापिस आया।

मुर्शिदाबाद में आकर ख़बर मिली कि अङ्गरेज़ों ने फ़ौज लेकर चन्दननगर पर आक्रमण करना ही निश्चित किया है! यह ख़बर पाते ही क्षणमात्र का भी विलम्ब न करके सिराजुद्दौला ने पुनः वाट्सन को एक पत्र लिखाः—

"कल जो पत्र मैंने तुमको लिखा है, वह शायद तुम्हें मिला होगा। उस पत्र के लिखने के बाद ही फ़रासीसों के एक वकील से मुझे यह मालूम हुआ कि तुमने शायद चार पांच अतिरिक्त फ़ौजी जहाज़ मंगवाये हैं, एवं और भी मंगवाने की चेष्टा कर रहे हो। मैंने यह भी सुना है कि तुम केवल चन्दननगर ही का नाश करके न रहोगे, बल्कि वर्षा के अंत में फ़ौज लेकर मुर्शिदाबाद भी आओगे। क्या यह व्यवहार

---

* मूल पत्र का पता नहीं चलता; अंगरेज़ों ने इन सब पत्रों का जो अंगरेज़ी अनुवाद कराया था वह 'ईव्ज़ जर्नल' नामक पुरातन ग्रन्थ में सम्मिलित है।

वीरोचित है, अथवा क्या यह भलेमानसों को उचित है ? यदि संधि-पालन की इच्छा हो तो जहाज़ों को वापिस कर दो। उस रोज़ संधि की है, कुछ भी दिन न गुज़रने पाये कि प्रतिज्ञा तोड़ने के लिए तैयार हो गये। क्या यह भद्र पुरुषों की नीति है ? मराठों के पास बाइबिल नहीं,—परन्तु वे संधि का उल्लंघन तो नहीं करते। बड़े आश्चर्य की बात है,—सहसा विश्वास करते भी हिचकिचाहट होती है कि बाइबिल की धर्म-शिक्षा लेकर परमेश्वर तथा यीशुखृष्ट की दुहाई दे संधि की, परन्तु व्यवहार में उसका पालन नहीं कर सकते !"*

इस पत्र में जैसा व्यंग भरा है, वैसा ही यह तीव्र भाषा में लिखा गया था। जान पड़ता है कि इसे पढ़कर अङ्गरेज़ों की आंखों में शरम आगई, और वे नवाब की आज्ञा के बिना फ़ौज लेकर चन्दननगर पर आक्रमण करने के लिए तैयार नहीं हुए। तब अनन्योपाय हो, एक नया बहाना बनाकर वाट्सन ने सिराजुद्दौला को यह प्रत्युत्तर लिखा :—

"आपका १९ फ़रवरी का पत्र आज २१ फ़रवरी को हस्तगत हुआ। पत्र को पढ़ने से ज्ञात हुआ कि फ़रासीसों के विरुद्ध युद्ध-यात्रा करने से आप सहमत नहीं हैं। यदि हम यह जान सकते कि इससे आप इतने असन्तुष्ट होंगे तो हम आपके राज्य की शान्ति को भंग करने की चेष्टा न करते। फ़रासीस लोग यदि हमसे संधि करलें तो हम लड़ाई लड़ना नहीं चाहते। परन्तु केवल संधि करके ही हम न रहेंगे, सूबेदार की हैसियत से आपको उनका ज़ामिन होना पड़ेगा। यह आपको अच्छी तरह ज्ञात होगा कि सारे संसार में हमारे

---

* 'ईव्ज़ जर्नल'।

समान सत्य-प्रिय लोग किसी भी देश में नहीं हैं। मैं आपसे सत्य की सौगंद खाकर कह रहा हूं कि हम लोग सत्य का उल्लंघन कदापि न करेंगे। प्रभु यीशुखृष्ट और परमेश्वर को साक्षी देकर हम पुनः कहते हैं कि यदि आप फ़रासीसों के साथ संधि करादें तो हम अपने सत्य को कदापि न तोड़ेंगे।"*

वाट्सन के प्रत्युत्तर को पाकर सिराजुद्दौला ने कहा,—तथास्तु। यदि वह कलह-प्रिय चंचल नौजवान होता तो इस अवसर पर अङ्गरेज़ों को दस बातें सुना सकता था। वह कह सकता था कि फ़रासीसों के साथ तुम्हारी संधि हो या न हो, उससे मेरा क्या सम्बन्ध ? मेरे राज्य में कलह-विवाद न मचाने की प्रतिज्ञा करके उस दिन तुमने जिस संधिपत्र पर हस्ताक्षर किये हैं, उसके साथ फ़रासीसों का सम्पर्क ही क्या ? परन्तु सिराजुद्दौला ने इन कूट तर्क-वितर्कों को न उठाकर प्रसन्नतापूर्वक यह पत्र लिख भेजा :—

"फ़रासीस-युद्ध-सम्बन्धी पत्र पाकर मर्म ज्ञात हुआ। मैं फ़रासीसों को कलह बढ़ाने में कदापि सहायता नहीं दूंगा, इससे निश्चिन्त रहो। बल्कि यदि ख़्वाहमख़्वाह को वे ही तुमसे युद्ध ठानने की चेष्टा करेंगे तो मैं अपनी सेना के साथ उसमें बाधा डालूंगा। तुम्हारे चन्दननगर पर आक्रमण करने के इरादे को सुनकर, जो मुझे उचित प्रतीत हुआ, वही मैंने तुम्हें लिख भेजा था। मैंने फ़रासीसों को उत्साहित करने के लिए सेना नहीं भेजी। तुम्हारे कलह-विवाद और लड़ाई-झगड़ा मचाने से मेरी प्रजा का सर्वनाश होगा,—यह सोचकर मैंने प्रजा की रक्षा के लिए ही भिन्न भिन्न स्थानों पर अपनी

---

* 'ईव्ज़ जर्नल'।

सेना नियुक्त कर रक्खी है। यह ख़बर पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरा पत्र पाकर तुमने चन्दननगर पर आक्रमण करने का विचार त्याग दिया। संधि-संस्थापन के लिए फ़रासीसों को पत्र लिखता हूं। संधि हो जाने पर एक राजकर्मचारी को भेज दूंगा, और तुम्हारा संधिपत्र अपने दफ़्तर में रखवा लूंगा। मित्र-भाव स्थिर रहने के लिए ही मैंने तुम्हारे साथ संधि की है, इसके विपरीत कदापि कोई बात न होगी।

हां, एक बात और है। सुना है कि दिल्ली की फ़ौज मेरे राज्य पर आक्रमण करने के लिए आरही है। इसलिए मैं शायद शीघ्र ही पटना जाऊंगा। उस समय यदि तुम अपनी सेना से मेरी सहायता करोगे तो मैं तुम्हें एक लाख रुपया पुरस्कार दूंगा।"*

नवाब का यह पत्र जिस समय कलकत्ते पहुंचा तो अङ्गरेज़ों की मंडली में बड़ा गड़बड़ मच गया। फ़रासीसों ने संधि के लिए अपना प्रतिनिधि कलकत्ते को भेज दिया, संधिपत्र लिख गया, परन्तु केवल पारस्परिक गृह-कलह के कारण अङ्गरेज़ सौदागर उस संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने में आनाकानी करके समय खो रहे थे। सारे झगड़ों का मूल कारण वाट्सन साहब ही थे। सब लोग राज़ी थे, अकेले वाट्सन को स्वीकार नहीं था। वेही सबकी राय का प्रतिवाद करके झगड़ा मचा रहे थे। उनका प्रधान तर्क यह था कि "जबतक पांडिचेरी के फ़रासीस-दरबार के हस्ताक्षर संधिपत्र में न हों तबतक संधि करना कदापि उचित नहीं है।" क्लाइव ने एक कमेटी करके उसमें संधि के लिए बहुत कुछ अनुरोध

---

* 'ईञ्ज जनेज़'।

प्रकट किया, और सब के सहमत होने पर वाट्सन के पास संधिपत्र भेज दिया। वाट्सन ज़रा भी विचलित नहीं हुए। निदान संधि नहीं हुई। किसके दोष से नहीं हुई, यह क्लाइव ने स्वयम् ही अपने एक मंतव्य में लिखा है, जिसका सारांश यह है :—

"सदस्यगण! आप एक बार विचार करके देखिये, हमारे इन आचरणों के विषय में संसार के मनुष्यों में कैसी धारणा उत्पन्न होगी। हमने वचन दिया था कि चन्दननगर की कौंसिल और वहां के अध्यक्ष का प्रस्ताव प्राप्त होने और प्रतिनिधि भेजने पर भागीरथी-प्रदेश के मध्य में निरपेक्ष-भाव से वाणिज्य करने के नियमों को हम स्वीकार करेंगे, और उनके साथ निरपेक्ष-भाव ही से वाणिज्य के अधिकार की रक्षा करेंगे। क्या यह कहकर हमने एक तरह से अपना निश्चय उनपर प्रकट नहीं किया? क्या यह तय नहीं हो गया था कि उनके प्रतिनिधि के आने पर दोनों पक्षों की राय से संधि के नियम निश्चित होकर स्वीकार किये जायँगे? भला नवाब का क्या ख़याल होगा? हम लोग उनको वचन दे चुके, और यह निश्चय हो चुका कि फ़रासीस भी संधि की शर्तों का प्रतिपालन करेंगे। ऐसी दशा में अब अपना निश्चय बदल डालने से वह और सारे संसार के लोग यही कहेंगे कि ये लोग अपनी बात के कच्चे हैं, अथवा धर्म-अधर्म का इन्हें कुछ ख़याल नहीं है। जो हो, यह दिखाने के लिए, पहले से साफ़ और सच्ची बात कह रखना अच्छा है कि मेरा इसमें कोई अपराध नहीं। मैं यह नहीं जानता था कि मेरे द्वारा संधि के नियम स्थिर और निर्दिष्ट हो चुकने के बाद वाट्सन उसका प्रतिवाद करेंगे। उनके पत्र से जो राय प्रकट होती है, उससे

में उनका अभिप्राय बिलकुल विपरीत समझता था। और मेरी समझ में आप सब लोग ऐसा ही ख़याल करते थे, अन्यथा समस्त विचारवान् पुरुषों के निकट निन्दाभाजन होने के लिए आप ऐसा कदापि न करते।" *

वाट्सन इससे भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने समझा कि दिल्ली के बादशाह के आक्रमण से अत्यन्त भयभीत होकर सिराजुद्दौला ने अङ्गरेज़ों से सहायता मांगी है, अतएव इस समय उसे विवश होकर चन्दननगर को लूटने की आज्ञा देनी पड़ेगी। वाट्सन का शायद यह ख़याल था कि सिराजुद्दौला के लिए धर्म-अधर्म कौन चीज़। अपने मतलब के लिए उसे अवश्य ही अङ्गरेज़ों को राज़ी करना पड़ेगा। यही ख़याल करके उसने विविध प्रकार से लम्बी चौड़ी भूमिका बांधकर सिराजुद्दौला को एक पत्र लिख भेजा, जिसका सार मर्म यह था :—

"चन्दन नगर के फ़रासीसी क़िले में बहुत बड़ी सेना मौजूद है। उसके रहते हुए हम दूर-देश को युद्ध-यात्रा करने में असमर्थ हैं। यदि आप आज्ञा दें तो हम इन फ़रासीसों का सर्वनाश करके सेना के सहित आपके साथ पटने चल सकते हैं।"

सिराजुद्दौला घोर विपत्ति में पड़ गया। इस ओर बादशाही फ़ौज बड़े ज़ोरों से आगे बढ़ रही थी, उधर अङ्गरेज़-सिंह फ़रासीसों के सर्वनाश की चेष्टा कर रहे थे! सिराजुद्दौला किस ओर से रक्षा करे? यदि पदाश्रित फ़रासीसों का सर्वनाश करवा के अङ्गरेज़ों की सहायता को मोल लेने पर

* 'सिलेक्ट कमेटी प्रोसीडिंग', ४ मार्च, १७५७।

तैयार होना तो शायद दोनों ही ओर से उसकी रक्षा हो सकती, और ऐसी दशा में कदाचित् इतिहास-लेखक भी दोनों भुजाएं उठाकर सिराजुद्दौला की जय-ध्वनि से दिशाओं को व्याप्त कर डालते। परन्तु सिराजुद्दौला से यह नहीं हुआ। शरणाश्रित फ़रासीसों का सर्वनाश करके अङ्गरेज़ों से फ़ौज की भिक्षा मांगना उसे न स्वीकार हुआ। उसने वाट्सन के प्रस्ताव का कुछ प्रत्युत्तर नहीं दिया, और बाहुबल से अपनी रक्षा करने के लिए सैन्य-संग्रह की चेष्टा करने लगा। इसीसे सिराजद्दौला के सर्वनाश का सूत्रपात हुआ।

---

# तेईसवां परिच्छेद।
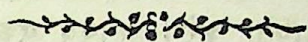
## चन्दननगर की बरबादी।

नवाब का प्रत्युत्तर न पाकर अंगरेज़ लोग अपने कर्त्तव्य का निश्चय न कर सके। क्लाइव ने कहा कि या तो संधि करो, या फ़ौरन् ही युद्ध की घोषणा कर दो। वाट्सन संधि के लिए भी राज़ी न थे, और बिना नवाब की अनुमति के युद्ध-घोषणा कर देने के लिए भी तैयार नहीं थे। अंततः संधि के विषय में जो लिखा पढ़ी हो रही थी, वह उसी तरह फिर होने लगी; परन्तु किसी एक बात का निपटारा नहीं हुआ!

इस विषय में किसी को सन्देह नहीं था कि सिराजुद्दौला फ़रासीसों के सर्वनाश में सहायता कदापि नहीं करेगा। इसलिए सभी समझ गये थे कि फ़रासीसों के साथ युद्ध-कलह मचाने पर फल यह होगा कि एक प्रकार से सिराजुद्दौला के साथ ही शत्रुता ठन जायगी। यही सोचकर सब ने कहा कि "संधि को तोड़ना घोर पाप है, नवाब के निषेध का उल्लंघन करके युद्ध नहीं करना चाहिये।" परन्तु इसी बीच में मदरास और बम्बई से फ़ौज की कई पलटनों के आने की सूचना पाते ही अङ्गरेज़ों ने सारे सोच-विचारों को परित्याग किया, और सभा का अधिवेशन करके अपने कर्त्तव्य का निश्चय करने लगे।

इस मंत्रणा-सभा में क्लाइव ने प्रधान-मंत्री का आसन

ग्रहण किया। गवर्नर ड्रेक, मेजर किलप्याट्रिक और वेचर साहब सदस्य हुए। क्लाइव की वक्तृता समाप्त होने पर सब ने समझ लिया कि अब नवाब से युद्ध की आज्ञा मिलने की आशा नहीं है, बल्कि यही सम्भव है कि वह अपनी सेना से फ़रासीसों की सहायता करे। अतएव एकाएक चन्दननगर पर आक्रमण करने से, नवाब के साथ अलीनगर की जो संधि हुई थी, वह भंग हो जाती, और नवाब से पुनः शत्रुता का सूत्रपात हो जाता। इसलिए मेजर किलप्याट्रिक और वेचर ने कहा कि "ऐसी दशा में फ़रासीसों से युद्ध ठानना अनुचित है।" क्लाइव ने उनकी बात का प्रतिवाद करते हुए कहा,—"किसकी संधि ? यही तो चन्दननगर पर आक्रमण करने का उपयुक्त अवसर है। "इसपर सब लोग ड्रेक साहब के मुंह की ओर देखने लगे। ड्रेक साहब ने भी इधर उधर से बहुत कुछ कहा, परन्तु प्रस्तुत प्रश्न का वे भी कुछ निर्णय न कर सके। उनकी राय किसी में गिनी ही न गई! दो आदमी संधि के पक्ष में और एक युद्ध के पक्ष में, ऐसी दशा में बहुमत से संधि करना ही निश्चित होता; परन्तु इतने में मेजर किलप्याट्रिक सहसा क्लाइव से पूछने लगे:—"अच्छा, इस समय हमारी जो सैनिक शक्ति संगठित है, क्या उससे नवाब और फ़रासीसों की फ़ौजों को परास्त करना सम्भव नहीं है ?" क्लाइव ने उत्तर दिया,—निश्चय सम्भव है। बस, किलप्याट्रिक अपनी राय बदलकर कहने लगे,—अच्छा तो हम भी संधि नहीं चाहते। सभा विसर्जित हुई, क्लाइव ने बाहर आकर फ़रासीस दूत को बुलाया, और कह दिया कि "संधि नहीं, अब केवल युद्ध ही होगा।"

फ़रासीसों ने इसके सम्बन्ध में किसी तरह की

आवाज़ नहीं उठाई कि एकाएक अङ्गरेज़ों की राय में क्यों परिवर्तन हो गया। अङ्गरेज़ उनके पुराने मित्र थे! इस लिए वे सहज ही में समझ गये कि नई पलटन के आजाने के कारण ही अङ्गरेज़ों की राय बदली है। उन्होंने चन्दन-नगर को ख़बर भेज दी कि अब "संधि की आशा व्यर्थ है, युद्ध ही होगा।"

अङ्गरेज़ों की कौंसिल ने युद्ध का निश्चय कर लिया, परन्तु वाट्सन इससे सहमत नहीं हुए। क्लाइव के होश ठिकाने न रहे, जब उसने सुना कि वाट्सन नवाब की आज्ञा के बिना कदापि युद्ध-घोषणा न करेंगे। जहाज़ सब वाट्सन के अधिकार में थे, और बिना जहाज़ों के चन्दननगर पर आक्रमण करना ही व्यर्थ था। अतएव सब लोग वाट्सन को समझाने के लिए व्यस्त होने लगे। परन्तु वाट्सन का संकल्प अटल था। सभी को निश्चय हो चुका था कि नवाब की आज्ञा मिलनी असम्भव है, तथापि वाट्सन के अनुरोध से नवाब की अनुमति के लिए ठहरना पड़ा।

वाट्सन का ख़याल था कि सिराजुद्दौला दिल्ली के डर से बेतरह डरा हुआ है। अतएव इस समय ज़रा डाट-डपट के साथ पत्र लिखने पर अवश्य ही आज्ञा मिल जायगी। इसी उद्देश से उसने निम्नलिखित पत्र भेजा :—

"अब साफ़ साफ़ कहने का समय आगया है। शान्ति की रक्षा करना यदि आपको अभीष्ट है, असहाय प्रजावर्ग के जान-माल की रक्षा करना यदि आपका राज-धर्म है तो आज से दस दिन के भीतर हमारा सब पावना रुपया कौड़ी-गंडे से चुका दीजिये, अन्यथा अनेक दुर्घटनाएं उपस्थित होंगी। हम केवल सरल व्यवहार करते आ रहे हैं, और इस समय

भी सरल व्यवहार करने के लिए ही यह कह रहे हैं कि हमारी अवशिष्ट फ़ौज शीघ्र ही कलकत्ते में पहुंचेगी, और ज़रूरत पड़ने पर और भी जहाज़ फ़ौज लेकर आयेंगे। इन सेनाओं की सहायता से हम इस देश में ऐसी घोर समरानल प्रज्ज्वलित कर देंगे कि समस्त जाह्नवी का जल सुखाकर भी आप उसे न बुझा सकेंगे। बस, इतना ही लिखकर हम विदा होते हैं, परन्तु इस बात को अच्छी तरह याद रखियेगा कि जिस व्यक्ति ने जीवन में आज तक किसी के साथ भी अपनी बात के विरुद्ध आचरण नहीं किया, उसी ने अपने हाथ से यह पत्र लिखा है।" *

सिराजुद्दौला ने इस पत्र के गूढ़ मर्म को समझकर यह उत्तर लिख भेजाः—

"तुमसे मैंने सेना की जो सहायता मांगी थी, उसके सम्बन्ध में क्या हुआ? संधिपत्र में स्वीकार किया हुआ रुपया मैं शीघ्र ही भेजे देता हूँ। होली के त्योहार में राज-कर्मचारी-गण उत्सव मना रहे थे, केवल इसी कारण देर हुई। संधि भंग करने का मुझे अभ्यास नहीं है। जो कुछ मैंने स्वीकार किया है, उसे अदा करने के समय मैं व्यर्थ की बातें बनाकर टालमटाल न करूंगा। यदि तुम्हारे ऊपर कोई आक्रमण करे तो उस समय मैं तुम्हारी मदद करूंगा। मैंने अब तक फ़रासीसों को एक कौड़ी की भी सहायता नहीं भेजी है, केवल अपनी प्रजा की रक्षा के लिए ही हुगली के फ़ौजदार नन्दकुमार के पास थोड़ी सी सेना भेज दी है। इस देश की प्राचीन प्रथा का उल्लंघन करके मेरे राज्य में किसी तरह की

---

* 'इंग्ज़ जर्नल'।

युद्ध-कलह मत मचाओ, यही मेरा एकमात्र अनुरोध है।" *

यह पत्र पाकर सबने समझ लिया कि सिराजुद्दौला किसी तरह लड़ाई की इजाज़त नहीं देगा। जब इस तरह काम न चला तो वाट्सन ने चतुरता से कार्य सिद्ध करने की ठानी। किस लिए और किसके दोष से संधि नहीं हुई, इन सब बातों का यथातथ्य उल्लेख न करके वाट्सन ने एक पत्र में सिराजुद्दौला को लिख भेजा कि फ़रासीसों ही के दोष से संधि नहीं हुई। साथ ही नवाब से यह भी पूछा कि जो ऐसे चरित्र के आदमी हैं, आपकी सम्मति में उनके साथ किस तरह का व्यवहार करना उचित है। सिराजुद्दौला ने इस पत्र को साधारण-पूरित समझकर सरल-भाव से ही यह प्रत्युत्तर लिखा :—

१० मार्च सन् १७५६ ई०

"मेरा पत्र पाकर तुमने मुझे जिस प्रत्युत्तर से बाधित किया है, वह मुझे मिला। तुमने लिखा है कि "हमारा सारा सन्देह दूर हो गया है, और आपके पत्र को पाकर हमने चन्दननगर पर आक्रमण करने का विचार त्याग दिया है। फ़रासीसों के साथ लिखा-पढ़ी भी हो गई है। परन्तु संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करने के समय फ़रासीस लोगों ने कहा कि हमारे सेनानायक इस संधि की शर्तों का पालन करेंगे या नहीं, इसका कोई निश्चय नहीं।" यदि एक फ़रासीस जिसने हस्ताक्षर किये हैं, दूसरा आकर उसका प्रतिवाद करे तो उन पर विश्वास कैसे किया जा सकता है?" अस्तु, यह कुछ भी हो, अपने राज्य में युद्ध-कलह मचवाने के लिए मैं कदापि

---

* 'ईव्ज़ जर्नल'।

सहमत नहीं। उसका कारण यह है कि फ़रासीस मेरी प्रजा हैं, और तुम्हारे भय से मेरे शरणागत हुए हैं। इसीलिए मैंने संधि करने के लिए कहा था। मेरा यह अभिप्राय नहीं था कि मैं उनपर विशेष कृपा करूं, या उन्हें युद्ध में सहायता दूं। तुम भी तो एक बुद्धिमान, चतुर और सदाशय महात्मा हो, विचार कर देखो कि यदि घोर शत्रु भी शरणागत आता है तो तुम उसे प्राण-भिक्षा देते हो या नहीं? यदि उसकी सरलता में सन्देह न हो तो तुम अवश्य ही उसके साथ सदय व्यवहार करते हो। हां, यदि सरलता में सन्देह हो तो बात ही दूसरी है। उस दशा में जैसा उचित समझते हो, वैसा आचरण करते हो।"

इस पत्र की अंतिम बातें सिराजुद्दौला की लिखी हुई हैं या नहीं, इस विषय में मतभेद पाया जाता है। एक तत्कालीन अङ्गरेज़ ने लिखा है कि पत्र के उक्त रूप में लिखे जाने के लिए मुंशीख़ाने में समयोचित अर्थ-व्यय करने में कोई त्रुटि नहीं हुई।*

मूल पत्र फ़ार्सी भाषा में लिखा गया था। उसका अब कुछ पता नहीं चलता। वाट्सन साहब ने मुंशीख़ाने में जोड़-तोड़ लगाकर जैसा कुछ अनुवाद भेजा था, वही आजकल एकमात्र इतिहास की सामग्री है। हमने भी उसी का अनुवाद दिया है। इस पत्र में कहीं भी नवाब की अनुमति का नाम-निशान नहीं है। परन्तु वाट्सन ने इसी को नवाब का अनुमति-पत्र प्रसिद्ध कर दिया। वाट्सन भी लड़ाई के लिए तैयार ही थे, परन्तु बिना नवाब की रज़ामन्दी के युद्ध ठान

* 'स्क्राफ़्टन्स रिफ़्लेक्शन'।

देने से भविष्य में डाट-फटकार सहनी पड़ती, शायद इसी-लिए वे पहले से सफ़ाई एकत्र कर रखने की कोशिश कर रहे थे। और वह सफ़ाई हाथ में आजाते ही वाट्सन का भी सारा सन्देह जाता रहा। बस, अब अङ्गरेज़ के सामरिक बाजे झमाझम बजने लगे। जल-मार्ग से वाट्सन और स्थल-मार्ग से क्लाइव, सेनाएं लेकर चन्दननगर की ओर अग्र-सर हुए।

७ फ़रवरी को चन्दननगर का संधिपत्र लिखा गया था, और सात ही मार्च को अङ्गरेज़ी फ़ौज ने चन्दननगर के सामने आ डेरा डाला। सिराजुद्दौला के सामने बाइबिल चूमकर ईश्वर और यीशुखृष्ट के पवित्र नाम से वाट्सन और क्लाइव ने जिस संधिपत्र पर हस्ताक्षर किये थे, उसकी अल्प आयु इस प्रकार प्रभातकालीन ओस की तरह कुछ घड़ियों ही में विलीन हो गई।

मंत्रणा-सभा की उत्तेजनाओं से उत्तेजित होकर क्लाइव ने कहा था—"फ़रासीसों के साथ नवाब की सेना के मिल-जाने पर भी डरने का क्या कारण? अकेले ही अपने बाहुबल से दोनों को परास्त करेंगे।" परन्तु चन्दननगर के सामने आते ही वह बाहुबल एकाएक शिथिल पड़ गया! फ़रासीसों ने वीरतापूर्वक क़िले की रक्षा करने का संकल्प किया था। पास ही नन्दकुमार की सेना चाकचौबंद खड़ी थी! अतएव क्लाइव भयभीत हुआ परन्तु विपत्ति पड़ने पर तत्काल ही उपाय सोच लेने में वह पूरा प्रवीण था। उसने साम, दाम, दण्ड, भेद सभी नीतियों का यथोचित प्रयोग करने में कोई कसर न की। उसने सोचा कि नन्दकुमार को पराजित करने में देर ही कितनी

लगेगी ? परन्तु पराजित करने की अपेक्षा क्या अन्य कोई सरल मार्ग नहीं है ? उसी सरल मार्ग का पता लगाने के लिए क्लाइव ने उमीचन्द को नन्दकुमार के डेरे में भेजा। काम बन गया, उमीचन्द सहज ही कृतकार्य हुआ,—नन्दकुमार अपनी सेना लेकर डङ्का बजाते हुए दूर स्थान में चला गया। जिन प्रतिभाशाली इतिहास-लेखकों ने क्लाइव की गौरव-गरिमा को बढ़ाने के लिए ही लेखनी उठाई, वे भी स्पष्ट शब्दों में लिख गये हैं कि "इस युद्ध में केवल घूंस ही के ज़ोर से नन्दकुमार परास्त हुआ था।"* थरंटन लिखता है:-"हुगली के फ़ौजदार नन्दकुमार की अधीनता में नवाब के कुछ सिपाही चन्दननगर की सहायता के लिए पहले ही से वहां ठहरे हुए थे। परन्तु उमीचंद ने नन्दकुमार को अंगरेज़ों के अनुकूल रहने के लिए कुछ रुपया दे दिया। और जब वे पहुंचे तो सिराजुद्दौला के सिपाही चन्दननगर से हटा लिए गये।"†

फ़रासीस सिपाही अङ्गरेज़ों के प्रचण्ड विक्रम के सामने बहुत देर तक न ठहर सके। प्राणपण से दुर्ग-रक्षा करते करते दल के दल धराशायी हो गये। जब उनका साहस बिलकुल टूटने लगा तो उन्होंने धीरे धीरे क़िला छोड़ दिया। अङ्गरेज़ी फ़ौज ने २३ मार्च को तीसरे पहर के समय बड़े आनन्द-उल्लास के साथ "हुर्रे" की ध्वनि से जल-स्थल को प्रतिध्वनित करके फ़रासीसों के क़िले में अङ्गरेज़ों की विजय-वैजयन्ती फहराई। इतिहास में इसी का नाम है:—चन्दननगर का अलौकिक महायुद्ध।

---

* स्क्राफ़्टन।

† 'हिस्ट्री आफ़ दी ब्रिटिश इम्पायर' जिल्द १ पृष्ठ २२१।

परन्तु इस अलौकिक महायुद्ध के गुप्त रहस्य को अङ्ग्रेज़ों के इतिहास में स्थान नहीं मिला है! अङ्गरेज़ों का बढ़ाव रोकने के लिए फ़रासीसों की सेना ने गुप्त रूप से अनेक जहाज़ जलमग्न कर रक्खे थे। केवल अपने पक्ष के जहाज़ों के आवागमन के लिए एक अत्यन्त संकीर्ण जल-मार्ग रहने दिया था, और क़िले में रहनेवाले फ़रासीसों के अतिरिक्त किसी को इसका पता नहीं था। फ़रासीसी क़िले के अध्यक्ष मसीरेनल के कठोर शासन से असंतुष्ट होकर टेरानू नामक एक फ़रासीस व्यक्ति ने अङ्गरेज़ सैनिकों के हाथ उपरोक्त गुप्त रहस्य बेचकर चन्दननगर के सर्वनाश में सहायता दी। इस तरह की सहायता यदि न मिलती तो अङ्गरेज़ लोग सहज ही चन्दननगर के पास तक न पहुंच सकते। इसका मुख्य प्रमाण लार्ड क्लाइव ही से मिलता है, उन्होंने स्वयम् लिखा है कि केवल जल-युद्ध ही से चन्दननगर इतनी जल्दी अङ्गरेज़ों के हाथ आ गया था।

हतभाग्य टेरानू ने अपने को बेचकर जो प्रभूत धन संचित किया था, वह भी उसके भोग में न आया। उस धन का कुछ अंश उसने अपने वृद्ध पिता के पास भेजा, परन्तु पिता ने जब टेरानू की घृणित और निन्दास्पद करतूत का समाचार सुना तो उसने वह धन टेरानू को वापिस कर दिया। टेरानू को इससे बड़ा दुःख हुआ! वह लज्या से अभिभूत हो एक दिन घर के भीतर घुस गया। कुछ दिन के बाद उसका मृतक शरीर कमरे के द्वार पर अंगौछे से लटकता हुआ पाया गया। जिससे ज्ञात होता था कि उसने आत्महत्या कर ली। इस प्रकार

आत्महत्या करके उसने अपने पापों के निन्दनीय कलंक का प्रायश्चित्त किया !*

इस अङ्गरेज़-फ़रासीस-युद्ध का वर्णन करते हुए 'पलासी-युद्ध' काव्य ( बंगला ) के रचयिता लिखते हैं:—

"———गंगा-तीरे, नीरे,
ज्वलिल समरानल धरि भीम साज,
भये भीता भागीरथी बहिलेक धीरे।
नवम दिवस परे नभ आलो करे,
उठिल ब्रिटिश-ध्वजा चन्दन नगरे !
"फ़रासीस सम योद्धा नाहि भूभारते"
बंग देशे एकवाक्ये वलित सकले।
से फरासि यशोरवि सेई दिन हते,
क्लाइवेर "करासेते" गेछे अस्ताचले !

अर्थात् :—

विकराल संग्रामाग्नि गंगा तीर पर जलने लगी,
भयभीत हो भागीरथी भी मन्द हो बहने लगी।
नौ दिन गये आकाश को अति जगमगा करके जगी।
चन्दननगर में ब्रिटिश-ध्वज अति उच्च फहराने लगी।
फ्रासीसियों के सदृश योधा भूमि भारत में नहीं'
थे बंगवासी एक मुख से कह रहे यह सब कहीं।
उन फ्रान्सीसों का यशोरवि अस्त उस दिन से हुआ,
रण में "क्लाइव-कोप" उनके अंत का कारण हुआ।

यह तो हुई कवि-कल्पना, परन्तु वास्तव में क्लाइव ने

* 'जनरल आफ़ दी एशियाटिक सोसायटी', १८६७ ।

किस प्रकार चन्दननगर को विजय कर लिया था, इसके सम्बन्ध में उसने स्वयम् अपनी लेखनी से जो कुछ लिखा है, वह यह है:—

१० अपरैल सन् १७५७ ई० को कुछ चुने हुए सदस्यों की सभा में, जिसमें कर्नल राबर्ट क्लाइव, मेजर किलप्यािट्रक और हालवेल साहब उपस्थित थे। उन्होंने कहा था:—

"ईस्ट इंडिया कम्पनी के हम सब कर्मचारियों को उस बुद्धिमान् और समृद्धिशाली सौदागर उमीचंद का चिरकृतज्ञ रहना चाहिये, जिसकी बदौलत हमें दीवान नन्दकुमार की सहायता और सहानुभूति प्राप्त हुई। जिस समय हम लोगों ने चन्दननगर पर आक्रमण किया था, उस समय नवाब की वह सेना जो हुगली के तोपख़ाने से सम्बन्ध रखती थी, नन्दकुमार की अधीनता में चन्दननगर के पास ही डेरा डाले पड़ी थी। यदि यह फ़ौज वहां से न हट जाती तो हम लोगों का चन्दननगर पर विजय पाना सर्वथा असम्भव था।"

निदान ख़बर पाने पर भी सिराजुद्दौला फ़रासीसों की रक्षा न कर सका, यही उसके सर्वनाश का कारण हुआ। अङ्गरेज़ों ने कहा है कि "अहमदशाह अबदाली के भय से भयभीत होने के कारण उसे इधर को निगाह फेरने का मौक़ा ही नहीं मिला, और हमारे सहायक मित्र मीरजाफ़र, जगत्-सेठ और रायदुर्लभ इत्यादि अमीर-उमरावों ने विविध चतुराइयों से सिराजुद्दौला के हृदय में अहमदशाह अबदाली के आक्रमण का भय जागृत रखकर उसे कर्त्तव्य-भ्रष्ट करने में कोई कोशिश उठा न रक्खी।" यह ठीक है कि लोगों ने मिलकर सिराजुद्दौला को तरह तरह के भय-प्रदर्शन से अत्यन्त सशंकित कर

डाला था, तथापि सशंकित होने पर भी वह अपना कर्त्तव्य नहीं भूला, और फ़रासीसों की रक्षा के लिए उसने पहले ही से हुगली में सेना जुटा दी। वह भली भांति जानता था कि जहांतक बने, प्रबल प्रयत्न करके फ़रासीसों की रक्षा करना ही मेरे लिए हितकर है, और यह जानकर ही उसने अङ्गरेज़ों के निश्चय में बाधा डालने के लिए भरसक चेष्टा की थी। परन्तु कौन जानता था कि नमकख़्वार होकर भी महाराज नन्दकुमार सिराज़ुद्दौला की आज्ञा का उल्लंघन करेगा?

---

## चौबीसवां परिच्छेद ।

### फ़रासीसों का सर्वनाश ।

फ़रासीसों की दुर्दशा का अंत हो गया! वे अङ्गरेज़ों के निकट आत्मसमर्पण कर पथ के भिखारियों की तरह नदी के किनारे आकर खड़े हुए। परन्तु वहां भी न ठहर सके! अङ्गरेज़ लोग क़िले पर अधिकार जमाकर ही परितृप्त नहीं हुए, बल्कि सम्पत्ति और परिवार के सहित सब तरह से फ़रासीसों का सर्वनाश करने के लिए उन्होंने भागनेवालों के पीछे धावा किया। गंगा में बड़ी तेज़ी के साथ अङ्गरेज़ों की नौकाएं छूटने लगीं। फ़रासीस लोग अनन्योपाय होकर घने जंगलों को लांघते हुए प्राण लेकर मुर्शिदाबाद पहुंचे। अङ्गरेज़ों ने शत्रु-सेना का पता न पाकर निरपराध कृषक प्रजावर्गों के शस्य-क्षेत्रों को रौंदते, ग्रामों और नगरों का सर्वनाश करते करते वर्धमान और नदिया के विस्तीर्ण प्रदेशों को तहस-नहस कर डाला!

विपद्ग्रस्त फ़रासीसों के मलीन मुखों की ओर देखकर मुर्शिदाबाद के निवासियों से न रहा गया। सिराजुद्दौला देश का शासक था, अतएव फ़रासीस उसीकी शरणागत हुए। सिराजुद्दौला भी उनके कातर विलापों की उपेक्षा न कर सका, अन्न-वस्त्र की यथोचित व्यवस्था करके वह उन्हें क़ासिमबाज़ार में स्थान देने के लिए बाध्य हुआ।

विजय के उल्लास में उन्मत्त अङ्गरेज़ सौदागर सिराजुद्दौला के इस न्यायोचित कर्त्तव्य-पालन पर बहुत बिगड़े, और गरज कर कहने लगे कि यह स्पर्द्धा! यह साहस! हमने सम्पत्ति और परिवार के समेत जिनका सर्वनाश करने के लिए चंदननगर पर अधिकार जमाया, क्या सिराजुद्दौला ने उन्हीं फ़रासीसों को स्नेह की गोद में आश्रय प्रदान किया? सिराजुद्दौला इस देश का राजा है, शरणागतों का परित्राण करना उसका परम पवित्र राजधर्म है, इस बात पर ज़रा भी विचार न करके अङ्गरेज़मात्र सिराजुद्दौला के विरुद्ध खड्ग-हस्त हो उठे।

अङ्गरेज़ों का ख़याल था कि यद्यपि चन्दननगर की अल्प-संख्यक फ़रासीस सेना का समूल सर्वनाश कर डालना बिलकुल सहज बात है, तथापि प्रतिहिंसा-परायण फ़रासीस जाति जिस समय बदला लेने के लिए अग्रसर होगी तो उसका सामना करना इतना सहज न होगा। इसीलिए वे सिराजुद्दौला की सहायता से फ़रासीसों को निर्मूल कर देने के लिए व्याकुल हो रहे थे। यदि सिराजुद्दौला सहायता देता तो अङ्गरेज़ों और बंगालियों की सम्मिलित शक्ति के सामने फ़रासीसों को अवश्य ही नीचा देखना पड़ता। परन्तु जब सिराजुद्दौला ने फ़रासीसों को आश्रय प्रदान किया तो अङ्गरेज़ों की आशा निर्मूल हुई। ऐसी दशा में अङ्गरेज़ लोग विविध उपायों से सिराज़ुद्दौला के मत-परिवर्तन की चेष्टाएं करने लगे।

अङ्गरेज़ और फ़रासीस परस्पर सदा के बैरी थे, और दोनों ही भारत में एकाधिपत्य वाणिज्य का विस्तार करने के लिए लालायित थे। सिराज़ुद्दौला जानता था कि अङ्गरेज़ों को फ़रासीसों के सर्वनाश का मौक़ा देना, मानो उनके

हाथ अपने को बेच देना है। इसीलिए वह प्रबल उत्साह के साथ फ़रासीसों की रक्षा करता था। अङ्गरेज़ भी इसे जानते थे, और इसलिए उनकी व्याकुलता बढ़ने लगी।

चन्दननगर को तहस-नहस करने के बाद सेनापति बाट्सन ने सिराजुद्दौला को अपने पक्ष में करने के लिए एक पत्र लिखाः—

"मैं जिस गुरुतर कार्य के लिए यहां (चन्दननगर) आया हूं, उसी में व्यस्त रहने के कारण आपके कई पत्र पाकर भी यथा समय उत्तर न दे सका। इसलिए इसमें मेरा कोई दोष न समझिये। अपने सौभाग्य के बल और आपके सौहार्द की सहायता एवं भगवान की मंगलमय इच्छा से सिर्फ़ दो ही घंटे की लड़ाई में मार्च की २३ तारीख़ को चन्दननगर पर अधिकार कर लिया है। अधिकांश फ़रासीस क़ैद हो गये हैं, कुछ जो भागे हैं, उनको पकड़ लाने के लिए भी हथियारबंद सिपाही नियुक्त कर दिये गये हैं। अब वे कहीं किसी तरह का उपद्रव न करेंगे, अतएव आप इसके लिए असंतुष्ट न हों। यह बात हमने पुनः पुनः आपसे निवेदन की है कि हम संधि-पालन में कदापि किंचित् त्रुटि न करेंगे। आपका शत्रु जब हमारा शत्रु है तो हमारा शत्रु भी आपके शत्रुओं में अवश्य ही परिगणित होगा। निदान यदि फ़रासीस लोग आपके पास उपस्थित हों तो आप अवश्य ही उन्हें बांधकर भेज दें। आपने लिखा है कि ड्रेक साहब ने महाराज मानिकचन्द से असम्मान-सूचक बातें कही थीं। मैंने इस बात के सुनते ही ड्रेक साहब को एक यथोचित पत्र लिखा था, और उन्होंने भी मानिकचन्द के निकट उचित क्षमा-प्रार्थना की है। मुझे विश्वास है कि आप संतुष्ट हुए होंगे। हम लोग क्या आपको असंतुष्ट

कर सकते हैं ? हमारी ओर से आप कभी ऐसा व्यवहार न पायेंगे।"*

वाट्सन ने जिस उद्देश से यह पत्र लिखा, वह सफल नहीं हुआ। शरण आये हुए फ़रासीसों को बांधकर भेजने के लिए सिराजुद्दौला तैयार न हुआ। वाट्सन ने नितान्त निरुपाय हो भय दिखाकर कार्य सिद्ध करने के लिए पुनः निम्नलिखित पत्र भेजा :—

"हमने चन्दननगर पर अधिकार करके अधिकांश फ़रासीसों को क़ैद कर लिया है, और भागनेवालों को पकड़ने के लिए फ़ौज भेजी है, यह हम आपको पहले ही लिख चुके हैं। आक्षेपणीय बात है कि आज फिर उसी विषय में लिखना पड़ता है। परमेश्वर और मोहम्मद के पवित्र नाम से आपने जो धर्म-प्रतिज्ञा की है, उसका यथोचित परिपालन आपकी ओर से न होने के कारण ही हमें बारम्बार पत्र लिखना पड़ता है। कम्पनी की जो तोपें आपके क़ब्ज़े में हैं वे सब वाट्स साहब के हवाले कर दीजिये। बंधु-भाव स्थिर रखने के लिए ही संधि संस्थापित की गई है, इस बात को न भूलियेगा। भागे हुए फ़रासीसों को बांधकर भिजवा दीजिये। यदि कोई व्यक्ति इसके विपरीत आचरण करने की राय दे तो निश्चय जानिये कि वह आपका शुभचिंतक कदापि नहीं है। ऐसी सीख से देश में युद्ध की आग भभक उठेगी। परन्तु यदि आप सत्य का उल्लंघन न करें तो हम कदापि युद्ध-घोषणा न करेंगे। हमें सिर्फ़ यह सूचना मिली है कि फ़रासीस लोग भागकर आपके पास पहुंचे हैं, और उन्होंने आपके

---

* 'ईव्ज़ जर्नल'।

सिपाहियों में भर्ती होने की प्रार्थना की है। यदि आप इसे स्वीकार करेंगे तो फिर हमारे साथ आपका मित्र-सम्बन्ध स्थिर न रह सकेगा। आपने उस दिन भी हमसे कुछ फ़ौज की मदद मांगी थी, परन्तु उसके बाद लिखा कि अब नहीं चाहिये। इससे जान पड़ता है कि फ़रासीसों के साथ मित्रत्व-सम्बन्ध स्थिर करना ही आपको अभीष्ट है।"*

सिराजुद्दौला ने स्वप्न में भी यह अनुमान नहीं किया था कि अलीनगर की संधि का ऐसा शोचनीय परिणाम होगा। अङ्गरेज़ों की गूढ़ नीति के आशय को समझकर उसके होश उड़ने लगे। उसने वाट्सन की चिट्ठी का कोई जवाब नहीं दिया। केवल चुपचाप रहकर सावधान दृष्टि से अङ्गरेज़ों के इरादों का पता लगाने लगा।

नगर के राजमार्ग में चले जाते हुए पथिक के हाथ से चालाक चोर के रुपया छीनकर ले भागने पर जिस तरह पथिक "चोर चोर" कहकर चिल्लाने लगता है, उसी तरह से चोर भी "चोर चोर" की आवाज़ से कोलाहल मचाता जाता है। अतएव इसका निर्णय सहज ही नहीं हो सकता कि कौन चोर और कौन साहु। सिराजुद्दौला की भी यही दशा हुई। अलीनगर की संधि भंग होगई, परन्तु किसके दोष से भंग हुई, इस बात की मीमांसा न हो सकी!

इस ओर अङ्गरेज़ी दरबार में बड़ा रौरा मच गया। वाट्सन ने सम्मानपूर्वक विनीत वचनों में सिराजुद्दौला को जो पत्र लिखा, उसका कुछ जवाब नहीं आया! दूसरी बार आवाज़ को तेज़ करके डाट-डपट के साथ जो पत्र लिखा

---

* 'ईव्ज़ जर्नल'।

उसका भी कोई उत्तर नहीं आया। तब अङ्गरेज़ों ने समझ लिया कि फ़रासीसों को आश्रय-दान देना ही इसका एकमात्र उद्देश है। इससे अङ्गरेज़ लोग घबड़ा गये। वाट्सन ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि फ़रासीसों को बाहर निकाले बिना अङ्गरेज़ों का कल्याण कदापि न होगा। अतएव उस समय अङ्गरेज़ लोग विविध उपायों से नवाब और फ़रासीसों का सौहार्द-सम्बन्ध छिन्न कर देने का प्रयत्न करने लगे। वाट्-सन ने पुनः अनुनय-विनय के साथ नवाब को लिख भेजाः—

"चन्दननगर के पास हमारे कई सामरिक जहाज़ ठहरे हुए हैं; और हुगली के पास गोरों की कई पलटनों की छावनी पड़ी हुई है, शायद इसीलिए आप विशेष असंतुष्ट हुए हैं। यह सुयोग पाकर हमारे किन्हीं शत्रुओं ने आपसे कह दिया है कि हम सेना लेकर मुर्शिदाबाद पर आक्रमण करने के लिए ही ये सब प्रबन्ध कर रहे हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि किसी ने ऐसी मिथ्या बात कहकर आपको धोखा देने का साहस किया! और उससे भी अधिक अचंभे की बात यह है कि आपने ऐसी असत्य बात को सत्य समझकर विश्वास कर लिया! आप भी तो एक वीर पुरुष हैं, क्या आप नहीं जानते कि आपके राज्य में शत्रु-सेना का एक आदमी भी जबतक छिपा रहे, तबतक उसका पीछा न करना हमारे लिए कितनी बड़ी भूल की बात है ? ख़ैर जो हो, आप यदि फ़रा-सीसों को बांधकर भेज दें तो सारे बखेड़ों का अंत हो सकता है, और हम भी अपनी फ़ौज लेकर लौट जा सकते हैं। जब-तक आप ऐसा नहीं करते हैं तबतक हम कैसे कहें कि आप अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन करेंगे।"*

---

* 'ईव्ज़ जर्नल'।

वाट्सन केवल रण-पण्डित ही नहीं था, बल्कि उस समय के अङ्गरेज़ों में उसके बराबर बुद्धिमान्, राजनीतिज्ञ और सुलेखक भी बिरले ही थे। वह जिस समय बड़े सरल-भाव से सिराजुद्दौला को लिख रहा था कि मुर्शिदाबाद पर आक्रमण करने का प्रस्ताव सरासर मिथ्या है, ठीक उसी समय की बातों का उल्लेख करते हुए लार्ड क्लाइव ने हौस-आफ़-कामन्स के सामने मुक्तकंठ से यह गवाही दी है:—

"चन्दननगर पर अधिकार होते ही मैंने सब को समझा दिया था कि बस इतना ही करके बैठ रहने से काम न चलेगा। जब नवाब की इच्छा के प्रतिकूल चन्दननगर पर अधिकार किया गया तो और भी कुछ दूर आगे बढ़कर सिराजुद्दौला को सिंहासन से उतारना पड़ेगा।" क्लाइव ने कहा है कि मेरे इस साधु-संकल्प से सभी लोग सहमत हो गये थे! निदान इसमें सन्देह नहीं कि सिराजुद्दौला आरम्भ ही में अङ्गरेज़ों की अभिसंधि को समझ गया था। परन्तु लोगों ने मिलकर उसे धोखा देने के लिए तरह तरह की चेष्टाएं कीं, और उसे समझाया कि सारे झगड़ों की जड़ फ़रासीस हैं. उन्हें राजधानी में आश्रय देने के कारण अङ्गरेज़ों के साथ की हुई संधि के भंग जाने का उपक्रम हो रहा है।

सिराजुद्दौला ने किस लिए संधि की थी, और अङ्गरेज़ लोग किस तरह से उसका प्रतिपालन कर रहे थे, एवं फ़रासीसों पर भी सिराजुद्दौला कैसा अविश्वास रखता था, यह सब उसकी लिखी हुई २२ मार्च की सामरिक चिट्ठी से प्रकट होता है। वह चिट्ठी यह है:—

"मैंने धर्म-प्रतिज्ञा-पूर्वक जिन शर्तों पर हस्ताक्षर किये हैं, उनका अक्षरशः प्रतिपालन होगा। किसी विषय में तनिक

भी त्रुटि न होगी। वाट्स साहब ने जो जो दावे किये, मैंने उन सभी का रुपया चुका दिया। कुछ थोड़ा सा बाक़ी है, वह भी वर्तमान इसलामी महीने के पहले ही पक्ष के अन्त तक चुका दिया जायगा। शायद वाट्स साहब ने ये सब बातें लिख भेजी हैं। मेरा जो कर्त्तव्य है, मैं उसे पालन कर रहा हूँ। परन्तु तुम्हारा रंगढंग देखकर जान पड़ता है कि प्रतिज्ञा-पालन करना तो दूर रहा उसे मेटना ही तुम्हें अभीष्ट है! तुम्हारी फ़ौज के उपद्रवों से हुगली, इंजिली, वर्धमान और नदिया इत्यादि प्रदेशों का नाश हो रहा है। ये उपद्रव क्यों? बामदेव के पुत्र के द्वारा गोविन्दराम मित्र ने नन्दकुमार को लिख भेजा है कि कालीघाट कलकत्ते की ज़मींदारी के अंतर्गत है, अतएव तुम्हें उस पर दख़ल पाने का दावा है। इस बात का क्या अर्थ है? मैं ऐसा विश्वास करने के लिए तैयार नहीं कि ये सब कुछ तुम्हारी जानकारी में हो रहा है। तुम ने संधि पत्र पर हस्ताक्षर किये हैं, और केवल तुम्हारे ही विश्वास पर मैंने संधि करना स्वीकार किया था। यदि संधि न होती तो दोनों ओर की सेनाओं के प्रचंड युद्ध से देश का सर्वनाश होता, प्रजा पददलित होती, राज्यकर प्राप्त न होता, सब तरह से राज्य का अमंगल ही होता! इन्हीं बातों को रोकने के लिए संधि की गई थी। यदि तुम्हारा यह निश्चय हो कि मेरे और तुम्हारे दर्मियान मित्रता का जो अंकुर जमा है, उसे सुदृढ़ करना ही मुख्य कर्त्तव्य है, तो इन सारे झगड़ों को दूर करके 'मित्र' महाशय से कह दीजिये कि वे भविष्य में कभी ऐसी मिथ्या प्रवञ्चना का प्रस्ताव न उठायें।

"पुनश्च। सुना है कि फ़रासीस लोगों ने तुम्हारे साथ युद्ध करने के लिए दक्खिन से फ़ौज भेजी है। यदि वे मेरे राज्य

में लड़ाई-फ़साद मचाना चाहें तो मैं तुम्हारे लिखते ही अपनी फ़ौज भेजकर उन्हें नीचा दिखाने में तनिक भी कसर न करूगा। सूचना पाते ही मेरी फ़ौज रवाना होगी।"*

वाट्सन के पत्रों के साथ सिराजुद्दौला के पत्रों की तुलना और समालोचना करनी आवश्यक है। एक ओर सुशिक्षित, परिणामदर्शी अङ्गरेज़ी सेनाध्यक्ष वाट्सन और दूसरी ओर भारतवर्ष का एक अपरिणत वयस्क स्वाधीन नवाब;—एक व्यक्ति इतिहास में परम प्रतिष्ठित और गौरवान्वित एवं दूसरा स्वदेश और विदेश सभी के निकट धिक्कृत और अपमानित ! परन्तु दोनों की बातों और कार्यों पर ज़रा विचार कर देखिये, कौन कितने सम्मान का पात्र है ? सिराजुद्दौला कलंकों से ग्रस्त है अवश्य, परन्तु केवल राजधर्म का यथोचित प्रतिपालन करने के कारण ही क्या वह अङ्गरेज़ों के रोष का पात्र नहीं हुआ ? वाट्सन उसको जिन पाप-कार्यों में लिप्त होने के लिए बारम्बार सानुरोध पत्र लिख रहे थे, क्या उन्हें स्वीकार कर लेने से सिराजुद्दौला कलंकमुक्त अथवा दोषरहित हो सकता था ?

सिराजुद्दौला ने संधि-संस्थापन के लिए अङ्गरेज़ों के सारे नुक़सानों की भरपाई करके भी अलीनगर के संधिपत्र पर हस्ताक्षर किये थे। उसके अमीर-वज़ीर सब उसके छिद्रान्वेषी और गृह के बैरी थे ही; अतएव उसे फिर अङ्गरेज़ों के साथ शान्ति-भंग करने की हिम्मत नहीं पड़ी। वह शान्ति के लिए ही व्याकुल होने लगा।

नवाबी दरबार के अमीर-उमरावों ने देखा कि यही अच्छा

---

* 'ईव्ज़ जर्नल'।

मौक़ा है। वे नवाब से कहने लगे कि फ़रासीसों को क़ासिम-बाज़ार में आश्रय प्रदान करने के कारण ही शान्ति-भंग की सम्भावना जान पड़ती है, इसलिए उन्हें पटना-प्रदेश में भेज देना उचित है। इस निःस्वार्थ हितवार्ता में सिराजुद्दौला को किसी कूट अभिसंधि का पता न लगा। उसने फ़रासीसों के सेनाध्यक्ष लास साहब को तदनुसार पटना चले जाने की आज्ञा दी। लास ने कुछ दिन राजधानी में रहकर राजदरबार की अवस्था को अच्छी तरह देखा-भाला था। उसने सिराजुद्दौला से कहा:—"आपके वज़ीर और अधिकांश फ़ौजी सरदार अङ्गरेज़ों के साथ मिलकर आपको सिंहासन से उतारने की कोशिश कर रहे हैं। केवल फ़रासीसों के भय से वे प्रकट रूप में शत्रुता करने का साहस नहीं करते। ऐसे समय में फ़रासीसों को राजधानी से हटाते ही युद्धानल प्रज्ज्वलित हो उठेगी।" सिराजुद्दौला इस बात को सहसा अस्वीकार न कर सका; परन्तु वह अति शीघ्र शान्ति संस्थापित करने के लिए व्याकुल हो रहा था। अतएव उसने कहा कि "आप लोग भागलपुर के पास रहें, बग़ावत की सूचना पाते ही मैं ख़बर भेजूंगा।" सेनापति लास फिर उसकी बात को न दोहरा सका; केवल विदा मांगते समय आंखों में आंसू भर-कर इतना ही कहा—"यही अंतिम साक्षात् है, अब हमारा आपका सम्मिलन न होगा।"

---

## पच्चीसवां परिच्छेद ।

### गुप्त-मंत्रणा ।

अलीनगर की संधि संस्थापित होने के समय सिराजुद्दौला ने वाट्सन को लिखा था :—"लड़ाई के समय सिपाहियों को लूटमार से रोकना कितना कठिन काम है, यह तुम्हें मालूम ही है, तथापि यदि तुम कुछ अंश छोड़ना स्वीकार करो तो क्षति को पूरा करने के लिए मैं भी कुछ हानि उठाने की चेष्टा करूंगा।" इस वचन का प्रतिपालन करने के लिए सिराजुद्दौला को पर्याप्त रुपये की हानि उठानी पड़ी थी। जब सारे झगड़ा-फ़साद मिट गये तो सिराजुद्दौला अपने सेनानायकों की कारगुज़ारी पर विचार करने में प्रवृत्त हुआ। इस विचार में मानिकचन्द की सारी करतूतें क्रमशः प्रकट हो गईं, और इसमें कोई सन्देह नहीं रहा कि मानिकचन्द ही कलकत्ते का रक्षक होकर भक्षक बन गया था। सिराजुद्दौला ने अपराधी मानिकचन्द को समुचित दण्ड दिया,—वह क़ैद हो गया। उस ज़माने में ऊंचे ऊंचे पदों के राज-कर्मचारी जो मन में आता, वही करके पद-प्रतिष्ठा की बदौलत दण्ड से मुक्त रहते थे। उनके किये कामों पर किसी तरह का विचार नहीं होता था। इसलिए मानिकचन्द के क़ैद हो जाने पर बहुतेरे लोग घबरा उठे।

बहुत कुछ अनुनय-विनय करने के बाद दस लाख रुपया

दंड देने पर मानिकचन्द जेलख़ाने से मुक्त हुआ। परन्तु इसी से विद्रोह की सुलगती हुई आग में लपट उठनी शुरू हुई। रायदुर्लभ, राजबल्लभ, जगत्-सेठ और मीरजाफ़र सब ने सोचा कि मानिकचन्द तो केवल बहानामात्र था, अब एक एक करके सभी को इसी तरह सताकर सिराजुद्दौला मनमाना रुपया वसूल करेगा। इसलिए स्वार्थ-रक्षा के लिए जगत्-सेठ का मंत्र-भवन फिर से इन सब लोगों के रात्रि-सम्मिलन का संकेत स्थान बन गया।

जो लोग इन गुप्त-मंत्रणाओं में सम्मिलित होने लगे, वे देश के, अथवा सर्वसाधारण के, लिए कोई चिन्ता नहीं करते थे;—जैन जगत्-सेठ, मुसलमान मीरजाफ़र, वैद्य राजबल्लभ, कायस्थ दुर्लभराम, सूदख़ोर उमीचन्द, प्रतिहिंसा-परायण मानिकचन्द—इनमें किसी के साथ किसी का न तो पारिवारिक सम्बन्ध था, और न किसी पर किसी का प्रेम ही; केवल अपने अपने मतलब के लिए दलबन्दी करके एक दूसरे के साथी और सहायक बन गये थे। जिन लोगों के साथ प्रजा के सुख-दुःख का सम्बन्ध था, उनमें से केवल कृष्णनगर के राजा महाराजेन्द्र कृष्णचन्द्र भूपबहादुर के इस गुप्त-मंत्रणा में योग देने की बात सुनी जाती है, बल्कि यह भी सुना जाता है कि अर्द्ध-बङ्गाल की अधिकारिणी, प्रतिभाशालिनी रानी भवानी ने कृष्णनगर के राजा की उक्त कायरता का परिचय पाकर इशारे में उपदेश देने के लिए उसके पास 'चूड़ी और सेंदुर' उपहार में भेजा था। परन्तु जिन्होंने स्वार्थ के चरणों में दया, कर्म, कर्त्तव्य-बुद्धि, और राजभक्ति का बलिदान दे सिराजुद्दौला के सर्वनाश का दृढ़ संकल्प किया था, जिन्होंने स्वदेश के हित पर तनिक भी

ध्यान न देकर केवल अपने व्यक्तिगत कल्याण के लिए ही शौकतजंग जैसे कुपात्र को भी सिंहासन पर बैठाने का उद्योग किया था, उन्होंने उस वीर रमणी की धिक्कार पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, और अङ्गरेज़ों की सहायता से मीरजाफ़र को गद्दी पर बैठाने के लिए षड़यन्त्र-जाल फैलाने लगे।

आत्मशक्ति के ऊपर स्वाभाविक विश्वास बड़ा ही प्रबल है। एक स्वाधीन नरेश इसे कदापि स्वीकार करना नहीं चाहता कि राज्य-सिंहासन एक साधारण फूंक ही से उड़ जा सकता है। ग़दर के बहुत पहले बग़ावत के लक्षण पाकर भी ईस्ट-इंडिया-कम्पनी को मतिभ्रम हुआ था, सिराजुद्दौला को भी वैसा ही हुआ। उसने ख़याल किया कि शायद फ़रासीस ही सारे बखेड़ों की जड़ हैं, उनको दूर कर देने ही से अङ्गरेज़ लोग शान्त हो जायंगे, और अङ्गरेज़ों के शान्त होते ही ये अमीर-उमराव गुप्त-मंत्रणाएं त्याग देने के लिए बाध्य होंगे। इसी समय वाट्सन ने लिख भेजा कि "चिरस्थायी शान्ति स्थापित करने के लिए यही उपयुक्त अवसर है। समय निकल जाने पर फिर लौट कर न आयेगा।" अतएव स्वदेश की कल्याण-कामना से सिराजुद्दौला संधि करने के लिए व्याकुल हुआ। उसने फ़रासीसों को राजधानी से हटाकर वाट्सन को लिख भेजा :—"स्वार्थी लोगों की उत्तेजनाओं में न भूलना, संधि को भंग करना ही उनका उद्देश है! यदि कलह-विवादों के बढ़ाने की इच्छा न हो तो अब हमको संधि का कोई विरोधी प्रस्ताव मत लिखना, बल्कि लिखने से पहले संधि के काग़ज़ों को एक बार पढ़कर देख लेना।"

इधर फ़रासीसों को रास्ते ही में ध्वंस करने के लिए अङ्गरेज़ लोग पलटन भेजने का प्रबन्ध करने लगे। सिराजुद्दौला के क्रोध का ठिकाना न रहा! उसने फ़ौरन् ही अङ्गरेज़ वकील को दरबार से बाहर निकालकर वाट्स साहब से कहला भेजा :—

"या तो इसी वक्त मुचलकानामा लिखकर फ़रासीसों का पीछा करने की आकांक्षा त्याग दो, अथवा इसी क्षण राजधानी से निकल जाओ।"* यह ख़बर पाकर क्लाइव ने झटपट व्यापारीय नौकाएं सजानी शुरू कीं। भीतर गोला-बारूद, ऊपर धान के बोरे, और उनके ऊपर चालीस आदमी सुशिक्षित सैनिक सिपाही,—इस प्रकार छलपूर्वक सात नावों के बेड़े में अङ्गरेज़ सौदागरों का वाणिज्य-भांडार लेकर क्लाइव मुर्शिदाबाद की ओर अग्रसर हुआ। क़ासिमबाज़ार के ख़ज़ाने को शीघ्र ही कलकत्ते भेज देने के लिए गुप्त-रूप से वाट्सन को एक पत्र भी लिख दिया गया।

इसी के बाद सेनापति वाट्सन ने जो पत्र लिखा, वही उसका अन्तिम पत्र था। उस पत्र में यह स्पष्ट अक्षरों में लिखा गया कि "एक फ़रासीस के ज़िन्दा रहते भी अङ्गरेज़ लोग विराम नहीं लेंगे। हम शीघ्र ही क़ासिमबाज़ार को फ़ौज भेजते हैं। क़ासिमबाज़ार के सुरक्षित हो जाने पर फ़रासीसों को बांध लाने के लिए पटना-प्रदेश में और भी दो हज़ार सिपाही भेजे जायंगे,—इन सब कामों में आपको अंगरेज़ों की सहायता करनी पड़ेगी।" इस पत्र में अपने चरित्र की गुरुता को बढ़ाने के लिए वाट्सन ने यह भी

* 'अर्मी' जिल्द २ पृष्ठ १४७।

लिखा था कि "हम तो केवल शान्ति ही चाहते हैं, धन की आकांक्षा हमारे हृदय में स्थान नहीं पा सकती । हम उससे सच्चे अन्तःकरण से घृणा करते हैं !!" सिराजुद्दौला ने समझ लिया कि फिर युद्ध ठनेगा, अतएव वह भी यथासम्भव अपनी रक्षा के उपाय करने लगा ।

यदि सिराजुद्दौला फ़रासीसों के सर्वनाश में सहायता देता तो उसे ये विडम्बनाएं न सहनी पड़तीं; परन्तु उसने पदाश्रित और शरण में आये हुए फ़रासीसों का सर्वनाश न करना चाहा । एक सौ फ़रासीस सिपाहियों की जान बचाने के लिए हज़ारों आदमियों के सुख-दुःख की बात को भूलकर एवं राज्य-सिंहासन और अपने जीवन की भी कुछ परवा न करके उसने अंगरेज़ सेनापति की उपेक्षा की । इसी के लिए उसकी स्वाधीनता गई, राज्य गया, प्राण गये, और यहां तक कि अन्त में उसकी स्मृति भी कलंकित होकर शेष रह गई !!

पलासी-युद्ध के अन्त में कर्नल क्लाइव ने विलायत के अधिकारियों के निकट, अपने कार्य का समर्थन करने के लिए, फ़रासीसों के पास भेजी हुई सिराजुद्दौला की चिट्ठियों का हवाला लिख भेजा था । ये पत्र अलीनगर की सन्धि के बाद की तारीख़ों के हैं, और इनसे जान पड़ता है कि सिराजुद्दौला प्रकाश्य-रूप से अंगरेज़ों के साथ संधि करके गुप्तरूप से फ़रासीसों की सहायता करता था ।*

इन्हीं पत्रों के बहाने से बहुतों ने सिराजुद्दौला को "विश्वासघातक" कहकर उसकी निन्दा एवं भर्त्सना की है, और

---

* इन्हीं पत्रों के साथ कर्नल क्लाइव ने सिराजुद्दौला के एक उस पत्र का हवाला दिया था, जो फरवरी सन् १७५७ में उसने फ़रासीसी सरदार

किसी किसी ने तो यह भी कह डाला है कि गुप्तचरों की सहायता से सिराजुद्दौला के मूल पत्र ही अंगरेज़ों के हाथ लग गये थे। परन्तु क्लाइव ने लिखा है कि मुझे वाट्स साहब के द्वारा इन पत्रों की नक़लें प्राप्त हुईं। स्क्राफ़्टन ने कहा है कि जिस समय सिराजुद्दौला को सिंहासन से उतारने का षड़यन्त्र चल रहा था, उसी समय मैंने इन पत्रों का पता पाया था। कुछ हो, पहले तो यह निश्चय-रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये पत्र विद्रोही षड़यंत्रकारियों के स्वकपोल-कल्पित नहीं हैं। फिर, इसको भी अस्वीकार करने का कोई उपाय नहीं कि अंगरेज़ों को अपने पक्ष में कर लेने के लिए ही इन सब पत्रों की रचना नहीं हुई। सिराजुद्दौला के मीर-मुंशी ने इन सब पत्रों की नक़लें बाहर कर दी थीं। और इसे सिद्ध करने के लिए प्रमाणों का अभाव नहीं कि उक्त मीरमुन्शी ने तत्कालीन घूस के लोभ से अंगरेज़ों के पक्ष का समर्थन करके वाट्स साहब की भरपूर सहायता की थी। स्वयम् स्क्राफ़्टन ने अपने इतिहास में सिराजुद्दौला के एक पत्र को उद्धृत करते हुए लिखा है कि "यह पत्र नवाब के मीरमुंशी के लिए रुपयों की एक गहरी नज़र प्राप्त करके वाट्स साहब ने वाट्सन को दिया था।"

यारलतीफ़ खां, जो कुछ दिन पहले जगत्-सेठ के यहां रोटियों पर नौकर रहा था, सिराजुद्दौला का सिपहसालार था,

'बुसी' को लिखा था, और जिसका आशय था कि "ये लोग, एडमिरल वाट्सन, कर्नल क्लाइव अकारण ही लड़ाई झगड़ा मचाकर मेरे देश की शांति को भंग करते हैं, और ज़ब्दतुल तुज्जाह मंसर, तथा चन्दननगर के गवर्नर के विरुद्ध युद्ध ठानते हैं।"

और २००० अश्वारोही सेना उसके तहत में थी। इस मुसलमान सेनाध्यक्ष ने २३ अप्रैल को वाट्स साहब से एकान्त में गुप्तरूप से मिलने की प्रार्थना की। साहब की हिम्मत न पड़ी, उन्होंने उमीचन्द को भेज दिया। उमीचन्द आकर यारलतीफ़ से मिला, और उसके एवं यारलतीफ़ के द्वारा अंगरेज़ों के निकट बंगालियों की बग़ावत का पहला प्रस्ताव पहुंचा। स्वार्थ-सिद्धि के प्रलोभन में फंसकर हिन्दू-मुसलमान और ईसाई सभी लोग जाति और धर्म का पुराना भेदभाव भुलाकर एक हो गये।

लतीफ़ ने कहा कि "सिराजुद्दौला शीघ्र ही पटना-प्रवेश की ओर युद्ध-यात्रा करेगा, सिर्फ़ इसीलिए वह अभी अंगरेज़ों से कुछ नहीं कहता है; परन्तु उसके राजधानी में लौटने पर अंगरेज़ों की रक्षा न होगी। देश के सभी प्रतिष्ठित तथा गण्यमान्य पुरुष सिराजुद्दौला से घृणा करते हैं। उसके पटना चले जाने पर यदि अंगरेज़ लोग उसके पीछे मुर्शिदाबाद पर अधिकार जमा सकें तो सहज ही में सारा काम बन जायगा। विजय के उपरान्त मुझे नवाब बना देने पर अंगरेज़ लोग जो कुछ चाहें, वह मैं सहर्ष देने के लिए तैयार हूं।" मीरजाफ़र का नाम लतीफ़ ने छिपा रक्खा।

दूसरे दिन एक अरमानी सौदागर ख़ाजा पिद्र से वाट्स साहब की मुहं दर मुहं बातचीत हुई। उसने कहा—"सिराजुद्दौला मीरजाफ़र को गुप्त-रूप से मार डालने का मौक़ा ढूंढ रहा है। अतएव लाचार होकर अपनी रक्षा के लिए मीरजाफ़र बाग़ियों को सहायता देने पर बाध्य हो गया है। रायदुर्लभ, जगत्-सेठ एवं और सब लोग भी इस गुप्त-मंत्रणा में शामिल हैं। आपके सहायता करने पर वे भी मदद

करेंगे । यह आप लोगों का कर्तव्य-कार्य है । शीघ्र ही आगे बढ़िये । सिराजुद्दौला को अभी निश्चिन्त रखना आवश्यक है; इसलिए कर्नल क्लाइव को सेना के सहित कलकत्ते लौट जाना होगा ।"*

क्लाइव ने शीघ्र ही कलकत्ते को कूच किया, और पहली मई को वह अङ्गरेज़ी दरबार में पहुंचा । उसके और वाट्स साहब के ऊपर सारा भार डाला गया । उन्होंने शीघ्रही आधी फ़ौज तो कलकत्ते में और आधी चन्दननगर में गुप्त-रूप से रख कर सिराजुद्दौला को शान्त करने के लिए यह पत्र लिख भेजा:—"हम तो अपनी फ़ौज वापिस ले आये, फिर आपने अब पलासी में अपनी छावनी क्यों डाल रक्खी है ।" जिस पत्रवाहक के हाथ क्लाइव ने यह "विषकुम्भ पयोमुख" पत्र सिराजुद्दौला के पास भेजा, उसी को वाट्स साहब के लिए यह चिट्ठी दी,—"मीरजाफ़र से कहना कि वह तनिक भी भयभीत न हो । मैं ऐसे पांच हज़ार सिपाहियों को लेकर उसके पक्ष में आ मिलूंगा, जिन्होंने युद्ध में कभी पीठ नहीं दिखाई । एक आदमी भी ज़िन्दा रहते रण से न भागेगा । दिन रात अथक परिश्रम के साथ आगे बढ़ेंगे ।†

जिसके मन में जितना पाप था, वह प्रकट-रूप से उतनी ही सरलता दिखाने की चेष्टा करने लगा । परन्तु अहमदशाह के भारतवर्ष से लौट जाने पर सिराजुद्दौला को पटने जाना ही न पड़ा । उसने अङ्गरेज़ों की जाली नौकाएं रोक लीं, और पलासी में ज्यों की त्यों छावनी डाले रहा, एवं गुप्तचरों की सहायता से अङ्गरेज़ों के इरादों का पता लगाने लगा ।

*'अर्मी' जिल्द २, पृष्ठ १४६ । † मेकालेज़ 'लार्ड क्लाइव' ।

मतिराम एक प्रसिद्ध जासूस था। उसने अपने कार्य पर कलकत्ते में रहकर गुप्त-रूप से ख़बर भेजी कि "सिर्फ़ आधी फ़ौज कलकत्ते में है, और आधी, जान पड़ता है, किसी गुप्त रास्ते से क़ासिमबाज़ार को चली गई है।" सिराजुद्दौला ने यह ख़बर पाते ही उसी क्षण क़ासिमबाज़ार का कोना कोना ढूंढ़ डाला; परन्तु फ़ौज का कहीं पता न मिला। तथापि उसका सन्देह दूर नहीं हुआ। उसने फ़रासीसों से भागलपुर में ठहरने के लिए कहा, और भागीरथी की धारा में शाल के लट्ठे गाड़ कर १५ हज़ार सेना के साथ मीरजाफ़र को पलासी जाने की आज्ञा दी। मीरजाफ़र के पलासी में रहने पर राजधानी की गुप्त मंत्रणाओं में विघ्न पड़ेगा, यह सोचकर अङ्गरेज़ और बंगाली सभी चिन्तित होने लगे; परन्तु सिराजुद्दौला का सन्देह मिटाने के लिए मीरजाफ़र को बिना किसी विवाद के हंसते हुए पलासी को पयान करना पड़ा।

लूट के लोभी महाराष्ट्र सेनापति ने बहुत दिन से चौथ का रुपया न पाने पर तृष्णा की दृष्टि से एक पत्र लिखकर गोविन्दराम नामक दूत को अङ्गरेज़ गवर्नर ड्रेक साहब के पास भेजा था। इस पत्र का आशय यह था:—"आपकी दुर्दशाओं के समाचार मुझे जनूजी के पुत्र रघूजी के द्वारा विदित हुए। अतएव अब आप मेरे मित्र बनकर निश्चिन्त हों। अपने सर्वोत्तम प्रस्तावों को मेरे पास भेज दीजिये। ईश्वर की कृपा से शमशेर ख़ां बहादुर और बाजीराव का पुत्र रघुनाथ एक लाख बीस हज़ार सवारों के साथ बंगाल में आ दाख़िल होंगे।" यह पत्र लेकर जब महाराष्ट्रों का दूत कलकत्ते में पहुंचा तो कर्नल क्लाइव बिचारे बड़ी आफ़त में पड़े। वे इसका निश्चय न कर सके कि गोविन्दराम किसका दूत है। अतएव उस

पत्र को सिराजुद्दौला के पास भेज देना ही निश्चित हुआ। इससे अङ्गरेज़ों की सरलता का अकाट्य प्रमाण पाकर सिराजुद्दौला अवश्य ही प्रतारित होगा, इसी भरोसे पर स्क्राफ़्टन साहब ने मुर्शिदाबाद को कूच किया। रास्ते में मीरजाफ़र से पलासी में सलाह-मशवरा करना उनका मुख्य उद्देश था। परन्तु नवाब के गुप्तचरों ने यह उद्देश्य सिद्ध न होने दिया, उन्होंने स्क्राफ़्टन को सीधा मुर्शिदाबाद पहुंचा दिया। क्लाइव की चालाकी चल गई, स्क्राफ़्टन के द्वारा मराठों का पत्र पाकर सिराजुद्दौला अङ्गरेज़ों से बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। जो कुछ सन्देह उसके दिल में शेष था, स्क्राफ़्टन ने वह सब दूर कर दिया। मीरजाफ़र को सेना के सहित पलासी से चले आने की आज्ञा मिल गई। मुर्शिदाबाद आते ही उसके और अङ्गरेज़ों के दर्मियान एक गुप्त संधिपत्र लिखा गया।

मई की १७ तारीख़ को कलकत्ते की अंगरेज़ी कौंसिल में इस गुप्त संधिपत्र की आलोचना हुई। इस मसौदे में मीरजाफ़र से, एक करोड़ रुपया कम्पनी बहादुर को, दस लाख रुपया कलकत्ते के निवासी अङ्गरेज़, बंगाली और अरमानियों को, और तीस लाख रुपया उमीचंन्द को मिलने की व्यवस्था लिखी गई थी। इसके अतिरिक्त बग़ावत के प्रधान सहायकों और पथप्रदर्शकों के लिए पुरस्कारों की रक़में एक पृथक् चिट्ठे में दर्ज की गई थीं। सिराजुद्दौला के राजकोष में अवश्य ही इतना रुपया नहीं था, परन्तु रुपया है या नहीं, इस बात पर किसी ने विचार नहीं किया। चारों ओर ग़दर मच गया। अङ्गरेज़ों ने मल्लाह बनकर मीरज़ाफ़र की आशा-तरणी को किनारे लगाने का वचन दिया था, इसलिए उन्होंने जो कुछ चाहा, मीरजाफ़र को वही मंजूर करना पड़ा।

मसौदा भेजते समय वाट्स साहब ने लिखा था कि उमी-चंद जो कुछ चाहता है, उसे मंजूर करने में आनाकानी करने से सारा खेल बिगड़ जायगा! वह मामुली आदमी नहीं है, नवाब के निकट फ़ौरन् ही सारे षड़यन्त्र को प्रकट कर देगा! इस समाचार से अगरेज़ लोग उमीचंद पर खड़्ग-हस्त हो गये। जो लोग मीरजाफ़र को कामधेनु की तरह दोहने के लिए लालायित थे, वेही उमीचंद को स्वार्थी और लालची कहकर धोखा देने के लिए तैयार हुए। परन्तु वे इस बात का कुछ निर्णय न कर सके कि किस उपाय से उमीचंद को धोखा दिया जा सके।

अंत में एक दिन और एक रात की बड़ी गम्भीर सोचा-विचारी के बाद क्लाइव की आशु-बुद्धि इस समस्या को हल करने में कृतकार्य हुई। उसने दो संधिपत्र लिखाये। एक सादा काग़ज़ पर—यही असली था, और एक लाल काग़ज़ पर—'जाली'! इस जाली संधिपत्र में उमीचंद को तीस लाख रुपया मिलने का उल्लेख किया गया। वाट्सन ने इस जाली संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने से इन्कार करके क्लाइव को बड़ी विपत्ति में डाल दिया; परन्तु क्लाइव की आज्ञा से लसिंटन साहब ने वाट्सन के जाली दस्तख़त बनाकर सारी विपत्ति को दूर कर दिया। किसी किसी ने क्लाइव को इस कलंक से मुक्त करने के लिए लिखा है कि "वाट्सन की राय लेकर ही उसके जाली दस्तख़त बनाये गये थे।" परन्तु इस बात में कोई विशेष महत्व दिखाई नहीं देता। क्लाइव ने स्वयम् ही कहा था कि "वाट्सन के सहमत न होने पर भी मैं उसके जाली दस्तख़त बनाये जाने की आज्ञा देता।"*

---

* "थरन्टन्स हिस्ट्री आफ़ दी ब्रिटिश इम्पायर" जिल्द १ पृष्ठ २५६ (नोट)।

इस जाली संधिपत्र की आलोचना करते समय इतिहास-लेखक भौंचक्के रह गये। परन्तु क्लाइव ने हौस-आफ़-कामन्स के सामने गवाही देते समय प्रफुल्ल-चित्त और मुक्तकंठ से कहा था कि "मैंने कभी इस बात को छिपाने की चेष्टा नहीं की। मेरा मत है कि ऐसी दशा में साधारणतः इस तरह के दग़ा-फ़रेबों से काम निकाला जा सकता है। एक ही बार क्यों, ज़रूरत पड़ने पर ऐसी दशा में मैं और भी सौ बार ऐसे काम करने के लिए तैयार हूं।"

इस बात को स्मरण करके अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने भी लज्या से शिर नीचे झुकाया है कि जो व्यक्ति भारतवर्ष में ब्रिटिश-शासन की जड़ जमानेवाला आदि पुरुष हुआ, उसकी धर्म-बुद्धि ने ऐसे नीच कार्य का समर्थन किया। एकमात्र सर जान म्यालकम् के अतिरिक्त और किसी ने भी क्लाइव के पक्ष का समर्थन करने के लिए आग्रह प्रकट नहीं किया। इतिहास-लेखक मेलसन ने तो यहां तक लिखा है कि "रुपये का लोभ और धन की बढ़ती हुई तृष्णा, जिसके कारण एक साथी अपने नियत भाग से वंचित रहे, यह कार्य एक ईमानदार आदमी के हृदय को सदा ही जलावेगा।" * परन्तु लोगों ने इसके लिए अनर्थ तिल का ताड़ बना डाला। सामयिक घटनाओं की उत्तेजना और इस देश के गण्यमान्य प्रतिष्ठित पुरुषों की सहायता से कर्नल क्लाइव ने जिस मुग़ल राज्य-सिंहासन को उच्च मूल्य में बेचने का अवसर पाया था, केवल अपनी सामरिक शक्ति से उसको मुसलमानों से छीन लेने की सम्भावना न थी। "विषस्य विषमौषधम्"—मुग़लों के गौरव के अधःपतन-

* "मेलसन्स डिसाइसिव बेटिल्स आफ़ इण्डिया।"

काल में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, मराठा और अंगरेज़ सौदागरों ने अथक परिश्रम करके भारत-भाग्य-समुद्र को मंथन करते करते अराजकता का जो प्राणान्तःकारी हलाहल विष निकाला था, उससे भारतवासियों का सुख-सौभाग्य जर्जरित हो उठा था। यदि क्लाइव इस रोग में विष का प्रयोग न करता तो आज भारत के निवासी दिगन्तर-व्यापी ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्भुक्त होकर शासन-कौशल में पुरानी बातों को भूल जाने का अवसर न पाते! पठानों की तेज़ तलवार, मराठे घुड़सवारों की तड़ातड़ चोटें और युरोपियन सौदागरों की सर्वसंघारिणी भूख अबतक इस देश की हड्डियों को चकनाचूर कर डालतीं! जिस राष्ट्र-विप्लव की प्रचंड अग्नि-शिखा भारतवर्ष में अपनी लाल जिह्वा का विस्तार कर रही थी, वह आज भी इस देश में उन्मत्त पिशाच की तरह नाचती फिरती। पाश्चात्य शिक्षा के सहस्रों दृष्टान्तों से आज भी जिनकी पारस्परिक लड़ाइयां शान्त नहीं हुई हैं, उनसे यह आशा करनी सर्वथा आकाश कुसुमों के समान थी कि वे स्वयम् अपने बाहुबल से स्वदेश-स्वाधीनता की रक्षा कर सकते।

राजद्रोह महापाप है, अंगरेज़ लोग जानबूझकर भी इस महापाप में लिप्त हुए थे। यही पर्याप्त है। इसके मुक़ाबिले में जालसाज़ी, दग़ाबाज़ी, चोरी और धोखेबाज़ी ये कौन बड़े अपराध हैं? फिर भला क्लाइव जैसे आदमी के लिए यह दोष किस गिनती में? वह जिस श्रेणी का अङ्गरेज़ था, जिस सहवास में उसने शिक्षा पाई थी, जिस उद्देश से वह भारतवर्ष में आया था, उन सब बातों पर लक्ष्य रखते हुए उससे एक आदर्श अङ्गरेज़ के सदृश सच्चरित्र की प्रत्याशा करनी ही विडम्बनामात्र थी! मेकाले ने लिखा है:—"क्लाइव के

घरवालों को उसके स्वभावों से कुछ भी आशा न थी। अत-एव यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं कि उन्होंने १८ वर्ष की अवस्था में क्लाइव को प्रसन्नतापूर्वक ईस्ट-इंडिया-कम्पनी की मुहर्रिरी से कुछ रुपया पैदा करने अथवा मदरास में बुख़ार से मर जाने के लिए भारतवर्ष में भेज दिया।" जिस समय जो ज़रूरत पड़ी,—जाल से, फ़रेब से जैसे बना, क्लाइव ने निश्शंक-चित्त हो उसे पूरा किया, और ऐसे व्यवहारों से कभी उसका रोम तक नहीं हिला! मिल ने लिखा है कि "धोखे से काम निकालने में क्लाइव को कभी ज़रा भी हक-धक न होती थी, और न वह इसमें ज़रा से भी कष्ट का अनुभव करता था।" निदान जिस दुर्दान्त अङ्गरेज़ युवक ने बाल्यकाल से सहस्रों निरंकुश कार्यों में जीवन बिताकर, निरंतर स्वजन-बान्धवों को सशंकित रख अन्त में अशान्त हृदय से आत्महत्या कर इस लोक से प्रस्थान किया, उसकी अभागी स्मृति नीरवता में शान्ति लाभ करे। जिन्होंने बड़े आग्रह और सम्मानपूर्वक "पलासी-विजेता महावीर क्लाइव" कहकर भक्ति-पुष्पों से उसके चरणों की बन्दना करने के लिए साक्षात् देवमूर्ति की कल्पना की है, उन्हें उसकी मृत्यु पर अनन्त दुःख हुआ; परन्तु जिस विशाल जाति ने अपने गौरव की कहानियों से सभ्य-संसार को प्रतिध्वनित कर इंङ्गलैंड के राजमार्गों के आसपास ब्रिटिश वीर-केसरी नेलसन और विलिंगटन के जयस्तम्भ स्थापित किये हैं, उसने आज तक क्लाइव को अपने जातीय कीर्ति-मन्दिर में स्थान नहीं दिया है।

जिन्होंने व्यापार के बहाने से बंगालियों के साथ गुप्त षड्यंत्रों में शामिल हो राज्य-विप्लव की बदौलत इस देश का राज्य-सिंहासन पड़ा पाया था, उनका मूल मंत्र रुपया ही

था। वे जिस शास्त्र के उपासक थे, उन्होंने उसकी मर्यादा का संरक्षण किया; अतएव उसके लिए उनका तिरस्कार करना व्यर्थ ही है। हम लोग जो उन्हें आदर्श अङ्गरेज़ मानकर उनकी बातों, उनके लेखों, उनकी चालों से सिराजुद्दौला को नर-पिशाच कहकर इतिहास का अपमान करते हैं, उसके लिए हम स्वयम् ही विशेष निन्दाभाजन हैं।

उमीचन्द को धोखा देकर ही अङ्गरेज़ लोग निश्चिन्त न हो सके, बल्कि वे उसे शीघ्र ही कलकत्ते में लाकर अपनी मुट्ठी में रखने के लिए व्याकुल होने लगे। स्क्राफ़्टन के ऊपर इस कार्य का भार डाला गया कि किस चालाकी से "धूर्त्त उमीचन्द" को और भी अधिक धूर्तता से परास्त करके कार्य-सिद्धि सम्भव है। स्क्राफ़्टन ने उमीचन्द से एकान्त में कहा कि "बातचीत तो एक प्रकार से समाप्त हो चुकी। अब दो ही चार दिन के बीच में लड़ाई छिड़ जायगी। उस समय चटपट सब लोगों को घोड़ों पर चढ़कर भाग जाना पड़ेगा। हम तो कोई न कोई उपाय करेंगे ही; परन्तु तुम एक तो स्थूल-शरीर, दूसरे वृद्ध, क्या तुम घोड़े की सवारी पर भाग सकोगे?" उद्देश सिद्ध हुआ, उमीचन्द यह समाचार सुन कर एकाएक शिर पर हाथ रख बैठ गया। उसने और तो बहुत सी बातें सोच रक्खी थीं, परन्तु भागने की बात एक बार भी उसके दिमाग़ में न आई थी। किंकर्त्तव्य-विमूढ़ की भांति उसने स्क्राफ़्टन के हाथों में अपने को सौंप दिया, और उस समय चालाकी से सिराजुद्दौला की अनुमति लेकर दोनों ही मुर्शिदाबाद को चल दिये

जो पाप-संकल्पों में लिप्त होते हैं वे किसी पर जी खोलकर विश्वास करना नहीं चाहते। अङ्गरेज़ों ने निश्चय

किया कि मीरजाफ़र जिस समय संधिपत्र पर हस्ताक्षर करे, उस समय अङ्गरेज़ों के प्रतिनधि वाट्स साहब का मौजूद होना आवश्यक है। परन्तु मीरजाफ़र से बग़ावत का सन्देह होने के कारण सिराजुद्दौला उसे पदच्युत कर चुका था। गुप्तचर लोग बड़ी सावधान-दृष्टि से उसके कामों पर जांच रखते थे। ऐसी दशा में संधिपत्र पर हस्ताक्षर होना कठिन हो गया।

अन्त में एक दिन वाट्स साहब हिम्मत बांधकर पर्दों से ढकी हुई पालकी पर सवार हो घूंघटवाली स्त्रियों की तरह भय और संकोच के साथ मीरजाफ़र के अन्तःपुर के द्वार पर पहुंचे। प्रतिष्ठित मुसलमान-घरानों की रीत्यानुसार पालकी सीधी ज़नानख़ाने में पहुंचाई गई। वाट्स साहब ने उसके भीतर से निकलकर बेगमों के महल में आसन ग्रहण किया,* और उसके सामने मीरजाफ़र ने मुसलमानों के परम पवित्र धर्म-ग्रन्थ को शिर से लगा, एक हाथ अपने प्राणप्रिय पुत्र मीरन के शिर पर रख और एक हाथ में क़लम ले संधिपत्र पर हस्ताक्षर किये,—"ईश्वर और पैग़म्बर की दोहाई देकर क़सम खाई कि मरते दम तक मैं इस संधिपत्र की शर्तों को पालन करने के लिए बाध्य हूं।"

यह गुप्त संधिपत्र लेकर मीरजाफ़र का विश्वासपात्र नौकर उमरबेग जमादार दसवीं जून को कलकत्ते में पहुंचा। उस समय चारों ओर इस गुप्त-मंत्रणा की बात का शोर मच गया। अब देर करने का अवसर नहीं रहा। क्लाइव चट से युद्ध-यात्रा करने के लिए कटिबद्ध हो बड़े गर्व के साथ सिराजुद्दौला को पत्र लिखने बैठा।

---

* 'आर्मी' जिल्द २।

मुसलमान इतिहास-लेखकों की बातों के लक्षणों से प्रतीत होता है कि मीरजाफ़र कुरान का स्पर्श करके भी अङ्गरेज़ों को विश्वास न करा सका; अतएव इसके लिए उमाचरन और जगत्-सेठ को ज़ामिन होना पड़ा था कि मीरजाफ़र वास्तव में संधिपत्र में लिखी हुई सारी शर्तों का धर्मानुसार प्रतिपालन करेगा। इस देश के लोग बड़े ही सरल-विश्वासी हैं, उनका आज भी यह विश्वास है कि मीरजाफ़र ने पुत्र के शिर पर हाथ रख कुरान के स्पर्श-सहित कृतघ्नों की तरह, अङ्गरेज़ों के साथ संधि कर गुप्त रीति से संधिपत्र पर हस्ताक्षर किये थे; इसी लिए दैव के कोप से उसका पापी हाथ कुष्ट रोग से गलकर गिर पड़ा था! एवं उसके प्रिय पुत्र मीरन के मस्तक पर अकस्मात् वज्राघात हुआ था! परन्तु इस तरह का सरल-विश्वास केवल हमारी ही पैत्रिक सम्पत्ति नहीं है;—क्लाइव ने जिस समय आत्महत्या की, उस समय विलायत के कितने ही प्रतिष्ठित पुरुषों ने भी कहा था कि इतने दिनों के बाद आज भगवान् के न्याय्य दण्ड से समस्त पापों का प्रायश्चित्त हुआ। *

इस ओर सिराजुद्दौला इस गुप्त संधिपत्र का पता पाकर मीरजाफ़र को क़ैद करने का बन्दोबस्त करने लगा। मीरजाफ़र के महल में गोला-बारूद की कमी न थी। इसलिए उसको क़ैद करना कठिन था। वाट्स साहब यह ख़बर पाकर वायुसेवन के बहाने कुछ सहयोगियों के साथ रात ही में घोड़े पर सवार हो भाग गये! फिर तो सिराजुद्दौला को कोई सन्देह न रह गया। उसने फ़ौरन् ही सेनापति वाट्सन को एक पत्र लिखा। यही उसका अंतिम पत्र था:—

* मेकालेज़ 'लार्ड क्लाइव।'

२५ रमज़ान (१३ जून सन् १७५७ ई०)

"मैंने जो संधि संस्थापित की थी, उसकी शर्तों का पालन करने के लिए वाट्स साहब को प्रायः सब हिसाब चुका दिया। सम्भव है, कुछ थोड़ा सा शेष रह गया हो। मानिक-चंदवाले मामले का भी एक तरह से निपटारा कर दिया था। परन्तु यह सब करने पर भी फल कुछ न हुआ। वाट्स और क़ासिमबाज़ार के अन्य कोठीवाल अङ्गरेज़ वायुसेवन का बहाना करके रात में भाग गये। यह धोखा देने का स्पष्ट लक्षण और संधि-भंग की पूर्व-सूचना है। मुझे यह अच्छी तरह विदित होगया है कि तुम्हारे अनजान में अथवा बिना तुम्हारे सिखाये यह कार्य संघटित नहीं हुआ है। मैं पहले ही ऐसा होने की आशंका करता था, और यह जानकर ही, कि तुम विश्वासघात करोगे, मैं पलासी से छावनी उठा लाने के लिए राज़ी न होता था।

"जो हो, इसके लिए परमात्मा को धन्यवाद है कि मेरे द्वारा संधि भंग नहीं हुई। मैंने जो धर्म-प्रतिज्ञा की थी, ईश्वर और पैग़म्बर उसका साक्षी है। जो पहले प्रतिज्ञा भंग करेंगे, वेही उस घोर पाप-दण्ड के भागी होंगे।" *

चारो ओर राज्य-विप्लव, उसके बीच में सिराज का सिंहासन पत्ते की तरह डांवाडोल। भरसक प्रयत्नों से सिंहासन की रक्षा के लिए व्याकुल हो वह अमीर-उमरावों को आह्वान करने पर बाध्य हुआ। इन सब ऐतिहासिक घटनाओं की यथोचित समालोचना न करके लार्ड मेकाले ने सिराजुद्दौला ही को प्रतिज्ञा-भंगकारी और विश्वासघाती सिद्ध करने के लिए अनायास ही ग्रन्थ लिख डाला है! यही

* 'ईव्ज़ जर्नल'।

ग्रन्थ हमारे विश्वविद्यालयों के उच्च शिक्षार्थी युवकों की पाठ्य-पुस्तकों में सम्मिलित है ! इतिहास-रचना को यह प्रणाली अब आजकल के पण्डित-समाज में कदापि आदरणीय नहीं हो सकती। आज वैज्ञानिक प्रणाली का प्रचार है, और उसके अनुसार मेकाले के इन मतामतों की अपेक्षा सिराजुद्दोला का उपरोक्त अंतिम पत्र ही अधिक आदरणीय है।

---

## छब्बीसवां परिच्छेद।

## युद्ध-यात्रा।

युद्ध-यात्रा की आवश्यक तैयारियां हो चुकीं। १२ जून को कलकत्ते की फ़ौज चन्दननगर की सेना के साथ मिल गई, और चन्दननगर के क़िले की रक्षा के लिए सिर्फ़ १५० जहाज़ी गोरे तईनात करके १३ जून को समस्त ब्रिटिश सेना ने—जिसमें ६५० युरोपियन, १५० पैदल गोलंदाज़, ५० नाविक, २१०० देशी सिपाही और थोड़े से पुर्तगीज़, सब मिलाकर कुल ३००० आदमी थे—युद्ध के लिए कूच किया। गोला-बारूद इत्यादि सामान लेकर २०० नौकाओं पर गोरा लोग सवार हुए, और काले सिपाही गंगा के किनारे किनारे शाही सड़क से पैदल अग्रसर होने लगे।

कलकत्ते से मुर्शिदाबाद का मार्ग बहुत लम्बा था। रास्ते में हुगली और काटोया के क़िले तथा अग्रद्वीप और पलासी की छावनियों में नवाब की सेना पड़ी हुई थी। यदि ये फ़ौजें अपने वीरोचित कर्तव्य का पालन करतीं तो शायद हुगली ही के पास अङ्गरेज़ पंचत्व को प्राप्त हो जाते। परन्तु अङ्गरेज़ों को आगे बढ़ने से रोकना तो दूर रहा, किसी सरदार ने एक बार वीरों की भांति उनके सामने तक आने का भी साहस नहीं किया। इतिहास में केवल यही उल्लेख पाया जाता है कि हुगली का फ़ौजदार अङ्गरेज़ों के फ़ौजी जहाज़

देखकर और क्लाइव की डाट-फटकार सुनकर नितान्त भयभीत हो गया, और बिना ही चीं-चपड़ के उसने अङ्गरेज़ों को रास्ता दे दिया।

अङ्गरेज़ों ने जिस समय चन्दननगर पर आक्रमण किया, महाराज नन्दकुमार उस समय हुगली का फ़ौजदार था। उसने पहली बार बिना किसी रोक-टोक के अङ्गरेज़ों को किस लिए रास्ता दे दिया था, नवाब उस बात को सुन चुका था; और इसी लिए अबकी बार उसने एक दूसरा फ़ौजदार हुगली में भेज दिया था। ये सब बंगाली फ़ौजदार और उनके सैनिक सिपाही अस्त्र-विद्या में कैसे निपुण और शूरबीर थे, यह अङ्गरेज़ों को अच्छी तरह मालूम था। परन्तु इस पर भी वे किस बिरते पर सिर्फ़ १५० जहाज़ी गोरे क़िले में छोड़ शेष सारी फ़ौज के साथ युद्ध-यात्रा के लिए अग्रसर हुए थे? क्या वे यह न जानते थे कि यदि हुगली का फ़ौजदार पीछे से आक्रमण करता तो अङ्गरेज़ों का कैसा सर्वनाश संघटित हो सकता था? अङ्गरेज़ों की निश्चिन्त रण-यात्रा, फ़ौजदार का गहरा मौनावलम्बन, चन्दननगर में सिर्फ़ १५० गोरों की तईनाती,—इन सब बातों पर एकत्र विचार करने से जान पड़ता है कि मुर्शिदाबाद की गुप्त-मंत्रणा ने शायद हुगली के नये फ़ौजदार को भी कर्त्तव्य-भ्रष्ट किया था।

इस ओर विद्रोह का पता पाकर मीरजाफ़र को क़ैद करने का विचार त्याग सिराजुद्दौला उसे अपने पक्ष में मिलाने का उद्योग करने लगा। बहुतेरों ने इसे सिराजुद्दौला की कायरता का एक स्पष्ट उदाहरण बताया है। परन्तु उस समय मीरजाफ़र के साथ युद्ध ठान देने से मुर्शिदाबाद ही में पलासी का युद्धाभिनय समाप्त होता! सिराजुद्दौला

स्वाधीनता की रक्षा के लिए व्याकुल था। निदान किसी किसी ने उसे मीरजाफ़र को क़ैद करने के लिए उत्तेजित भी किया, परन्तु उसने उनकी बातों पर तनिक भी ध्यान न दिया। सारे अपराधों को क्षमा कर उसने मीरजाफ़र को राजमहल में बुला भेजा। सिराजुद्दौला ने सोचा कि इसलाम-धर्म और अलीवर्दी के नाम से स्वाधीनता की रक्षा के लिए मीरजाफ़र को सारी बातें समझाने बुझाने पर उसकी भ्रांति कदाचित् अब भी दूर हो जायगी। बाग़ी लोग सिराजुद्दौला से बहुत डरते थे। उन्होंने देखा कि सारी बातें नवाब पर प्रकट हो गई हैं, इसलिए अब मेल कर लेना ही अच्छा है। उन्होंने भरसक यही उपदेश देने में कोई त्रुटि न की; परन्तु मीरजाफ़र की हिम्मत नहीं पड़ी। वह राजमहल में उपस्थित नहीं हुआ।

अन्त में आत्माभिमान की अवहेलना कर पालकी पर सवार हो स्वयम् सिराजुद्दौला मीरजाफ़र के मकान पर पहुंचा। इस बार मीरजाफ़ार को बाहर निकलना पड़ा। उस की आंखों में शरम आ गई, और शिर नीचे डालकर अब की बार उसे अपने स्नेह-भाजन सुहृद के मुख से करुणाजनक धिक्कार सुननी पड़ी। क्षमा-प्रदर्शन करते हुए जिस समय सिराजुद्दौला ने अल्लाहताला, मोहम्मद, इसलामी गौरव और अलीवर्दी के वंश-मर्याद की दुहाई देकर मीरजाफ़र को फिरंगियों से स्नेह-सम्बन्ध-छिन्न करने के लिए उत्तेजित किया तो मीरजाफ़र को सभी बातें स्वीकार करनी पड़ीं। कुरान आया, और मुसलमानों के इस परम पवित्र धर्म-ग्रन्थ को मस्तक से लगाकर मुसलमान-नरेश सिराजुद्दौला के सामने सेनापति मीरजाफ़र ने बड़े अदब से झुककर क़सम खाई कि ईश्वर और पैग़म्बर के नाम से धर्म की शपथ खाकर मैं यह स्वीकार

करता हूं कि अपने मरते दम तक इसलामी राज्य-सिंहासन की रक्षा करूंगा। जीतेजी कभी विधर्मी फ़िरंगियों की सहायता न करूंगा।

ईश्वर के पवित्र नाम से शपथ देने पर सिराजुद्दौला का सारा सन्देह दूर हो गया। हिन्दू लोग ब्राह्मणों के चरणों पर हाथ रखने के बाद भी झूठ बोल सकते हैं, सिराजुद्दौला इस बात पर विश्वास नहीं करता था। और इसीलिए वह एक बार उमीचन्द की धर्म-शपथ से धोखा खा चुका था! एक मुसलमान व्यक्ति कुरान को मस्तक से लगाकर भी झूठ बोलने का साहस करेगा, इस पर भी विश्वास न करके सिराजुद्दौला ने अबकी बार फिर धोखा खाया! लोगों ने कहा है कि सिराजुद्दौला पाखण्डी, धर्म-अधर्म के विचारों से शून्य निरंकुश नौजवान था। परन्तु यदि वह ऐसा होता तो शायद उसके पक्ष में अच्छा होता। ऐसा होने पर हिन्दू लोग ब्राह्मणों का पादस्पर्श करके, फिरंगी लोग बाइबिल चूम कर और मुसलमान व्यक्ति कुरान को मस्तक से लगाकर उसको इच्छानुसार हर बात का विश्वास न करा सकते। जिन्होंने अपने अपने धर्म की दुहाई दे जानबूझकर उसे धोखा दिया था, उनके सब दोषों पर पर्दा पड़ गया, और इस अपराध में सिराजुद्दौला को इतिहास की उलटी डाट-डपट सहनी पड़ी कि उसने उनकी धर्म-शपथों से क्यों धोखा खाया!

निदान इस प्रकार घरू लड़ाई का निपटारा करके सिराजुद्दौला ने पलासी के मैदान में सेना जुटाने का उद्योग आरम्भ किया। आशा हुई कि जब मीरजाफ़र ने फिरंगियों की सहायता न करने का वचन दिया है तो अबकी बार अङ्गरेज़ों की रक्षा नहीं। इसी साहस से उसने युद्ध की तैयारी के लिए सैनिकों-

को आह्वान किया। परन्तु बाग़ियों के बहकाने से वेतन न पाने तक युद्ध-यात्रा के लिए वे राज़ी न हुए। अतएव उनका पिछला वेतन चुकाकर सिराजुद्दौला ने दम लेने का मौक़ा पाया। रायदुर्लभ, यारलतीफ़, मीरजाफ़र, मीरमदन, मोहनलाल और फ़रासीस सेनानायक सिनफ़्रे, एक एक विभाग के सेनाध्यक्ष का भार ग्रहण कर सिराजुद्दौला के सहगामी हुए।

गुप्तचरों के गुप्त अनुसंधानों के भय से मीरजाफ़र को हर समय अङ्गरेज़ों के पास सम्वाद भेजना बहुत कठिन हो गया। वही सारे षड़यंत्रों का मूल था। अतएव उसके प्रत्युत्तर की आशा में क्लाइव ने उसको रोज़ एक पत्र लिखा; परन्तु १३ जून सोमवार से १६ जून बृहस्पतिवार तक—चार दिन के भीतर–कोई भी जवाब न पाया। १४ जून को वाट्स साहब ने अङ्गरेज़ी पड़ाव में आकर शीघ्र ही मीरजाफ़र के पास एक विश्वासपात्र हरकारा भेज दिया। दुर्भाग्य से यह हरकारा भी नहीं लौटा। अंत में किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो क्लाइव ने फ़ौज के सहित पाटुलि में छावनी डाल दी।

मीरजाफ़र ने १६ जून गुरुवार के दिन क्लाइव को पहला पत्र लिखा। यह पत्र शुक्रवार को पाटुलि की छावनी में क्लाइव को मिला। मीरजाफ़र सिराजुद्दौला के साथ जो मौखिक मित्रता संस्थापित करने के लिए बाध्य हुआ था, उसका भी उल्लेख उसने स्वयम् ही अपने पत्र में कर दिया। परन्तु इसके साथ ही उसने यह भी लिखा कि इसके कारण मैं अङ्गरेज़ों की सहायता करके अपने वचनों को पूरा करने में तनिक भी कसर नहीं करूंगा। परन्तु यह पत्र पाकर भी क्लाइव को आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ।

सामने काटोया का क़िला था। यह निश्चय हो चुका था कि इस क़िले का सेनाध्यक्ष सिर्फ़ दिखावे के लिए बनावटी युद्ध करके अङ्गरेज़ों के निकट पराजय स्वीकार करेगा।* यह बात कहां तक सत्य है, इसे जानने और जांचने के लिए शनिवार को प्रातःकाल के समय मेजर कूट २०० गोरे और ३०० काले सिपाही लेकर काटोया की ओर अग्रसर हुए। क्लाइव सेना के सहित पाटुलि ही में ठहरा रहा। अजय और भागीरथी के संगम पर काटोया का क़िला था। मराठों के आक्रमणों के समय यहां बड़ी बड़ी लड़ाइयां होने के कारण यह क़िला वीरों की लीलाभूमि प्रसिद्ध हो गया था। परन्तु इस बार क़िले के फाटक पर युद्ध नहीं हुआ। कुछ देर तक लड़ाई का नाटक सा खेलकर नवाब की फ़ौज अपने ही हाथों से जगह जगह छप्परों में आग लगाकर क़िले से भाग गई। इस युद्धाभिनय में नवाब की सेना ने जो थोड़ी सी वीरता दिखाई थी, कप्तान कूट ने उसीसे यह ख़याल किया था कि शायद क़िले का सेनाध्यक्ष अपने पूर्व-निश्चय को परित्याग कर युद्ध करने के लिए ही कटिबद्ध हुआ है। जो हो, जब काटोया सुनसान हो गया तो क्लाइव ने धीरे धीरे सेना के सहित उसपर अधिकार कर लिया। प्राणों के भय से नगरनिवासियों के भाग जाने के कारण इतना चावल अङ्गरेज़ों के हाथ लगा कि जिससे दस हज़ार सिपाही सालभर तक अच्छी तरह उदर-पूर्ति कर सकते थे। निदान क्लाइव ने ससैन्य काटोया में डेरे डाल दिये।

मीरजाफ़र के पहले ही पत्र से क्लाइव के मन में खलबली मच गई थी, वाट्स साहब के पूर्व-प्रेरित दूत ने लौटकर

---

* 'अर्मी' जिल्द २ पृष्ठ १६८।

सन्देह और भी बढ़ा दिया। कुछ और सम्वाद आने की प्रतीक्षा में क्लाइव दो दिन तक तृष्णा युक्त आंखों से रास्ता तकता रहा। कभी विश्वास और कभी अविश्वास के विचारों में चक्कर लगाते हुए वह स्वभावतः ही यह विचार करने लगा कि गुप्त संधिपत्र शायद सिराजुद्दौला ही का केवल कूट-कौशल है। मीरजाफ़र ने उससे मित्रता संस्थापित करके शायद पुरानी बातों को भुला दिया है। सामने भागीरथी अपनी तरल तरंगों से समुद्र की ओर को प्रवाहित हो रही थीं। क्लाइव ने सोचा कि अभी बरसात के दिन नहीं हैं; अतएव इस समय भी नदी के पार उतर जाने की पूरी संभावना है। परन्तु हा! पल्ले पार उतर जाना जितना आसान है, उधर से लौटना भी क्या उतना ही सहज है? क्लाइव के होश-हवास जाते रहे, उस का इतिहास प्रसिद्ध बाहुबल और रणकौशल मानो एकाएक शिथिल पड़ गया।* सोचने लगा कि शायद अशुभ मुहूर्त में फ़ौज का कूच हुआ, अथवा बुरी घड़ी ही में बाग़ियों के भरोसे ख़ाहमख़ाह को सिराजुद्दौला के विरुद्ध तलवार उठाई। भविष्य में हौस आफ़ कामन्स के सामने गवाही देते समय भी इसी दिन की बात को याद करके क्लाइव ने स्वीकार किया है:—
"मैं बड़ा ही भयभीत हुआ कि यदि कहीं हार गया तो हार का समाचार ले जाने के लिए भी एक आदमी को ज़िन्दा वापिस जाने का मौक़ा न मिलेगा।"

सोमवार को तीसरे पहर के समय मीरजाफ़र के पास से एक ही साथ दो पत्र आये। एक क्लाइव के नाम, दूसरा उमर-बेग के नाम। इन दोनों पत्रों से सन्देह दूर हो गया। परन्तु अङ्गरेज़ों के पास अश्वारोही सेना न होने के कारण क्लाइव की

* मेकालेज़ 'लार्ड क्लाइव'।

आशंका बहुत बढ़ने लगी। उसने सुना था कि महाराजा वर्धमान के साथ सिराजुद्दौला की अनबन है, अतएव अनन्योपाय होकर क्लाइव ने महाराज वर्धमान को लिख भेजा कि "आपकी अश्वारोही सेना चाहे एक हज़ार से भी अधिक न हो, तथापि उसीको लेकर आप हमारे साथ आ मिलिये।"

यह पत्र लिखकर भी क्लाइव की विकट चिंता दूर न हुई। उसकी आज्ञा के अनुसार २१ जून मङ्गलवार को सामरिक सभा का अधिवेशन हुआ। क्लाइव ने कहा है कि "यही मेरे जीवन की प्रथम और अन्तिम सामरिक सभा थी।" * दुःख और चिन्ता से जर्जरित बीस ब्रिटिश वीर-केसरी काटोया के क़िले की सामरिक सभा में सम्मिलित हुए। इस सभा में क्लाइव ने किस आशय का प्रश्न उपस्थित किया था, इस विषय में इतिहास में बड़ा मतभेद पाया जाता है।

हौस आफ़ कामन्स में गवाही देते समय क्लाइव ने स्वयम् कहा है कि "मैंने उस सभा में यह प्रश्न किया था कि इसी समय नदी पार करके सिराजुद्दौला पर आक्रमण करना ठीक है, अथवा और समाचार आने के लिए प्रतीक्षा करनी उचित है?

क्लाइव के चरित्र-लेखक सर जान म्यालकम लिखते हैं कि क्लाइव के जो काग़ज़-पत्र मेरे हाथ आ गये थे, उनमें उक्त सभा की कार्यवाही का विवरणपत्र भी था। उसमें यह

---

* चन्दननगर पर आक्रमण होने के समय और पलासी के आम्रवन में—और भी दो बार सामरिक सभा के अधिवेशन की बात इतिहास में पाई जाती है।

प्रश्न इस रूप में लिखा था:—"वर्तमान अवस्था में दूसरों की सहायता न लेकर स्वयम् अपने ही बाहुबल से नवाब के पड़ाव पर आक्रमण करोगे, अथवा देशी शक्तियों की सहायता न पाने तक ठहरे रहोगे ?"

इस सम्बन्ध में हौस आफ़ कामन्स में गवाही देते समय सामरिक सभा के दूसरे सदस्य मेजर कूट (परवर्ती इतिहास में इनका नाम आयार कूट प्रसिद्ध है ) ने कहा है कि उक्त प्रश्न इस प्रकार था:—"ऐसी दशा में फ़ौरन् ही नवाब के साथ युद्ध ठान देना उचित है, अथवा वर्षा ऋतु बीतने तक काटोया में आत्मरक्षा करके अपनी सहायता के लिए मराठों की सेना को बुलाना युक्तिसंगत है ?" समसामयिक इतिहास-लेखक अर्मी ने भी इसी आशय का उल्लेख किया है। वह उक्त प्रश्न को इस प्रकार लिखता है:—"क्या फ़ौज शीघ्र ही क़ासिम-बाज़ार के द्वीप तक पहुंच कर—चाहे कुछ भी क्यों न हो—नवाब पर आक्रमण करे, अथवा काटोया में जो बहुत से चावल मिले हैं, उन्हें बरसात भर बैठे बैठे खाय, और उसके बाद मराठों को बुलाकर उनसे मिल जाय ?"

क्लाइव के काग़ज़-पत्रों में "देशी शक्तियों" से सहायता लेने की बात पाई जाती है, और अर्मी के इतिहास तथा मेजर कूट के इज़हारों में "महाराष्ट्र शक्ति" का उल्लेख मिलता है। परन्तु क्लाइव के इज़हारों में किसी देशी शक्ति की सहायता का कहीं नाममात्र को भी ज़िक्र नहीं आया है। उनमें सिर्फ़ यही कहा गया है कि और समाचार आ जाने के लिए कुछ समय तक ठहरना उचित है या नहीं! न मालूम इज़हार देते समय क्लाइव से यह मोटी भूल कैसे हुई ?

क्लाइव ने जिस समय हौस आफ़ कामन्स में गवाही दी थी, उस समय वह लेफ़्टिनेन्ट कर्नल क्लाइव नहीं था, पलासी-विजेता लार्ड क्लाइव था। और इङ्गलैंड की जनता में "नवाब" क्लाइव के नाम से प्रसिद्ध था। क्या वह उस वक्त पिछली बातें भूल गया था? कुछ लोग कह सकते हैं कि बहुत दिनों तक इतनी बातें याद रखनी असम्भव हैं; परन्तु दुःख की बात तो यह है कि जिस स्थान पर आत्मगौरव को बढ़ाना और अपने को निर्दोष सिद्ध करना अभीष्ट था, ठीक उसी जगह आकर क्लाइव की स्मरण-शक्ति शिथिल पड़ गई। यही उस के इज़हारों में एक प्रधान दोष था!

जिस व्यक्ति ने एक बार अपने स्वार्थसाधन के लिए जान-बूझकर जालसाज़ी की थी, एवं वैसी दशा में और भी सौ बार वैसे ही काम करने के लिए तैयार था, उस व्यक्ति ने कुछ दिन बाद आत्मगौरव को बढ़ाने और अपने अपराधों की सफ़ाई देने के लिए हौस आफ़ कामन्स जैसे धर्माधिकारी न्यायालय के सामने जानबूझकर दो एक नितान्त आवश्यक बातें गोलमाल करके इज़हार दिया था, इसमें कोई सन्देह नहीं।

अलीनगर की संधि के बाद क्लाइव ने जिस समय यह ख़बर पाई थी कि सिराज़ुद्दौला की तोपें अभी तक नहीं आई हैं, उस समय वह रात्रि ही में शत्रु का संहार कर डालने के लिए सब से पहले नाच उठा था। चन्दननगर पर आक्रमण करने के पहले जिस समय यह समाचार मिला कि मद-रास से फ़ौज आ रही है, और सिराज़ुद्दौला पठानों के भय से भयभीत है तो उस समय सदस्यों के पूर्णरूप से सहमत न होने पर भी क्लाइव ने बड़े अभिमान के साथ कहा था कि "अभी बात की बात में चन्दननगर का सर्वनाश करूंगा।"

उमरबेग ने जिस समय संधिपत्र लाकर दिया था, उस समय भी क्लाइव बड़े ज़ोर-शोर के साथ फ़ौज लेकर पलासी की ओर अग्रसर हुआ था। परन्तु काटोया में पदार्पण करके उसका अंतरात्मा वैसा उत्साह प्रकट न कर सका, और इस आशंका से कि पीछे से कहीं निम्न श्रेणी के सैनिक वीर एकमत हो युद्ध-यात्रा की राय देकर उसे कराल विपत्ति में न डाल दें, वह पहले ही अपना मत प्रकट करके कहने लगा:—"मेरी राय है कि जहां तक आ गये हैं, वहीं ठहरें, आप लोगों की क्या सम्मति है?" इस बात को बारह सरदारों ने स्वीकार किया। परन्तु सबसे छोटे अफ़सर मेजर कूट ने इसके प्रतिवाद में कहा:—"आप लोग बड़ी भारी भूल कर रहे हैं। फ़ौज को अब भी यही विश्वास है कि वह निश्चय ही विजय प्राप्त करेगी। शत्रु के सामने आकर साहस छोड़ बैठने से सेना भी हतोत्साह हो जायगी, और फिर उसे किसी तरह भी उत्तेजित न किया जा सकेगा। फ्रांसीसी सेनापति लास ख़बर पाते ही नवाब की फ़ौज के साथ मिल जायगा। उस समय नवाब की शक्ति भी बढ़ जायगी, और गुप्त-मंत्रणाओं को भी उत्साह मिलेगा। हम लोगों को घेरकर वह कलकत्ते की ओर भागने का रास्ता भी रोक देगा। आप लोग जिन्हें अभी नहीं देख रहे हैं, उन अनेक नई आपदाओं में फंसकर शायद बिना ही युद्ध के पराजित होंगे। आओ, शीघ्र आगे बढ़ो, अन्यथा फ़ौरन् भाग चलो। इस जगह ठहरना असम्भव है।" छः सेनापतियों ने मेजर कूट के इस मत का समर्थन किया। परन्तु उनकी बात कार्य में परिणत नहीं हुई। क्लाइव ही की राय प्रबल रही। युद्ध-यात्रा रुक गई।

हौस आफ़ कामन्स में गवाही देते समय क्लाइव ने कहा है कि "मेजर कूट और कप्तान ग्रान्ट के अतिरिक्त और सभी ने युद्ध के विरोध में राय दी थी। उन दोनों की राय पर ध्यान देने से कम्पनी-बहादुर का सर्वनाश होता, इसीलिए मैंने उनके कथन की अवहेलना की थी।"

क्लाइव ने स्वयम् ही सबसे पहले युद्ध के विरुद्ध अपनी राय प्रकट करके अन्यान्य सेनानायकों को अपने ही अनुकूल मत प्रकट करने का सहारा दे दिया था; परन्तु उसके इज़हारों में इस बात का उल्लेख नहीं है। बल्कि इज़हारों को पढ़ने से यही समझ में आता है कि "अधिकांश लोग युद्ध का विरोध कर रहे थे, कम्पनी के कल्याण के लिए केवल वही अकेला युद्ध के पक्ष में खड़ा हुआ था!" यहां पर भी क्या क्लाइव की स्मरण-शक्ति सहसा शिथिल पड़ गई थी ? मेकाले ने कहा है:—"अफ़ीम के प्रसाद से पीनक में निमग्न क्लाइव बीच बीच में चौंक पड़ता था।"* परन्तु उससे ये सब मोटी मोटी भूलें अफ़ीम के प्रसाद से हुई थीं, अथवा स्मृति की हीनता से, इसके निर्णय का अब कोई उपाय नहीं।

सामरिक सभा के सदस्यों की राय के प्रति उपेक्षा प्रकट करके सहसा क्लाइव के शरीर में पुनः शौर्य और वीरत्व का संचार किसलिए हुआ था, इसके सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद पाया जाता है! अर्मी ने लिखा है कि "सभा विसर्जित होते ही निकटस्थ घने जंगल के भीतर प्रवेश कर एक घंटे तक गम्भीर ध्यान में निमग्न रहकर क्लाइव स्वयम् ही समझ गया

---

* मेकालेज़ 'लार्ड क्लाइव'।

था कि आगे न बढ़ना ही मूर्खता है। इसीलिए उसने डेरे पर वापिस आते ही फ़ौज को आज्ञा दी कि सवेरे तड़के ही गंगा को पार करना होगा।

अर्मी का अनुसरण करते हुए स्टुअर्ट और मेकाले ने भी ऐसा ही लिखा है। और इस वर्णन में जो कुछ कमी रह गई थी, उसका पादपूर्ण करके बंगाली कवियों ने, ध्यान में निमग्न नेत्र मूंदे हुए अङ्गरेज़ सेनापति क्लाइव के सामने इङ्गलैंड की सौभाग्य-लक्ष्मी को सशरीर उपस्थित कर दिया। उन्होंने लिखा है :—

चिंता अवसन्न मने किछु क्षण परे,
निमीलित नेत्रे पुनः वसिला आसने;
सविस्मये सेनापति देखिला तखनि,
ज्योतिर्विमण्डिता एक अपूर्व रमणी।

अर्थात् :—

चिंतित रह्यो क्षणिक मन ही मन,
नयन मूंदि बैठ्यो पुनि आसन;
तब सेनापति चकित निहारी,
यक अपूर्व रमणी द्युति भारी।

क्लाइव के चरित्र-लेखक सर जान म्यालकम ने ध्यान के अंश को छोड़कर शेष बातों को ग्रहण किया है। परन्तु क्लाइव के विश्वासपात्र साथी स्क्राफ़्टन ने लिखा है कि "२२ जून को मीरजाफ़र का पत्र आते ही क्लाइव का इरादा बदल गया था, और उसकी आज्ञा से २२ जून को सायंकाल के ५ बजे अङ्गरेज़ी फ़ौज गंगा के पार हुई थी।"

किसकी बात सत्य है ? कौन दिन, किस समय और क्यों क्लाइव की राय में परिवर्तन हो गया था? स्वयम् उसका यह कथन है कि "किसी के सिखाने से मेरा मत नहीं बदला; विशेष विवेचना करने के बाद मैंने स्वयम् ही अपना निश्चय बदल दिया था।" परन्तु उसके विश्वासपात्र साथी ने इस बात को अस्वीकार किया है। फिर, किसकी बात विश्वास के योग्य है।

स्टुअर्ट, म्यालकम् और मेकाले सभी ने अर्मी के लिखे प्राचीन इतिहास से प्रमाण लिया है। अर्मी ने लिखा है कि "२२ जून को तीसरे पहर चार बजे के समय मीरजाफ़र के पास से आया हुआ वास्तविक पत्र पाकर क्लाइव ने उसका उत्तर दिया"। मीरजाफ़र का पत्र यह थाः—

"नवाब मनकरा गांव में, जो क़ासिमबाज़ार से दक्खिन छः मील की दूरी पर है, ठहरा है। और वहां पर खाई खोद. कर, सेना के सहित प्रतीक्षा कर रहा है, जहां पर मैंने आपको द्वीप के स्थल-भाग से फ़ौजकशी करते हुए एकाएक उसपर आक्रमण करने की राय दी थी।"

क्लाइव ने इस पत्र का यह उत्तर दियाः—

"मैं शीघ्र ही बिना विलम्ब के पलासी तक बढ़ जाऊंगा, और दूसरे दिन सवेरे ६ मील आगे दाऊदपुर गांव में चला जाऊंगा; परन्तु यदि आप मुझे वहां न मिले तो मैं नवाब से संधि कर लूंगा।"

इन सब अकाट्य प्रमाणों के विरुद्ध २२ जून के प्रातःकाल को गंगा पार होनेकी बात का उल्लेख करके अर्मी ने स्काफ़्टन के कथन का प्रतिवाद किया है, और यह प्रमाणित करने की

चेष्टा की है कि ध्यान-योग से क्लाइव के मत में परिवर्तन हुआ था। इसीलिए वह लिखता है कि २१ जून को १ घंटे ही के ध्यान-योग से क्लाइव के दिव्य चक्षु प्रस्फुटित हो गये, और इसी का अनुसरण करके मेकाले को भी बंगालियों की सत्य-निष्ठा के कलंकित करने में लाज आई!

अर्मी की तरह एक और समसामयिक इतिहास-लेखक भी २१ जून को मत-परिवर्तन होने की बात लिखता है। परन्तु उसने भी साफ़ ही लिख दिया है कि "इसी दिन शाम को मीरजाफ़र का एक पत्र आया था, जिसमें लिखा था कि "संधि में जो बातें तै हुई हैं, उनका यथोचित पालन होगा। परन्तु मैं जासूसों से ऐसा घिरा हूं कि मुझे बड़ी सावधानी से काम करना पड़ेगा।" इस पत्र को पाकर क्लाइव ने दूसरे दिन प्रातःकाल ही गंगा के पार होकर आगे बढ़ने का संकल्प किया था।"

राज्य-विप्लव संघटित होने के मूल कारण हमीं थे। हमारे मीरजाफ़र, हमारे रायदुर्लभ, हमारे जगत्-सेठ और हमारे स्वदेशी राज-कर्मचारियों का विश्वासघात ही सिराजुद्दौला के सर्वनाश का मूल कारण था। इसके लिए हमें सर्वदा ही इतिहास के निकट सौ सौ धिक्कारें सहनी पड़ेंगी। परन्तु स्वदेशियों के दल में उमीचन्द था, विदेशी सौदागरों के दल में भी क्लाइव था; इस ऐतिहासिक सत्य को स्वीकार करने से न्याय की मर्यादा विशेष सुरक्षित रह सकती है। अलीनगर की संधि संस्थापित हो जाने पर सिराजुद्दौला को संतुष्ट करने के लिए कर्नल क्लाइव ने एक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे। वह प्रतिज्ञा-पत्र इस प्रकार था:—

"बंगाल देश की अङ्गरेज़ी सेना का अध्यक्ष—मैं कर्नल क्लाइव "साबित जंग बहादुर" ईश्वर एवं उद्धारकर्ता ( यीशु ख्रुष्ट ) के सामने इस पत्र के द्वारा प्रतिज्ञापूर्वक यह प्रकट करता हूं कि अङ्गरेज़ों और नवाब सिराजुद्दौला के दर्मियान शान्ति विराजती है। नवाब के साथ जिस आशय की संधि हुई है, अङ्गरेज़ लोग उसका पूर्णतया प्रतिपालन करेंगे। जबतक नवाब संधि की रक्षा करेंगे तबतक अङ्गरेज़ लोग उनके शत्रु को अपने ही शत्रु के समान देखेंगे, और नवाब की जिस समय इच्छा होगी, उसी समय यथाशक्ति उनकी सहायता करेंगे।"

१२ फ़रवरी सन् १७५७ ई०।

क्लाइव ने इस प्रतिज्ञापत्र का कैसा प्रतिपालन किया था, इसके सम्बन्ध में हौस आफ़ कामंस में गवाही देते समय उसने स्वयम् ही कहा है। चन्दननगर पर आक्रमण करना निश्चय हो जाने पर क्लाइव ने और भी आगे बढ़ने के लिए पुनः पुनः सदस्यों और सरदारों से आग्रह किया था !*

क्लाइव का यह कूट व्यवहार सर्वथा ही निन्दनीय था, इस में सन्देह नहीं। परन्तु क्लाइव यदि बाइबिल-भक्त साधु क्रिश्चियनों की भांति एक गाल पर तमाचा खाकर दूसरा गाल भी घुमा देता, अथवा यदि इस देश के निवासी—हिन्दू और मुसलमान—"दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" इस उक्ति को चरितार्थ करके जी-जान से इसलामी सिंहासन की रक्षा करते तो अङ्गरेज़ों की राज्यशक्ति प्रतिष्ठित न होती। चरित्रहीनता ही से रोमन साम्राज्य का अधःपतन हुआ था, चरित्रहीनता

---

* क्लाइवस एवीडेन्स—प्रथम रिपोर्ट, १७७२ ई०।

ही से भारत-साम्राज्य का अभ्युदय हुआ ! जिन्हें विश्वास हो कि भगवान की इच्छा होने पर हलाहल विष से भी अमृत की उत्पत्ति हो सकती है, वे हमारे इतिहास में अपने विश्वास का उज्ज्वल दृष्टान्त प्रत्यक्ष देख सकते हैं !

---

# सत्ताईसवां परिच्छेद ।

——:*:——

## पलासी का युद्ध ।

आहत सिपाहियों को काटोया के क़िले में सुरक्षित रखकर शेष अङ्गरेज़ी फ़ौज २२ जून को सायंकाल के समय भागीरथी के पार होकर मीरजाफ़र के बताये हुए संकेतों के अनुसार दल बांधकर आगे बढ़ने लगी । पलासी का मैदान साढ़े सात कोस था । इस आशंका से कि अनुपस्थिति में कहीं नवाब की सेना पलासी पर अधिकार न जमा ले, अङ्गरेज़ लोग वृष्टि-बादलको शिर पर सहन करते हुए बड़ी शीघ्रता से धावित हुए, और अथक युद्ध-यात्रा से पसीने में सराबोर हो रात्रि के एक बजे उन्होंने पलासी के बाग़ में आश्रय लिया ।

सिराजुद्दौला मनकरा छोड़कर कुछ और दक्खिन को बढ़ गया था, और जिस स्थान पर गंगा घोड़े की टाप के सदृश वक्रगति में बहती है, उसके पूरब की ओर तेजनगरवाले विस्तृत मैदान के उत्तरी भाग में पड़ाव डाला था । इसके दक्खिन की ओर मिट्टी की एक नीची सी दीवार थी, उसके दक्खिन मिट्टी का एक स्तूप और दो पुराने तालाब थे । सिराज की फ़ौज के सैनिक बाजों से बहुत दूर तक यह वनभूमि प्रतिध्वनित होती थी। अतएव क्लाइव ने समझा कि शत्रु सन्निकट है । उस रात को अङ्गरेज़ी सिपाही तो खूब सोये; परन्तु सेनाध्यक्षों को आंख लगाने का मौक़ा न मिला । वे हर घड़ी सिर्फ़ इसी

सोच विचार में पड़े रहे—"देखें होनहार है क्या अब, रण में हार होय या जीत !"*

सिराजुद्दौला ने भी सोने का अवसर न पाया। अकेले सुनसान डेरे में बैठे हुए घड़ी पल गिनते गिनते सवेरा हो गया ! चिंता से क्लेशित, व्यथित चित्त, मन्द मन्द प्रकाश में वह अकेला उदास बैठा हुआ था कि इतने में एक चालाक चोर मौक़ा देखकर उसके सामने ही से गुड़गुड़ी उठाकर ले भागा ! सिराजुद्दौला सोते से उठे हुए की तरह उसके पीछे दौड़ा। बाहर आया तो देखा कि उसके संतरी आदि नौकर-चाकर सब न जाने किधर कहां भाग गये हैं। सिराज अत्यन्त मर्मपीड़ित स्वर में धीरे से कहने लगा कि "हाय इन्होंने मुझे जीते ही जी मुर्दों में शुमार कर लिया !"

सिंहासन पर पदार्पण करने के पहले सिराजुद्दौला ने शराब पीना छोड़ दिया था। उसके घोर शत्रु उस समय के अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने भी लिखा था कि पहले की बात चाहे कुछ हो, परन्तु अलीवर्दी के निकट धर्म-शपथ देने के बाद सिराज ने शराब के प्याले को हाथ से नहीं छुआ। पलासी के डेरे में जिस समय वह अकेला चिंता में निमग्न बैठा हुआ था, उस समय के चित्रपट का उद्घाटन करने के लिए केवल उसके स्वदेशी बंगाली कवि ने ही लिख रक्खा है :—

"ढाल सुरा स्वर्णपात्रे ढाल पुनर्वार,
कामानले कर सवे आहुति प्रदान;
खाउ, ढाल, ढाल, खाउ, प्रेम पारावार,
उत्थलिवे, लज्जा-दीप हईवे निर्वाण;

* "अर्मी" जिल्द २, पृष्ठ १७२।

"विवसना लो सुन्दरी ! सुरापात्र करे,
कोथा जाउ नेचे नेचे ? नवाबेर काछे ?
जाउ तवे सुधाहासि माखि बिम्बाधरे,
भुजंगिनी सम वेणी दूलितेछे पाछे;
चलुक चलुक नाच, टलुक चरण,
उड़ुक कामेर ध्वजा,—कालि हवे रण।" *

अर्थात् :—

कंचन-प्याले मैं सुरा, डारहु पुनि पुनि बार,
काम-अनल मंह आहुती, मिलि सब दोइक बार।
पियहु उंड़ेलहु पुनि पियहु, डारहु बारम्बार,
लाज-दीप बुति प्रेम को, उमड़ै पारावार।
लेहु विवसना सुन्दरी, निज कर मद्य-गिलास,
नचत नचत जाती कहां ? क्या नवाब के पास ?
जाहु सुधा-मुसुकानि निज, बिम्बाधरन लगाइ,
पीठि परी नागिन सदृश; वेणी रुचिर लसाइ।
छमकि छमकि छम धरहु पग, नाचहु घुमरि घुमारि
उड़ै मदन की उच्च ध्वज, कलि हुइहै रण-रारि।

वर्णना-लालित्य से इस सरस कविता ने बङ्गालियों के निकट परम सम्मान प्राप्त किया है ! दीपावलियों के तेज से जगमगाते हुए परमोज्ज्वल रंगमंच पर बारविलासिनी वैश्याओं की सहायता से इस सुलिखित चित्रपट ने पुनः पुनः प्रदर्शित हो कितने ही मनुष्यों की नैतिक अधोगति का मार्ग प्रशस्त कर डाला है ! जो चित्रपट सिराजुद्दौला को कलंकित करने के लिए विविध कल्पनाओं की सहायता से बड़ी सावधानी के

* पलासी युद्ध-काव्य, ( बंगला )।

साथ रचा गया था वह हमारे ही आधुनिक उद्यान-विहारी, विलास-प्रिय अमीर सन्तानों का अविकल छाया-चित्र है, और जो अति उज्ज्वल आलोक में जगमगा रहा है।

स्टुअर्ट ने गुलामहुसेन का अनुसरण करके नवाबगंज के सामरिक पड़ाव में कामासक्त शौकतजंग के असाधु-चरित्र का जो चित्र अंकित किया था, क्या यह चित्रपट उसीका प्रतिबिम्ब नहीं है? जान पड़ता है कि "पलासी-युद्ध-काव्य" (जिससे उपरोक्त पद्य उद्धृत किया गया है) की रचना करने से पहले कवि स्टुअर्ट के ग्रन्थ का पाठ कर चुका था। ये निम्नलिखित पद इस का प्रमाण हैं, जो स्टुअर्ट के ग्रन्थ में शौकतजंग पर लक्ष्य करके लिखे गये हैं :—

"—सेई दिन करिया मंत्रणा,<br>
वरिलाम पुर्नियार पापी दुराचार।<br>
किन्तु परिणामे हाय! लभिनु कि फल?<br>
सुरामत्त, कामासक्त, पड़िल संग्राम।<br>
जेमति पड़िल क्रौंच-मिथुन दुर्बल,<br>
व्याध कवि वाल्मीकिर व्याध-विद्ध वाणे।"

अर्थात्:—

"उस दिन सलाह-मश्वरा करके सरदारों ने पुर्निया के दुराचारी दुष्ट ( शौकतजंग ) को रण-क्षेत्र में आमंत्रित किया। परन्तु हा! अन्त में फल क्या हुआ? शराबी और ऐयाश शौकतजंग युद्धक्षेत्र में इस तरह गिर पड़ा, जैसे व्याध कवि वाल्मीकि के वाण से विद्ध होकर क्रौंच पक्षी का जोड़ा निःशक्त हो गिर पड़ा था।"

स्टुअर्ट के अतिरिक्त और किसी इतिहास में ऐसा सुललित वर्णन नहीं पाया जाता। परन्तु सिराजुद्दौला का

भाग्य ! स्टुअर्ट के ग्रन्थ को पढ़कर भी उसके स्वदेशी कवि ने नवाबगंजवाले शौकतजंग के चित्रपट को पलासी के सिराजुद्दौला का चित्रपट बना डाला, और जनता में उसे प्रचारित करते हुए कवि को ज़रा भी हकधक न हुई ! कवि का मार्ग क्या इतना निष्कंटक है ?

इतिहास से यह भली भांति प्रकट है कि उस समय के अङ्गरेज़ और बङ्गालियों ने परस्पर मिलकर सिराजुद्दौला को कितने और कैसे कैसे मिथ्या कलंकों से कलंकित किया था। अवसर पाने पर वर्तमान समय के प्रतिभाशाली साहित्य-सेवक आज भी नये नये रचना-चातुर्य का परिचय दे सकते हैं, "पलासी-युद्ध-काव्य" इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। जिसे उस समय के लोग भी नहीं जानते थे, सिराजुद्दौला के शत्रु भी जिसकी कल्पना करने का साहस नहीं करते थे, आजकल के लोग उसकी भी कमी को पूरा करने में गई नहीं करते। लोगों का कथन है कि चंचल-हृदयी नवाब सरफ़राज़ ख़ां ने जगत्-सेठ की पुत्र-बधू का मुखावलोकन करके उसीके प्रायश्चित्त-स्वरूप गिरिया के युद्ध-क्षेत्र में प्राणत्याग किया था; परन्तु एक बङ्गाली कवि ने इसी जनश्रुति में नमक-मिर्च लगाकर सिराजुद्दौला के मत्थे मढ़ने के लिए यह लिख मारा:—

"—कि वलिव आर,
वेगमेर वेशे पापी पशि अंतःपुरे,
निरमल कुल मम—प्रतिभा जाहार
मध्याह्न-भास्कर-सम भू भारत जुड़े
प्रज्ज्वलित,—सेई कुले दुष्ट दुराचार

करियाछे कलंकेर कालिमा संचार।"

अर्थात्:—

अधिक क्या कहें, पापी ने बेगम के वेश में अंतःपुर में प्रवेश करके उस उज्ज्वल और निष्कलंक कुल में—जिसकी प्रतिभा मध्याह्न कालीन सूर्य के समान सारे भारत में प्रज्ज्वलित हो रही थी—दुराचार से कलंक-कालिमा का संचार किया।

जिसने शैशवावस्था से तलवार हाथ में लेकर यत्रतत्र छावनियों में फिरते फिरते और रणक्षेत्रों में लड़ते लड़ते ही जीवन बिताया, एवं केवल अन्याय और छल से ही पलासी के युद्ध-क्षेत्र में पराजित हुआ था! कवि ने उस सिराजुद्दौला को कायर सिद्ध करने के लिए "हुगलीर समरे, दांते तृण लये, सभये"* इत्यादि पद लिखकर हुगली के समर-क्षेत्र में उसे भयातुर और रणत्यागी बनाकर छोड़ा! अस्तु, कवि का मार्ग भले ही निष्कंटक हो सकता हो, परन्तु इतिहास की बात ऐसी नहीं। इतिहास में हुगली की लड़ाई का कुछ दूसरा ही रूप है। सिराजुद्दौला इस लड़ाई में था ही नहीं, दांतों तले तिनका दबाने तथा डरने और भागने की तो बात ही अलग रही। उसकी अनुपस्थिति में जब अङ्गरेज़ लोगों ने गुप्त रूप से हुगली को लूट लिया तो उन्हें समुचित शिक्षा देने के लिए ही सिराजुद्दौला ने पुनः दूसरी बार कलकत्ते पर आक्रमण किया था। उसका बढ़ाव रोकने के लिए जाने पर क्लाइव के दो सेनानायक तथा सेक्रेटरी मारे गये थे। स्वयम् क्लाइव को भी औंधे मुंह भागना पड़ा था। कवि का पथ अवश्य ही निष्कंटक है, किन्तु इतिहास का नहीं।

---

* हुगली के समरक्षेत्र में दांतों में तिनका दबाये हुए भयभीत होकर।

महाराज कृष्णचन्द्रराय और उनके ज्येष्ठ पुत्र कुमार शिव-चन्द्र ये दोनों अङ्गरेज़ों के पक्षावलम्बी होने के कारण नवाब मीरक़ासिम की आज्ञा से मुंगेर के क़िले में क़ैद कर दिये गये थे, उन्हें प्राणदण्ड दिया जानेवाला था; किन्तु सन् १७६३ ई० में वे अङ्गरेज़ों की कृपा से छोड़ दिये गये। कवि ने इस मामले के सम्बन्ध में भी—यह कहकर कि "बंग-साहित्य-समाज के एक प्रसिद्ध विद्वान् से सुना गया है"—सिराजुद्दौला ही को अपराधी ठहरा दिया! भला जिस देश की कवि-किम्बदंतियों ने इतिहास-रचना का भार अपने ऊपर ले रक्खा है, उस देश में यदि सिराज की कलंक-कालिमा उत्तरोत्तर बढ़ती जाय तो आश्चर्य और विस्मय की बात ही क्या?

"पलासी युद्ध काव्य" में सिराज के इन समस्त काल्पनिक कलंकों को देख कविवर नवीनचन्द्र सेन महाशय से इस विषय में पूछ ताछ करने पर बंग-साहित्य-समाज के एक प्रसिद्ध विद्वान् ने लिख भेजा था कि मेरी राय में "पलासी-युद्ध-काव्य" की गणना इतिहास में नहीं हो सकती। परन्तु सर्वसाधारण जन नवीन बाबू के इस ग्रन्थ को इतिहास-ग्रन्थ ही मानते हैं। उनके समान स्वदेश-भक्त विद्वान और साहित्य-सेवी व्यक्ति भी सर्वथा कपोलकल्पित कलंकों से सिराजुद्दौला को शिर से पैर तक मंडित करके काव्य-रस की अवतारणा करेंगे, इस बात पर सहसा विश्वास न करके अधिकांश लोग "पलासी-युद्ध-काव्य" को इतिहास ही समझकर ग्रहण करते हैं। औरों की बात तो अलग रही, "सानियाल एन्ड कम्पनी" ने अभी हाल में विद्यालयों के लिए "पलासी-युद्ध-काव्य का जो पाठ्य-संस्करण प्रकाशित किया है, उसमें भी इसे इतिहास-ग्रन्थ कहा गया है, और उसे विद्यालयों में प्रचलित कराने के

लिए एक भूमिका लिखी गई है, जिसके अन्तर्गत लिखा है :—

"यह पद्य में बंगाल का इतिहास है। ऐसी पुस्तकों को विद्यालयों में प्रचारित करने से दो लाभ होंगे, अर्थात् छात्रों के ज्ञान की वृद्धि और बंगला भाषा की उन्नति।" किंतु कवि का पथ निष्कंटक होने पर भी ऐतिहासिक मार्ग सर्वदा ही सत्य की मर्याद से सुरक्षित है, वह कदापि निरंकुश नहीं हो सकता। जो हतभाग्य नरेश अपने तरुण जीवन में अन्याय-कौशल से पिंजराबद्ध हो अकाल में प्राणत्याग के लिए बाध्य हुआ था, उसके वास्तविक इतिहास को लेकर यदि काव्य-रचना की जाती तो "पलासी-युद्ध-काव्य" हृदय में मर्मान्तिक पीड़ा उत्पन्न करता। यदि कवि अपनी ही कल्पनाओं का आश्रय लेकर रचना करता तो भी अच्छा ही था, क्योंकि ऐसा होने पर उसकी कल्पनाएं पद पद पर मेकाले के सांचों में न ढ़ली होतीं। मेकाले-लिखित पलासी का युद्ध भी काव्य है, इतिहास नहीं।

"पलासी-युद्ध-काव्य" को रचते समय कवि यदि मेकाले के उक्त ग्रंथ ही को अंधे की लाठी की तरह लपककर न पकड़ लेता तो हतभाग्य सिराजुद्दौला का मृत आत्मा अनेक मिथ्या आक्रमणों के कठोर पंजे से परित्राण पा सकता था! केवल इसीलिए हमें स्वदेश के यशस्वी कवियों के भ्रम और प्रमाद की समालोचना करनी पड़ी।

रात्रि का अंत हुआ। जिस प्रभात को भारत के आकाश में ब्रिटिश-सौभाग्य-सूर्य के उदय और विकाश का सूत्रपात हुआ था, उसी प्रभात—"११७० हिजरी ५ शव्वाल रोज़ पंच-शम्बा" (वृहस्पतिवार)–को पलासी के मैदान में अङ्गरेज़ और

बंगाली समर-परीक्षा के लिए एक एक करके बिस्तर से उठने लगे।

अङ्गरेज़ों ने जिस बाग़ में अपनी सेना जुटाई थी, उसका नाम था 'लक्खीबाग़'। लोगों का कथन है कि उसमें एक लाख पेड़ थे। इस बाग़ के पश्चिमोत्तर कोने पर एक मृगयामंच था। क्लाइव ने उसके पार्श्व में लक्खीबाग़ के उत्तर की ओर खुले हुए मैदान में व्यूह-रचना की। सिराजुद्दौला ने भी तड़के ही मीरजाफ़र, रायदुर्लभ और यारलतीफ़ को पड़ाव से बढ़ने की आज्ञा दी थी। इसलिए वे अर्द्धचन्द्राकार में सेनाओं की व्यूह-रचना करके क़तारों में उड़ते हुए बगुलों के प्रवाह की तरह मन्द मन्द गति से बाग़ को घेरने के लिए अग्रसर होने लगे।

अङ्गरेज़ों ने देखा कि यह चक्रव्यूह यदि बाग़ को घेरकर तोपों में आग लगाने लगा तो सर्वनाश होगा! क्लाइव की गोरा पलटन ने चार दलों में विभक्त होकर मेजर किलप्याट्रिक, मेजर ग्रान्ट, मेजर कूट और कप्तान गप की अधीनता में अस्त्र धारण किये। बीच में 'गोरा लोग' दायें बायें 'काले आदमी' छः तोपें सामुहीं करके क़तारें बांधकर खड़े हुए। मीरमदन की फ़ौज सामनेवाले तालाब के किनारे पर एकत्र हुई थी। एक पार्श्व में फ़रासीस वीर सिनफ्रू, एक ओर बङ्गाली वीर मोहनलाल और बीच में बङ्गाली सेनापति मीरमदन ने फ़ौजकशी का भार अपने ऊपर लिया।

सिराजुद्दौला की सेना के, बख़तर की झूलों से ढके हुए, सामरिक हाथी, सुशिक्षित घोड़े और सुसज्जित तोपें जिस समय धीरे धीरे सामने को बढ़ने लगीं तो अङ्गरेज़ों ने सोचा कि सिराज का व्यूह दुर्भेद्य है!

आठ बजे के वक्त मीरमदन ने तालाब के किनारे से तोपों में आग लगाई। पहले ही गोले से अङ्गरेज़ों की फ़ौज का एक आदमी मरा और एक घायल हुआ। उसके बाद लगातार तोपें चलने लगीं। आध घंटे तक इसी प्रकार युद्ध होता रहा। अङ्गरेज़ों की फ़ौज क्रमशः धरती पर लोटने लगी। इस आध घंटे में १० गोरों और २० काले सिपाहियों ने मृत्यु की गोद में आश्रय लिया। अङ्गरेज़ों की तोपें भी चुप न थीं, उनके प्रचंड पीड़न से नवाब की सेना भी धराशायी हो रही थी। परन्तु उससे नवाब के गोलंदाज़ों की कोई हानि न हुई। वे सकुशल वीरतापूर्वक अङ्गरेज़ों की फ़ौज के बीच में मिनट मिनट पर गोले बरसाने लगे। आध ही घंटे में क्लाइव की युद्ध-पिपासा मिट गई। इसी आध ही घंटे में उसने समझ लिया कि प्रत्येक मिनट में एक आदमी के मरने और अनेक के ज़ख़्मी होने से मेरे तीन हज़ार सिपाही बहुत समय तक अपनी शूरता प्रकट करने का अवसर न पायेंगे। अतएव अपनी रक्षा के लिए क्लाइव को पीछे हटना पड़ा। अङ्गरेज़ी सिपाहियों की दो तोपें बाहर रह गईं, और चार तोपें लेकर वे बाग़ के भीतर आकर छिप गये। क्लाइव की आज्ञा से सब लोग वृक्षों की आड़ में बैठ गये। नवाब की तोपों का मोरचा चार हाथ ऊंचा था, अतएव मीरमदन की तोपों के गोले तड़ातड़ अङ्गरेज़ी फ़ौज के ऊपर से छूटने और कुछ वृक्षों की डालों से टकराने लगे।

वृक्षों की आड में छिपे रहने पर भी क्लाइव की आशंका दूर नहीं हुई। नवाबी फ़ौज की व्यूह-रचना और समर-कौशल से उसका अंतरात्मा कांप उठा। उसने उमीचंद को बुरा भला कहना शुरू किया:—"मैंने तुम्हारा विश्वास करके

बड़ा बुरा काम किया ! तुमने मुझे वचन दिया था कि ज़रा देर तक युद्ध का नाटक खेला जायगा, उसके बाद सारी कामनाएं सफल हो जायँगी। सिराज की फ़ौज रणक्षेत्र में अपनी वीरता न दिखायेगी। इस समय तो बिलकुल इसके विपरीत हो रहा है।" 'मुतख़रीन' में भी लिखा है :—

"क्लाइव ने उमीचन्द से बदगुमान होकर गुस्सा फ़र्माया, और कहा कि ऐसा ही वादा था कि ख़फ़ीफ़ लड़ाई में मुद्दआय दिली हासिल हो जायगा, और शाही फ़ौज भी सिराजुद्दौला से मुनहरिफ़ है। वे सब तेरी बातें ख़िलाफ़ पाई जाती हैं।" उमीचंद ने क्लाइव की डाट-फटकार सुनकर विनीत भाव से निवेदन किया कि "केवल मीरमदन और मोहनलाल की सेनाएं ही लड़ रही हैं। यही दोनों सिराजुद्दौला के सच्चे सहायक और स्वामिभक्त हैं। सिर्फ़ इन्हीं को किसी न किसी तरह कष्ट झेलकर पराजित करना है। अन्यान्य सेनापतियों में से कोई भी हथियार न चलायेगा।" *

मीरमदन सामने बढ़कर बड़ी वीरता से गोले चलाने लगा। उस समय मीरजाफ़र की सेना यदि और ज़रा आगे बढ़कर तोपों में आग लगाती तो बचाव बहुत ही कठिन था! परन्तु मीरजाफ़र, यारलतीफ़ और रायदुर्लभ ने जहां जहां अपनी सेनाएं जुटाई थीं, उन्हीं स्थानों पर चित्रवत् खड़े खड़े रण का तमाशा देख रहे थे। पसीने में तर क्लाइव ने १२ बजे के वक्त सबकी सम्मति लेने के लिए सामरिक सभा का अधिवेशन किया। जिसमें निश्चय हुआ कि सारे दिन बाग़ में छिपे रहकर किसी न किसी तरह आत्मरक्षा की चेष्टा करनी होगी।

---

* स्टुअर्ट्'स हिस्ट्री आफ़ बंगाल।

"महावीर पलासी-विजेता" ने इस तरह से छिप छिपाकर अपने प्राणों की रक्षा करके ही समर विजय किया, इस बात को वह स्वयम् ही प्रकाशित कर गया है।

धूम-पुंज से आकाश आच्छादित हो गया। तिसपर आषाढ़ के नये मेघों से पृथ्वी में और भी अंधकार छा गया। ठीक दोपहर के वक्त तड़ातड़ पानी बरसने लगा। मीरमदन की बहुत सी बारूद भीग गई, तोपें शिथिल पड़ गईं। पुनः वह वीरता-पूर्वक शत्रु के सर्वनाश का उपाय कर ही रहा था कि इतने में अङ्गरेज़ों के एक गोले ने आकर उसकी जांघ तोड़ डाली।

सेनापति मीरमदन वीरों की भांति भागे हुए शत्रु के पीछे धावा कर रहा था। दुर्भाग्य से उसके प्राणान्तकारी चोट लगी। मोहनलाल युद्ध करने लगा। मीरमदन को लोग हाथों-हाथ उठाकर सिराजुद्दौला के पास ले आये। उसने अधिक कुछ कहने का मौक़ा न पाया, सिर्फ़ इतना ही कहा कि "शत्रु की सेना बाग़ में भाग गई है, तथापि आपके कोई भी सरदार युद्ध नहीं करते हैं। अपनी अपनी फ़ौजों के साथ तस्वीर की तरह खड़े तमाशा देख रहे हैं! बस, इतना कहते कहते मीरमदन की विशाल भुजाएं निर्जीव हो गईं। सिराजुद्दौला के शिर पर मानो आकाश टूट पड़ा। एकमात्र मीरमदन के भरोसे वह शत्रु के कूट कौशलों की परवा न करता था। उसकी आकस्मिक मृत्यु से सिराजुद्दौला का बल और भरोसा एकाएक विलुप्त हो गया।

अनन्योपाय होकर सिराज ने मीरजाफ़र को फिर एक बार उत्तेजित करने के लिए बुलाया। मीरजाफ़र ने बहुत कुछ बहानेबाज़ी और ढीलढाल करके अन्त में प्रिय पुत्र मीरन

एवं अन्य अमीर-उमरावों को साथ ले दल बांधकर बड़ी सावधानी के साथ क़दम रखते हुए सिराज के डेरे में प्रवेश किया। उसने ख़याल किया था कि शायद सिराजुद्दौला मुझे क़ैद कर लेगा; परन्तु डेरे में घुसते ही सिराज ने अपना राज-मुकुट उसके सामने रख दिया, और व्याकुल-चित्त होकर कहने लगा:—"जो होना था वह हो गया, तुम्हारे अतिरिक्त अब इस राजमुकुट की रक्षा करनेवाला कोई नहीं। नाना अलीवर्दी जीवित नहीं हैं। तुम्हीं इस समय उनका स्थान पूरा करो। ऐ मीरजाफ़र! अलीवर्दी के पवित्र नाम को स्मरण करके मेरी इज़्ज़त बचाओ, और मेरी ज़िन्दगी के सहायक बनो।" मीरजाफ़र ने यथोचित रीति के अनुसार सम्मानपूर्वक राजमुकुट को अभिवादन करते हुए छाती पर हाथ रखकर बड़े विश्वस्त भाव से कहा:—"अवश्य ही शत्रु पर विजय प्राप्त करूंगा। परन्तु अब शाम हो गई है। सवेरे से लड़ते लड़ते रण के परिश्रम से फ़ौजें शिथिल पड़ गई हैं। आज सारी फ़ौजें रणक्षेत्र से पड़ाव में वापिस आ जायँ, सवेरे पुनः युद्ध होगा।" सिराज ने कहा कि "अङ्गरेज़ी सेना के रात्रि में आक्रमण करते ही क्या सर्वनाश न होगा?" मीरजाफ़र बड़े अभिमानपूर्वक कहने लगा:-"फिर हम किस लिए हैं?"* सिराज को मतिभ्रम हुआ। वह मीर-जाफ़र की बातों में आ गया, और उसकी मौखिक उत्तेजना में अपने को भूलकर सिराजुद्दौला ने फ़ौजों को पड़ाव में वापिस आने की आज्ञा दे दी। महाराज मोहनलाल उस समय वीरतापूर्वक बड़ी तेज़ी के साथ शत्रु की सेना पर धावा कर रहा था। उसने सम्मानपूर्वक कहला भेजा कि

* स्टुअर्टस हिस्ट्री आफ़ बंगाल।

"बस, अब दो ही चार घड़ी में लड़ाई समाप्त हो जायगी। भला यह समय क्या रणक्षेत्र से लौटने का है? एक क़दम भी पीछे हटने से सिपाहियों की सेना छत्रभंग हो सर्वनाश संघटित करेगी। मैं लौटूंगा नहीं, लड़ाई लड़ूंगा।" इस ख़बर से मीरजाफ़र का दिल दहल गया। उसने विविध उपायों से सिराजुद्दौला को समझा बुझाकर संतुष्ट करके मोहनलाल के पास फिर दुबारा ख़बर भेजी:—"अब शान्त हो, पड़ाव में वापिस आओ।" इस पुनः संवाद से अत्यन्त क्रुद्ध और क्षुभित होकर मोहनलाल के दोनों नेत्रों से आग की चिनगारियां सी छूटने लगीं। परन्तु क्या करता, वह एक मामूली सरदार था; समरक्षेत्र में सेनापति की आज्ञा का उल्लंघन न कर सका! जैसे कुछ हो सका, क़तारें बांधकर पड़ाव की ओर लौटने लगा। मीरजाफ़र की कामना पूरी हुई। उसने फ़ौरन ही क्लाइव को लिख भेजा:—"मीरमदन मर गया, अब छिपने का कोई काम नहीं। इच्छा हो तो इसी समय, अन्यथा रात के तीन बजे पड़ाव पर आक्रमण करना। सहज ही में सारा काम बन जायगा।"*

मोहनलाल को पड़ाव की ओर वापिस जाते देखकर अङ्गरेज़ी फ़ौज बाग़ से बाहर निकलने लगी। क्लाइव इस समय उसी मृगयामंच वाले कमरे में वेश बदल रहा था। किसी किसी ने कहा है कि वह उस समय निश्चिन्त सोया हुआ था। मेजर किलप्याट्रिक बाग़ में फ़ौज को तैयार कर रहा था। अङ्गरेज़ी सेना पुनः बाग़ के बाहर खुले मैदान में जमा हुई यह ख़बर पाते ही क्लाइव दौड़ा आया और फ़ौज में घुस पड़ा। एवं इस अपराध में उसने किलप्याट्रिक को बांध लिया

* 'अमी' जिल्द २, पृष्ठ १७५।

कि बिना उसकी आज्ञा के किलप्याट्रिक ने ऐसा साहस क्यों किया। परन्तु पीछे जब क्लाइव अपनी ग़लती को समझ गया तो उसने स्वयम् फ़ौजकशी का भार अपने ऊपर लिया, और मेजर किलप्याट्रिक के उदाहरण का अनुसरण करते हुए धीरे धीरे आगे बढ़ने लगा। इन्हें देखकर नवाब के बहुतेरे सिपाही तो भागने लगे। परन्तु फ़रासीस वीर सिनफ्रे और बङ्गाली वीर मोहनलाल घूमकर खड़े हो गये। उनकी फ़ौजों ने पीछे क़दम नहीं हटाया। 'जबतक श्वास तबतक आश',— वे वीरता एवं निर्भीकतापूर्वक प्राणपण से युद्ध करने लगीं।

इस ओर अनेक सिपाहियों को इधर उधर भागते देखकर स्वार्थान्ध रायदुर्लभ सिराजुद्दौला को भी भागने के लिए उत्तेजित करने लगा। सिराज ने सहसा रणक्षेत्र को परित्याग नहीं किया। मुसलमान इतिहास-लेखक ने लिखा है कि जिस समय दिन का अन्त हो रहा था उस समय सिराजुद्दौला ने देखा कि असंख्य सेना-सरदारों में से कुछ थोड़े ही से आदमी मेरे पक्ष में लड़ रहे हैं! ऐसी दशा में उसने सोचा कि पलासी में पराजित न होकर राजधानी की रक्षा के लिए मुर्शिदाबाद ही को लौट चलना उचित है। राजवल्लभ ने भी इसी राय का समर्थन किया। अतएव सिराजुद्दौला ने अधिक सोच विचार न करके दो हज़ार अश्वारोहियों के साथ हाथी पर सवार हो समरभूमि से प्रस्थान किया।

अवसर पाकर मीरजाफ़र अङ्गरेज़ों की सेना को मदद देने के लिए अग्रसर हुआ। परन्तु अङ्गरेज़ लोग शत्रु-मित्र को न पहिचान कर उसके ऊपर भी गोले बरसाने से नहीं चूके।*

---

* अर्मी जिल्द २, पृष्ठ १७६।

तीसरे पहर पांच बजे तक अविराम युद्ध करते करते मोहन-लाल और सिनफ्रे भी नवाब के विश्वासघाती सेनानायकों से खिझ कर रणक्षेत्र को परित्याग करने पर बाध्य हुए। नवाब के छोड़े हुए सूने पटमंडप की ओर अङ्गरेज़ी फ़ौज ने बड़े अभिमान के साथ धावा करके पलासी-युद्ध के अंतिम चित्रपट को उद्घाटित किया।

परिणाम अत्युत्तम होने के कारण पलासी का युद्ध आज अङ्गरेज़ी सेना के महायुद्धों में गिना जाता है। जिस फ़ौज ने पलासी के युद्ध में विजय प्राप्त की थी, उसके झंडे के सिरे पर आज भी पलासी का नाम देखा जाता है। परन्तु पलासी के मैदान में सिराज की सेना जिस तरह से पराजित हुई थी, इसपर लक्ष्य रखते हुए पलासी के युद्ध को युद्ध ही नहीं कहा जा सकता। सिराजुद्दौला की सेना का व्यूह जिस विधि से रचा गया था, उसी विधि से सिराज की सेना के समरक्षेत्र में खड़े रहने पर भी उसे पराजित करना असम्भव था। और यदि वह बाग़ को घेरकर वीरों की भांति युद्ध करती, तबतो फिर बात ही क्या थी। राजद्रोहियों की कूट मंत्रणाओं से सिराजुद्दौला समरक्षेत्र को परित्याग करने पर बाध्य हुआ, राजद्रोहियों के षड़यंत्रों ही से सिराजुद्दौला की सेना ने अधिकृत रणभूमि से पीठ दिखाई, और मीरजाफ़र इत्यादि की फ़ौजें अपना कर्तव्य पालन करने के लिए आगे न बढ़कर धीरे धीरे डेरों की ओर लौटने लगीं। सूना मैदान पाकर अङ्गरेज़ों ने बड़े जोश के साथ आगे बढ़ने का मौक़ा पाया। इन सब बातों की आलोचना करके ही एक अङ्गरेज़ वीर-केसरी महामति म्यालसन ने लिखा है:—"पलासी-युद्ध को वास्तविक युद्ध नहीं कहा जा सकता।" पलासी की

युद्धभूमि अब गंगा में विलीन हो गई है। लक्खीबाग़ के बचे हुए आमों के वृक्षों की लकड़ी भी विलायत पहुंच गई। महेशपुर की कोठी के साहब ने शायद उक्त बाग़ के आमों की लकड़ी से एक सन्दूक़ बनवाकर महारानी भारतेश्वरी विक्टोरिया को नज़र में भेजा था। आज केवल स्थान-निर्देश के लिए एक आधुनिक जयस्तम्भ में लिखा हुआ है :—

## पलासी

बंगाल-गवर्नमेंट-द्वारा निर्माणित,

सन् १८८३ ई०।

इन थोड़े से अक्षरों की शिलालिपि के अतिरिक्त और भी एक चिह्न पाया जाता है। वह एक मुसलमान जमादार का समाधि-स्तूप है। यह मुसलमान सर्दार सिराजुद्दौला के सिंहासन की रक्षा के लिए प्राणपण से हथियार चलाकर सन्मुख संग्राम में मारा गया था। प्रति बृहस्पतिवार को बंगाल के किसान—पुरुष और स्त्रियां—इस समाधि के ऊपर भक्तिपूर्वक फल, पुष्प, चावल, मिठाई इत्यादि चढ़ाकर आज भी उस पुरातन कहानी को जीवित रख रहे हैं।

पलासी से चलकर दूसरे दिन शुक्रवार को प्रातःकाल के समय सिराजुद्दौला मंसूरगंज के राजमहल में पहुंचा। बंगाल, विहार और उड़ीसा के अद्वितीय अधीश्वर ने हज़ारों सिपाहियों से सुरक्षित समरक्षेत्र को परित्याग करके वीर-शून्य मुर्शिदाबाद में आश्रय क्यों लिया? इसके सम्बन्ध में अङ्गरेज़ों ने लिखा है कि "एक तो कायर दूसरे दुर्बलचित्त, अतएव अङ्गरेज़ों के भय से सिराजुद्दौला को उलटी सांसों भागना पड़ा था।" मुसलमान लेखकों ने लिखा है कि "च्योंटी बहुत

छोटा सा कीड़ा है; तथापि हज़ारों च्यौंटियों की सम्मिलित शक्ति के सामने जंगल के शेर को भी हार माननी पड़ती है।" अतएव यही कहना पर्याप्त है कि हज़ारों च्यौंटियों के एक साथ जुटकर काटने ही से सिराजुद्दौला का सर्वनाश हुआ!

राजधानी में आते ही आते सिराजुद्दौला के पराजय की ख़बर चारों ओर बड़ी तेज़ी से फैल गई। लूटमार के भय से जिसने जिधर जगह पाई, भाग निकला! मुग़लों का प्रताप-भानु उस समय धीरे धीरे अस्ताचल की ओर जा रहा था। मुसलमान अमीर-उमराव अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए महाराष्ट्र सैनिकों, युरोपियन सौदागरों और पहाड़ी पठान सरदारों के निकट अपने बहुत बरसों के शासन-गौरव को हार कर एक एक करके बंगाल से निकलते जा रहे थे। भारत-वर्ष का रत्न-सिंहासन बालकों के खेलने की गेंद बन रहा था। निदान सिराजुद्दौला की सारी चेष्टाएं विफल हुईं। वह राज-धानी की रक्षा के लिए पुनः पुनः अमीर-वज़ीरों को आह्वान करने लगा। परन्तु औरों की तो बात ही क्या, स्वयम् उसके श्वसुर मुहम्मद परिच ख़ां ने भी उसकी बात पर कर्णपात न करके भागने पर कमर बांधी। उसकी देखादेखी सभी लोग अपनी प्राण-रक्षा के लिए व्याकुल होने लगे। किसी किसी ने तो सिराज को भी अङ्गरेज़ों के निकट आत्मसमर्पण करने के लिए उत्तेजित करने में कोई कसर न की। चारो ओर आकुल आर्तनाद आरम्भ हो गया।

लोगों के इन कायरता-पूर्ण प्रस्तावों पर तनिक भी ध्यान न देकर सिराजुद्दौला ने सैन्य-संग्रह के लिए पूनः परिच ख़ां को उत्तेजित किया। परन्तु परिच ख़ां कदापि तैयार नहीं हुआ। तब लाचार होकर सिराजुद्दौला ने विहार की यात्रा करने

के लिए उपयोगी सेना एकत्र करने का प्रस्ताव उठाया। एरिच ख़ां इस से भी सहमत नहीं हुआ, और अपना सब माल-असबाब लेकर भाग गया।

सिराजुद्दौला इस पर भी भग्न-मनोरथ नहीं हुआ, वह स्वयम् सैन्य-संग्रह का उपाय करने लगा। गुप्त ख़ज़ाना खोला गया, और सवेरे से शाम तक तथा शाम से लेकर रातभर सिपाहियों को उत्तेजित करने के लिए खूब खुले हाथों रुपया बांटा गया। शाही ख़ज़ाने को खुला पाकर शरीररक्षक सिपाहियों ने गहरे हाथ लगा कर खूब रुपया खींचा। और यह धर्म-प्रतिज्ञा करके कि "प्राणपण से सिंहासन की रक्षा करेंगे" एक एक ने भागना शुरू किया। सिराज की चेष्टा सर्वथा विफल हुई।

आज संध्या को राजधानी में रत्नदीपों का उज्ज्वल प्रकाश नहीं हुआ। नित्य की तरह राजवैतालिकों के सुललित गान-वाद्य की गुंजार ने वायु में व्याप्त हो दूर दूरांतर में मुग़लों के गौरव-गीत को विघोषित नहीं किया। चोबदार और दरबान नवाब सिराजुद्दौला के आज्ञा-पालन की प्रतीक्षा में हाथ जोड़े उस के कमरे के द्वार पर आकर खड़े नहीं हुए! जन-समागम से शून्य राजपुरी में स्मशान-भूमि की नाईं हाय हाय की आवाज़ें उठने लगीं! इसी स्मशान-भूमि को विकम्पित कर के पास ही मीरजाफ़र की विजयोन्मत्त तोपें बड़े ज़ोर-शोर से गजरने लगीं। सिराजुद्दौला ने सोते से जागे हुए की तरह इधर उधर नज़र घुमाकर देखा तो प्रतीत हो रहा था कि मुग़लों के राज्य-अभिनय का अंतिम चित्रपट उद्घाटित हो गया है, और पत्थर का जनशून्य राज-प्रासाद मानों उसी को खाने दौड़ता है। उस समय नाना

अलीवर्दी की ममता में सना हुआ हीराझील का विचित्र प्रासाद और बंगाल, विहार एवं उड़ीसा के गौरवान्वित मुग़ल राज्य-सिंहासन को पीछे छोड़कर नवाब सिराजुद्दौला गलियों के भिखमंगों की तरह राजधानी से निकल बाहर हुआ! केवल अकेला एक पुराना द्वारपाल और सदा की सहचरी लुतफुन्नसां बेगम छाया की तरह उसके पीछे पीछे चल दिये।

सिराज स्थल-मार्ग से भगवानगोला में पहुंचकर वहां से नाव पर सवार हो पद्मा की प्रबल धारा को पार करके, बचपन की क्रीड़ाभूमि गोदागाड़ी की गोद में बहनेवाली महानंदा नदी की धार में उत्तर की ओर बढ़ने लगा।

मुतख़रीन के लेखक ने सिराज के भागने की प्रणाली में दोष दिखाने के लिए लिखा है कि "स्थल-मार्ग से भागता तो अच्छा होता। रुपये के लालच से अथवा प्रेम ही के वश हो बहुत से लोग उसके साथ लग सकते थे। और यदि बहुत से लोग साथ होते तो सहज ही सिराजुद्दौला को कोई क़ैद न कर सकता। परन्तु सिराज किस उद्देश से अकेला नाव पर भागा था, इसके रहस्य को अच्छी तरह समझ लेने पर मुतख़रीन का उक्त आक्षेप सर्वथा निर्मूल और भ्रान्तिपूर्ण ठहरता है।

केवल प्राण ही बचाने के लिए यदि भागने की ज़रूरत होती तो भगवानगोला से पद्मा की धारा में नाव डालकर पूरब की ओर बढ़ने से अनायास ही वह दूर-देश में पहुंच सकता था। परन्तु सिराजुद्दौला ने प्राणों की परवा न करके केवल मुग़लों के गौरव की रक्षा के लिए ही जनशून्य राजधानी से पलायन किया था, उसके भागने की प्रणाली ही

इसका उत्कृष्ट प्रमाण है। किसी प्रकार से पश्चिमी प्रदेश की ओर से भागकर लास साहब की सेना की सहायता से पटने तक जाना और वहां से रामनारायण की फ़ौज का सहारा लेकर मुर्शिदाबाद के सिंहासन की रक्षा करने का उद्योग करना ही सिराजुद्दौला का उद्देश था। विहार-प्रदेश का शासक रामनारायण जैसा साहसी और चतुर था वैसा ही सच्चा स्वामिभक्त भी था। अतएव किसी प्रकार उसके साथ मिलना ही सिराजुद्दौला का प्रधान लक्ष्य था। यदि वह सीधे स्थल-मार्ग से राजमहल तक जाने की चेष्टा करता तो मीरजाफ़र के अनुचरों को सहज ही में उसे क़ैद कर लेने का मौक़ा मिल जाता। इसी आशंका से वह महानंदा होकर गुप्त मार्ग से दीन दरिद्रों की तरह पटना की ओर अग्रसर हुआ था।

यदि ज़रा देर भी और सोचा-विचारी में पड़ा रहता तो सिराजुद्दौला राजधानी ही में क़ैद हो जाता। जिस सुबह को वह मुर्शिदावाद में वापिस आया, उसी सुबह को दादपुर के अङ्गरेज़ी पड़ाव में मीरजाफ़र और उसके पुत्र मीरन के साथ पलासी-विजेता कर्नल क्लाइव की मुलाक़ात हुई। चतुर क्लाइव ने मीरजाफ़र को समय गंवाने का अवसर न देकर शीघ्र ही मुर्शिदाबाद पहुंचकर सिराजुद्दौला को क़ैद करके राजकोष पर अधिकार जमा लेने का उपदेश दिया।

राजधानी में आते ही मीरजाफ़र ने सुना कि शिकार हाथ से निकल गया। अब क्या करे? शीघ्र ही हीराझील के सूने सिंहासन पर अधिकार जमाकर सिंहासन के स्वामी सिराजुद्दौला को क़ैद करने के लिए वह चारों ओर सिपाही सामन्त भेजने लगा।

मीरजाफ़र का भाई मीरदाऊद राजमहल का फ़ौजदार था, और उस की अधीनता में मीरक़ासिम फ़ौज का प्रधान सेनानायक था। मीरक़ासिम और मीरदाऊद को सिराजुद्दौ-ला के पीछे धावा करने की आज्ञा मिलते ही उन्होंने मुर्शिदा-बाद से लेकर राजमहल तक समस्त नगर और गावों में बड़ी छानबीन के साथ उसे खोजना शुरू किया। बेगम-मंडली की स्त्रियां क़ैद होगईं, सिराजुद्दौला का अल्पवयस्क छोटा भाई मिर्ज़ा मेहदीअली भी क़ैद कर लिया गया, और महाराज मोह-नलाल भी कारारुद्ध होगया; परन्तु सिराजुद्दौला का कहीं कुछ पता न चला।

महाराज मोहनलाल के, बड़ी वीरतापूर्वक सिराजुद्दौला के सिंहासन की रक्षा के लिए लड़ते हुए, पलासी के युद्ध में गहरी चोट लगी थी, तथापि वह ज़ख़्मी होते हुए भी सिरा-जुद्दौला के पास रहकर उसकी रक्षा करने के लिए भागकर मुर्शिदाबाद चला आया था। राजधानी में आने पर सिराजु-द्दौला के भागने की ख़बर पाकर मंत्रणा-कुशल मोहनलाल सिराज के भागने के मार्ग और उसके उद्देश को सहज ही में समझ गया। अतएव शत्रुओं से व्याप्त मुर्शिदाबाद में अधिक समय न गंवाकर वह सिराजुद्दौला से मिलने के लिए भगवानगोला की ओर जा रहा था। परन्तु भगवानगोला तक पहुंचने के पहले ही मीरजाफ़र के अनुचरों ने उसे क़ैद कर लिया। जिस मोहनलाल ने छाया की तरह सिराजुद्दौला के साथ रहकर कभी मंत्रणा-कौशल और कभी अपराजित बाहुबल से मुग़लों के सिंहासन की रक्षा के लिए प्राणों को निछावर कर रक्खा था, जिसके अतुलनीय रण-कौशल और अद्वितीय स्वामिभक्ति का परिचय पाकर बाग़ी लोग हर घड़ी

उससे सशंकित रहते थे, उस मोहनलाल को हाथ में पाकर छोड़ देने का साहस मीरजाफ़र को न हुआ। उसने मोहनलाल को बाग़ियों के सरदार महाराज रायदुर्लभ के हाथों में सौंप दिया। मोहनलाल को बहुत समय शरीर-कष्ट न सहना पड़ा। रायदुर्लभ ने जान-माल से उसका सर्वनाश करके मीरजाफ़र का कंटक दूर किया।

राजधानी में कोई शत्रु नहीं रहा, तथापि मीरजाफ़र को तख़्त पर बैठने की हिम्मत नहीं पड़ी। यद्यपि सब लोग ऐसा समझ चुके थे कि अब मीरजाफ़र ही बंगाल, बिहार और उड़ीसा के सूने राज्य-सिंहासन को आबाद करेगा, तथापि मीरजाफ़र उस सूने सिंहासन से पृथक् रहकर क्लाइव के आ जाने की प्रतीक्षा करने लगा। क्लाइव एकाएक राजधानी में पदार्पण न करके शहर के बाहर दिन काट रहा था। २६ जून को २०० गोरे और ५०० काले सिपाहियों के साथ अङ्गरेज़ों के सेनापति ने मंसूरगंज में शुभागमन किया। क्लाइव लिखता है;–"शाही सड़कों पर उस दिन इतने आदमी जमां थे कि यदि वे अङ्गरेज़ों के सर्वनाश का संकल्प करते तो केवल लाठी-सोटों और पत्थरों ही से वह काम पूरा कर सकते थे।"*

मुग़ल राजधानी के विशाल राजमहल में आकर भी क्लाइव की चिंता दूर नहीं हुई। कुछ लोग कहने लगे कि "उसको गुप्त-रूप से मार डालने का षड़यंत्र चल रहा है।" इस तरह की अफ़वाहों पर विश्वास करने के लिए कारणों का भी अभाव न था, क्योंकि उस ज़माने में गुप्तहत्या प्रायः समस्त देशों में अत्याधिक परिमाण में प्रचलित थी। फिर

---

* 'क्लाइवस एवीडेन्स'।

सिराजुद्दौला भी अभी पकड़ा नहीं गया था, अतएव इन कारणों से क्लाइव की चिंता बहुत बढ़ रही थी। कौन शत्रु है और कौन मित्र, कौन वास्तव में राष्ट्र-विप्लव से प्रसन्न है, और कौन क्लाइव के सर्वनाश का अवसर खोज रहा है, इन बातों का कुछ निश्चय ही न था। ऐसी संदिग्ध अवस्था में क्लाइव और मीरजाफ़र दोनों ही मिलकर अपना पक्ष सबल करने का उद्योग करने लगे।

क्लाइव चटपट सब अमीर-उमरावों के सामने मीरजाफ़र के पास आया, और उसे तख़्त पर बैठाकर कम्पनीबहादुर के प्रतिनिधि-स्वरूप सब से पहले स्वयम् नज़र पेश करके मीर-जाफ़र को बंगाल, विहार और उड़ीसा का सूबेदार कहकर अभिवादन किया।

राज्याभिषेक हो गया, बाट चूंट भी हो गया; परन्तु सिराजुद्दौला का कहीं पता न चला। चारो ओर खूब छानबीन कर खोज करने के लिए पुनः सिपाही सामंत भेजे गये।

युद्ध छिड़ने की सूचना पाते ही सिराजुद्दौला ने मसीय लास को राजमहल के रास्ते से मुर्शिदाबाद आ जाने की ख़बर भेजी थी। राजा रामनारायन ने ख़र्चपात के लिए रुपया देने में देर की, इस कारण मसीय लास ख़बर पाते ही फौरन् युद्ध-यात्रा न कर सका। वह जिस समय अपनी सेना के साथ भागलपुर के पास पहुंचा, सिराजुद्दौला उस समय महानन्दा की धारा को पार कर रहा था।

महानन्दा की धारा को लांघकर सिराजुद्दौला कालिंदी के जलप्रवाह को पार कर रहा था। उसकी नाव जिस समय बखराबरहाल नाम के एक पुरातन ग्राम के पास पहुंची

उस समय उसकी गति एकाएक रुक गई ! नाज़िरपुर का मुहाना पार कर लेते ही बड़ी गंगा में प्रवेश होजाता; परन्तु जल के अभाव से नाज़िरपुर का मुहाना सूखा पड़ा था, इस लिए नाव न चल सकी।

इस आकस्मिक दुर्घटना के कारण सिराजुद्दौला के सर्वनाश का सूत्रपात हुआ। उसका ख़याल था कि मेरे हार जाने की बात अभी दूर दूर तक नहीं पहुंची है। इसी भरोसे पर वह स्वयम् नदी के किनारे पर उतर पड़ा। नाविक लोग इधर उधर बिखर कर नदी के बहाव का पता लगाने लगे। इसी अवसर पर सिराजुद्दौला ने कुछ खाने पीने के लिए पास की एक इसलामी मसजिद में आतिथ्य ग्रहण किया।

इस मसजिद में दानशाह नामक एक प्रसिद्ध मुसलमान साधु का समाधिमन्दिर था। आज भी वह शाहपुर नामक गांव में टूटी फूटी अवस्था में पड़ा है। मसजिद में रहनेवाले आदमी एक छोटे से गांव में सिराजुद्दौला के समान अतिथि की नौका को देखकर बड़े आश्चर्यचकित हुए। बाद को जब उन्होंने नाविकों से पूछ ताछ कर पता लगाया तो उन्हें सब हाल मालूम हुआ। मीरक़ासिम और मीरदाऊद की फ़ौजें पास ही ठहरी हुई थीं। रुपये के लालच से लोगों ने उन्हें सिराजुद्दौला का पता दे दिया। भूख के सताये सिराज को रोटी का ग्रास गले से नीचे उतारने का मौक़ा न मिला, और वह परिवार के सहित मीरक़ासिम के हाथों में क़ैद हो गया।

अङ्गरेज़ों ने कहा है कि सिराजुद्दौला ने अपने बने ज़माने में दानशाह नामक फ़क़ीर के नाक कान कटवा डाले थे। विपत्ति के दिनों में उसी दानशाह ने अपना बदला

लेने के लिए सिराजुद्दौला को पकड़वा दिया।* महात्मा विवारिज ने इस उक्ति पर विश्वास न करके लिखा है:—"यह जनश्रुति ठीक नहीं हो सकती, क्योंकि मुतख़रीन के अनुवादक हाजी मुस्तफ़ा ने अपने टीका में लिखा है कि फ़क़ीर सिराजुद्दौला को क़तई नहीं पहिचानता था, उसके क़ीमती खड़ाऊं देखकर उसे सन्देह हुआ, और नाविक लोगों से सब पता लगाकर उसने नवाब को पकड़वा दिया।" सिराज जैसे धर्मानुरागी मुसलमान का दानशाह जैसे एक प्रसिद्ध मुसलमान फ़क़ीर के नाक कान काटना सर्वथा ही असम्भव है। हमें दानशाह के समाधिमन्दिर की शिलालिपि के द्वारा तथा उसके वंशजों से प्रमाण संग्रह करके यह ज्ञात हुआ है कि दानशाह उस समय जीवित ही नहीं था।

यह तो ठीक ही जान पड़ता है कि सिराजुद्दौला कालिंदी के किनारे शाहपुर नामक ग्राम में दानशाह के समाधिमन्दिर के पास ही क़ैद हुआ था। 'रियाज़ुस्सलातीन' के रचयिता श्रीयुत गुलामहुसेन सलेमी मालदा के निवासी थे। उन्हीं की बात अधिक विश्वास के योग्य है। परन्तु दानशाह अथवा उसके वंशजों के साथ इसका कुछ सम्बन्ध था, यह ठीक नहीं प्रतीत होता। एकमात्र सिर्फ़ हंटर साहब ने लिखा है कि "दानशाह ने सिराजुद्दौला को पकड़वाकर मीरजाफ़र से एक बहुमूल्य जागीर प्राप्त की थी, और स्वदेश में बड़ी ख्याति पाई थी। उसके वंशज आज भी उस जागीर का उपभोग कर रहे हैं।"† यदि यह बात सत्य होती तो मालदा के ज़िले में

---

* स्क्राफ़्टन, क्राइवस एवीडेन्स आदि।

† हंटर्स स्टैटिस्टकल एकाउन्टस आफ़ बंगाल जिल्द ७ पृष्ठ ८४।

कहीं पर इस जागीर का पता ज़रूर लगता। परन्तु वहां पर इस तरह की किसी जागीर का पता नहीं है। मालदा के भूतपूर्व कलेक्टर श्रीयुत उमेशचन्द्र बटव्याल महाशय ने "सारे सरिश्ते की खोज कराने पर भी कागज़-पत्रों में कहीं उसका पता न पाया।"* सुना जाता है कि दानशाह के अधिकार में बिना कर की बहुत सी ज़मीन थी। उसकी खसी हुई समाधि के पुराने ईंट-पत्थरों को देखने से भी जान पड़ता है कि वह एक समृद्धिशाली पुरुष था। परन्तु उसके वंशजों के अधिकार में इस समय सिर्फ़ कुछ बीघे ज़मीन बिना लगानी रह गई है, सो भी लोग कहते हैं कि बहुत ज़माना हुआ, जब उन्हें ये सब बिना लगानी ज़मीन गौड़-प्रदेश के अधिपति हुसेनशाह नामक पठान बादशाह से दान में प्राप्त हुई थी, और दानशाह के पूर्वजों के समय से वे उसका उपभोग करते चले आ रहे हैं।

मीरक़ासिम ने जिस समय सिराजुद्दौला को क़ैद किया, सिराज के पास उस समय न कोई हथियार था और न कोई साथी। लाचार हो उसने अपने छुटकारे के बदले में बहुत सा धन देना चाहा; पर हज़ार कोशिशें करने पर भी फल कुछ न हुआ। मीरक़ासिम की फ़ौज ने लूटमार के लालच में उन्मत्त हो उसकी नाव पर आक्रमण किया। स्वयम् मीरक़ासिम भी धन का लोभ परित्याग न कर सका, उसने भी मौक़ा पाकर चालाकी से लुतुफुन्निसा बेगम के बहुमूल्य रत्न-आभूषण ले लिये !† मसीय लास इस समय तीस मील

---

* एच० विवारिज सी० एस०।

† मुतख़रीन।

दूर था। उसके सिराज के साथ मिलने से पहले ही सिराज की सारी आशाएं निर्मूल हो गईं।

बड़ी खुशी के साथ मीरदाऊद ने यह ख़बर मुर्शिदाबाद को भेजी, जिसे सुनते ही मीरजाफ़र की प्रबल चिन्ता दूर हो गई। वह क्लाइव के पास बैठा हुआ हीराझीलवाले महल में कुछ सलाह-मशवरा कर रहा था। यह समाचार पाते ही उसने सिराजुद्दौला को बांध लाने के लिए फ़ौरन् ही युवराज मीरन को राजमहल भेज दिया।

१५ शव्वाल ( ३ जून ) को अपने भृत्यवर्ग के निर्दय अत्याचारों से पीड़ित, जीवनमृत सिराजुद्दौला बन्दी-वेश में मुर्शिदाबाद पहुंचा। अलीवर्दी के स्नेहभाजन सिराजुद्दौला के भाग्य-परिवर्तन का यह हृदय-विदारक दृश्य देखकर मुर्शिदाबाद के निवासी हाहाकार करने लगे! मुसलमान इतिहास-लेखक भी इस शोक में अपने को न संभाल सके, और उन्होंने गद्गद् कण्ठ होकर कहा :—

ऐ विचारवान मनुष्यो! इस उदाहरण से होशियार हो जाओ, और भाग्य के परिवर्तन को भलीभांति देखो। संसार की सफलताओं पर अधिक विश्वास न करो, क्योंकि ये उसी प्रकार अस्थायी और अनिश्चित हैं, जिस प्रकार एक सार्वजनिक व्यक्ति रोज़ इस घर से उस घर जाता है।*

खिले हुए फूल की तरह सिराजुद्दौला के शरीर की सुहावनी और सुकुमार कान्ति अपने भृत्यवर्ग के निष्ठुर अत्याचारों से मलिन हो चली थी। उसे देखते ही नागरिकों के हृदय में सहानुभूति जागृत हुई। मीरजाफ़र के सैनिकों ने

---

* स्काट्स ट्रान्सलेशन पृष्ठ ३७२।

कृतघ्नों की भांति सिराजुद्दौला के सिंहासन को छीनकर उसकी कैसी न कैसी दुर्दशा की है, इसे वे भी समझ गये। उन्होंने देखा कि उन्हीं के महापाप से सिराजुद्दौला क़ैद हुआ। कृतघ्न राजकर्मचारियों ने सूने सिंहासन पर आरोहण किया, उनके गुप्त संकल्पों के प्रधान सहकारियों ने बड़े आनन्द के साथ बांटचूंट करके राजकोष का धन रत्न कलकत्ते को भेज दिया, और यहां तक कि कोष में रुपये की कमी के कारण मीरजाफ़र की फ़ौजों को वेतन तक प्राप्त नहीं हुआ। ये सब बातें देखकर वे अधीर-हृदय हो दांतों हौंठ काटने लगे। कोई कोई सिराजुद्दौला के छुटकारे के उपायों की चिन्ता करने के लिए सड़कों पर जमा होने लगे। मुर्शिदाबाद में हलचल मच गई।*

---

* स्काटस हिस्ट्री आफ़ बंगाल पृष्ठ ३७१।

# अट्ठाईसवां परिच्छेद ।

## सिराजुद्दौला का क्या हुआ ?

सिराजुद्दौला का क्या हुआ ? हौस आफ़ कामन्स में गवाही देते समय लार्ड क्लाइव ने कहा है:—"मैं इस के सम्बन्ध में कुछ न जानता था। केवल दूसरे दिन मैंने मीरजाफ़र के मुंह से सुना था कि उसे रात्रि में गुप्त-रूप से मार डाला गया !"* मुसलमानों के समस्त इतिहास का अध्ययन करके भी स्टुअर्ट ने अपने स्वप्रणीत 'बंगाल के इतिहास' में लिखा है कि "भारतीय लेखकों में किसी ने भी इस के सम्बन्ध में क्लाइव पर किसी तरह का दोषारोपण नहीं किया है।"

परन्तु हम प्रसिद्ध भारतीय इतिहास-ग्रन्थ 'रियाज़ुस्सलातीन' में देख रहे हैं कि "अङ्गरेज़ सेनापतियों और जगत्-सेठ की उत्तेजनाओं के कारण ही सिराजुद्दौला क़त्ल हुआ था।" स्टुअर्ट ने उक्त ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़कर और स्वप्रणीत इतिहास में उसकी बड़ी प्रशंसा करके भी अन्त में ऐसा मिथ्या सिद्धान्त क्यों स्थिर किया, इसे न समझ सकने पर महात्मा विवारिज ने निम्न लिखित आक्षेप किया है:—

"मेरी समझ में नहीं आता कि स्टुअर्ट ने यह कैसे लिख डाला कि किसी भारतीय लेखक ने क्लाइव पर उसकी धोखेबाज़ी के सम्बन्ध में दोषारोपण नहीं किया है।"

---

* क्लाईवस एवीडेन्स ।

अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों में से अधिकांश ने क्लाइव को कलंकों से मुक्त करने की भरसक चेष्टाएं की हैं, और यह व्यवहार उनके लिए नितान्त अस्वाभाविक भी न था। उनका निश्चय है कि सिराजुद्दौला की हत्या के साथ क्लाइव का कुछ भी सम्बन्ध न था। परन्तु यह बात बड़ी विस्मयपूर्ण है कि जब क्लाइव का उससे कुछ सम्बन्ध ही न था तो उसे निर्दोष सिद्ध करने के लिए इतना अधिक प्रयत्न ही क्यों किया गया। घटनाओं की अवस्था के अनुसार क्लाइव का कलंकित होना कोई आश्चर्य की बात न थी, जान पड़ता है कि इसी लिए इन इतिहास-लेखकों ने इतना अधिक आग्रह प्रकट किया है।

जिन समस्त अवस्थाओं के अनुसार क्लाइव के भी कलंकित होने की सम्भावना थी वे बड़ी ही महत्वपूर्ण हैं। पलासी के मैदान में विजय प्राप्त करके ही मीरजाफ़र खुशी के मारे फूल उठा था; परन्तु परिणामदर्शी क्लाइव ने उसे विजयोत्सव मनाने का मौक़ा न देकर शीघ्र ही सिराजुद्दौला को क़ैद करने के लिए उत्तेजित किया। जब मीरजाफ़र राजधानी में चला आया तो भी क्लाइव ने एकाएक राजधानी में पदार्पण न करके नगर के बाहर ही कुछ दिन बिताये। किसी किसी ने कहा है कि इस में भी क्लाइव का गूढ़ उद्देश वर्तमान था। क्लाइव ने जिस तरह की बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है, उस पर लक्ष्य रखते हुए कोई भी ऐसा तर्क नहीं उठा सकता कि उसने अकारण ही मीरजाफ़र को उत्तेजित किया था। इतिहास में कुछ भी क्यों न लिखा हो, परन्तु इस सम्बन्ध में क्लाइव को तनिक भी सन्देह न था कि पलासी का युद्ध, युद्ध का अभिनयमात्र है। उस ने समझ रक्खा था कि यदि सिराजुद्दौला को भाग जाने का मौक़ा

मिला तो वह अवश्य ही अङ्गरेज़ों के पुराने शत्रु फ़रासीसियों के साथ मिलकर अङ्गरेज़ों का सर्वनाश साधन करेगा। अतएव यह निश्चय है कि वह अपने पक्ष को सबल करने के लिए ही सिराजुद्दौला को क़ैदख़ाने में डालने के लिए व्याकुल हो रहा था। इस बात के सत्य होने पर फिर इस विषय में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि क्लाइव की उत्तेजनाएँ ही सिराजुद्दौला के सर्वनाश का मूल कारण थीं! बाद की घटनाओं से यह निश्चय और भी पक्का हो जाता है। क्लाइव ने स्वयम् ही कहा है कि "यद्यपि क्षमा मांगने की कोई आवश्यकता नहीं थी तथापि मीरजाफ़र ने मेरे पास आकर सिराजुद्दौला के हत्याकांड के सम्बन्ध में क्षमा-प्रार्थना करते हुए मुझ से कहा था कि सिपाहियों के बग़ावत कर बैठने की आशंका देखकर सिंहासन की रक्षा के लिए सिराजुद्दौला को क़त्ल कर देना ही ज़रूरी था।" क्लाइव के कथन की प्रतिध्वनि से जान पड़ता है कि उसने सिराजुद्दौला की हत्या के सम्बन्ध में मीरजाफ़र की क्षमा-प्रार्थना को बिलकुल ही अनावश्यक समझा था।

जिन्होंने सिराजुद्दौला को कालीकोठरी-हत्याकांड के लिए अपराधी ठहराया है, उनका प्रधान तर्क यह है कि "यद्यपि इसका कोई प्रमाण नहीं पाया जाता कि सिराजुद्दौला ने स्वयम् ही कालीकोठरी के हत्याकांड की आज्ञा दी थी, तथापि उसके परवर्ती व्यवहारों पर दृष्टि डालने से—जब उसने उस के लिए किसी को कुछ दण्ड न दिया—यह समझ में आ जाता है कि वह भी उससे सहमत था।" परन्तु यदि इस तरह की तर्क-प्रणाली का अवलम्बन किया जाय तो क्लाइव के परवर्ती व्यवहार पर लक्ष्य रखते हुए

परिणाम क्या निकलेगा ? उसने भी तो सिराजुद्दौला की हत्या के सम्बन्ध में मीरजाफ़र को किसी प्रकार से रंचमात्र भी तिरस्कृत नहीं किया, बल्कि उसने यही कहा कि इसके लिए क्षमा-प्रार्थना न करने से भी कोई हर्ज न था ? क्लाइव की बातों और कामों की समालोचना करने पर क्या स्वभावतः ही यह विश्वास नहीं हो जाता है कि राज्य की रक्षा के लिए उसने भी सिराजुद्दौला की हत्या का समर्थन किया था ?

इन समस्त व्यवहारों के साथ "रियाजुस्सलातीन" के सुस्पष्ट अभियोग को सम्मिलित कर लेने पर यह कैसे कहा जा सकता है कि सिराजुद्दौला की हत्या से क्लाइव का वीर-चरित्र कलंकित नहीं हुआ ? पलासी-विजेता महावीर कह-कर, गले में विजय-माल पहिना कर जिन्होंने बड़े गौरव के साथ उसके जीवनचरित की रचना की है, उनमें से किसी ने भी 'रियाजुस्सलातीन' के अभियोग की समालोचना नहीं की है !

इतिहास-लेखकों ने तो सिराजुद्दौला को परम पाखण्डी दुराचारी, नीच, रणभीरु और कायर प्रमाणित करने में यथा-साध्य प्रयत्न किया है ; परन्तु क्लाइव को स्वयम् ऐसा विश्वास था या नहीं, यह संदिग्ध है। क्लाइव को भली भांति इसका परिचय मिल चुका था कि सिराजुद्दौला कैसी प्रकृति का तेजस्वी युवक है, उसके हृदय में भरा हुआ अङ्गरेज़ों के प्रति प्रबल विद्वेष कैसा जड़ पकड़ गया है, शत्रु का नाश करने के लिए उसमें कैसा अदम्य उत्साह है। इन बातों को जानते हुए ही सिराज के साथ फ़रासीसों की सैनिक शक्ति के मिल जाने की सम्भावना देखते ही क्लाइव कांप उठता था। एक फ़रासीस सेनापति मसीय लास को सिराजुद्दौला के दरबार से निकलवाने के लिए [illegible] कौशल [illegible] कुछ

उठा नहीं रखता था, और अन्त में क्लाइव ही के षड़यंत्रों से लास साहब आज़िमाबाद को निकाल दिये गये थे। जाते समय लास साहब ने सिराजुद्दौला को सावधान करने में कोई कसर न की, और सिराजुद्दौला ने भी उसके उत्तर में यही कहा था कि ज़रूरत पड़ते ही मैं फिर तुम्हें बुला लूंगा। ये सब बातें अङ्गरेज़ों से छिपी न थीं। अतएव क्लाइव को इस विषय में सन्देह करने का कोई कारण न था कि सिराजुद्दौला भागने का मौक़ा पाते ही मसीय लास के साथ मिलकर अंगरेज़ों का सर्वनाश करेगा। सिराजुद्दौला को कारारुद्ध करना ही क्लाइव का प्रधान उद्देश था, और इसीलिए युद्ध के बाद पहली मुलाक़ात के वक्त शिष्टाचार के समाप्त होने से पहले ही उसने मीरजाफ़र को इसके लिए उत्तेजित किया था, एवं जान पड़ता है कि इसीलिए जब क्लाइव की उत्तेजनाओं ही से सिराजुद्दौला क़ैद हुआ, और निर्दयतापूर्वक क़त्ल किया गया तो क्लाइव ने इस विषय में किसी तरह की क्षमा-प्रार्थना करने को सर्वथा ही अनावश्यक समझा, एवं मीरजाफ़र के माफ़ी मांगने पर सरल भाव से यही कह दिया कि "इस विषय में माफ़ी न मांगने से भी कुछ हर्ज न था।"

इससे पहिले क्लाइव के मदरास में फ़ौजकशी करते समय ठीक इसी तरह की एक घटना संघटित हुई थी! १७४८ ई० में सुविख्यात मुसलमान सूबेदार निज़ामुल्मुल्क के परलोकगमन के बाद दक्षिण में बड़ी भारी बग़ावत का सूत्रपात हुआ। दूसरों की राज्य-लक्ष्मी के भूखे राजनीति-विशारद फ़रासीस सेनानायक डुप्ले बहादुर ने इस अन्तर्विप्लव से लाभ उठाकर करनाट के नवाब और हैदराबाद के निज़ाम को राज्य से पृथक् कर दिया, और चांदा साहब को कर्नाट एवं मीर-

जाफ़र को हैदराबाद के राजसिंहासन पर बैठाकर दक्षिण में फ़रासीस-राजशक्ति को सुदृढ़ करने की आशा से "डुप्ले-फ़तेहाबाद" नाम का नगर बसाया, एवं वहां पर एक अत्युच्च विजयस्तम्भ स्थापित किया। अङ्गरेज़ लोगों ने उनकी शक्ति को दबाने के लिए कर्नाट की गद्दी पर बैठने के इच्छुक मोहम्मद अली के पक्ष का अवलम्बन करके कर्नल क्लाइव को फ़ौजकशी करने का भार सौंपा। क्लाइव ने मराठों की सेना से सहायता प्राप्त करके कुछ ही दिन में "डुप्ले फ़तेहाबाद" के जयस्तम्भ को धूलिधूसरित कर डाला। परन्तु चांदा साहब के ज़िन्दा रहते रण-कोलाहल शान्त नहीं हुआ। इसके कुछ दिन बाद अङ्गरेज़ों और मराठों की सेना के सम्मिलित उद्योग से हतभाग्य चांदा साहब अकस्मात् क़ैद होकर गुप्त-रूप से निर्दयतापूर्वक मार डाला गया! इस घटना से क्लाइव के कलंकित होने की सम्भावना देखकर उसके स्वदेशी अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने लिखा है:—"क्लाइव इसके विषय में कुछ नहीं जानता था! जान पड़ता है कि मोहम्मदअली के षड़यंत्र से ही चांदा साहब मारा गया था।"* निदान सिराजुद्दौला की हत्या का अपराध भी इसी तरह से अकेले मीरजाफ़र के १७ वर्ष के हतभाग्य पुत्र युवराज मीरन के मत्थे नहीं मढ़ा गया है, इसे कौन कह सकता है?

इसे प्रमाणित करने के लिए कि क्लाइव सिराज की हत्या के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था; किसी किसी ने लिखा है कि "सिराजुद्दौला जिस दिन मुर्शिदाबाद लाया गया उसी दिन तत्क्षण बिना किसी से कुछ कहे सुने दुराचारी मीरन ने गुप्तरूप से उसे मार डाला। मीरजाफ़र और क्लाइव

* मेकालेज़ 'लार्ड क्लाइव'।

उस समय गंगा के पश्चिमी किनारे पर ठहरे हुए थे, इसलिए पूर्वी किनारे पर स्थित मीरन के महल में किस समय क्या हो गया, क्लाइव और मीरजाफ़र किसी ने भी कुछ न जान पाया !" ये बातें यदि ठीक हों तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे साक्षात् सम्बन्ध से क्लाइव के अपराधी न होने के पक्ष में पर्याप्त प्रमाण दे रही हैं। परन्तु इतिहास-लेखकों की ये बातें कहांतक सत्य हैं, इसकी आलोचना करनी उचित है।

क्लाइव और मीरजाफ़र दोनों ही भागीरथी के पश्चिमी किनारे पर और मीरन पूर्वी किनारे पर था, इस सम्बन्ध में इतिहास में कोई मतभेद नहीं पाया जाता। इसी तरह से ये अपने अपने स्थानों पर ठहरे हुए थे कि इतने में राजमहल से ख़बर आई कि सिराजुद्दौला क़ैद हो गया है। इस ख़बर से षड़यंत्री लोग तो खुश हो ही सकते थे, परन्तु सिपाहियों में हाहाकार मच गया, और कुछ कुछ असंतोष के लक्षण दिखाई देने लगे। इससे स्पष्ट ही बोध होता है कि जो लोग सिराजुद्दौला को क़ैद करने के लिए बड़ी उत्सुकतापूर्वक घड़ी-पल गिन रहे थे, वे सिराजुद्दौला को राजधानी में लाने के लिए उपयुक्त शरीर-रक्षक नियुक्त करने पर बाध्य हुए। मीरन ही इस काम के लिए विशेष उपयुक्त था, इसलिए उसीको राजमहल भेजा गया। क्योंकि सम्भव था कि और लोग घूंस के लालच अथवा नागरिकों के भय से सिराजुद्दौला को छोड़ देते। मीरजाफ़र के उत्तराधिकारी मीरन पर ऐसा सन्देह करने की कोई गुंजाइश न थी, जान पड़ता है, इसीलिए उसे भेजा गया था। मुर्शिदाबाद से राजमहल को जाने और वहां से सिराजुद्दौला को लेकर फिर मुर्शिदाबाद को लौटने के लिए निःसन्देह दो दिनों की ज़रूरत थी। इन दो दिनों के

बीच में भी क्या इतनी बड़ी बात की भनक क्लाइव के कानों तक न पहुंची ?

सिराजुद्दौला कब मुर्शिदाबाद लाया गया था, यह प्रश्न आज भी रहस्यपूर्ण हो रहा है। क्लाइव, स्क्राफ़्टन और मुतख़रीन के लेखक सैयद गुलामहुसेन सब ने यही लिखा है कि सिराजुद्दौला को जैसे ही मुर्शिदाबाद में लाया, वैसे ही बिना किसी से कुछ कहे सुने मीरन ने फ़ौरन् ही उसे क़त्ल कर डाला। इसलिए किसी को इसका कुछ भेद मालूम होने की सम्भावना ही न रही। परन्तु क्लाइव, स्क्राफ़्टन और गुलामहुसेन ये तीनों ही समसामयिक दर्शक थे, और उस समय राजधानी ही में मौजूद थे, किन्तु फिर भी वे इस उक्ति का समर्थन एकमत होकर नहीं कर सके। क्लाइव कहता है कि सिराजुद्दौला जिस दिन लाया गया उसी दिन क़त्ल हुआ। गुलामहुसेन का कथन है कि सिराजुद्दौला तीसरी जुलाई को मुर्शिदाबाद में लाया गया और उसी तारीख़ को मार डाला गया। स्क्राफ़्टन लिखता है कि सिराजुद्दौला चौथी जुलाई को लाया गया और उसी तारीख को क़त्ल कर दिया गया। समकालीन लेखकों में ऐसा मतभेद देखकर सहज ही इसके कारण का अनुसंधान करने की इच्छा होती है। सिराजुद्दौला का मुर्शिदाबाद में आगमन और उसकी हत्या ये दोनों बातें एक ही दिन में हो गई थीं, और इसी लिए किसी को कुछ जानने का मौक़ा नहीं मिला। झटपट बड़ी आतुरता के साथ यही बात बनाकर कह डालने से ये लोग उक्त आक्षेप का उत्तर देते समय बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं।

सिराजुद्दौला जिस समय मुशिदाबाद में लाया गया, उस समय पश्चिम तीरवर्ती हीराभील के महल में पहले मीरजाफ़र

के पास उसका उपस्थित किया जाना अधिक सम्भव था या पूर्ववर्ती मीरन के राजमहल में उसके लाये जाने की विशेष सम्भावना थी? जो क्लाइव को दोष-मुक्त करने के लिए व्याकुल थे, उन्होंने तो कहा है कि सिराजुद्दौला कदापि पश्चिमी किनारे पर नहीं लाया गया, और इसलिए क्लाइव को उसके आने की ख़बर भी न मालूम हो सकी। वास्तव में इसी बात के ऊपर सारा वादविवाद निर्भर है कि सिराजुद्दौला पहले कहां लाया गया। अर्मी के लिखे हुए प्राचीन इतिहास में देखा जाता है कि "क़ैदख़ाने के पहरेदारों ने आधी रात के वक़्त सिराजुद्दौला को चोर और डाकुओं की तरह हथकड़ी बेड़ियों से बांधकर मीरजाफ़र के सामने उपस्थित कर दिया। जो राजप्रासाद कुछ दिन पहले सिराजुद्दौला के अखंड प्रताप से राजकीय गौरव का सम्भोग करता था, उसी राज-महल में सिराजुद्दौला को वन्दी के वेश में प्रवेश करना पड़ा! यह दशा देखकर मीरजाफ़र का हृदय भी द्रवित होने लगा, और ऐसा होना अनिवार्य ही था, क्योंकि सिराजुद्दौला ने स्वयम् उसके साथ आजतक कोई बुराई नहीं की थी, और वह उसी अलीवर्दी का स्नेहभाजन दौहित्र था, जिसकी दयालुता और उदारता की बदौलत मीरजाफ़र का भाग्य उदय हुआ था, और मरते दम तक अलीवर्दी का यह विश्वास रहा था कि मीरजाफ़र मेरे गोद लिये हुए प्यारे बच्चे सिराजुद्दौला का सदा साथ देगा। निदान सिराजुद्दौला उसके निकट बारम्बार प्राणों की भिक्षा मांगने लगा! मीरजाफ़र इस दृश्य को न देख सका, और सिपाहियों को उसे दूसरे स्थान पर ले जाने की आज्ञा दी।"

सिराजुद्दौला अन्यत्र भेज दिया गया; परन्तु मीरजाफ़र

उसी क्षण उसके भाग्य के निपटारे के लिए लोगों से राय लेने बैठा। राजकार्य के उपलक्ष में सभी अमीर-उमराव हीराझील के राजप्रासाद में उपस्थित थे। मीरजाफ़र इस विषय में उन सभी के परामर्श की जिज्ञासा करने लगा। इस सम्बन्ध में इङ्गलैंड के हौस आफ़ कामंस में जो मंतव्य पुस्तक में प्रकाशित हुआ है, उसमें लिखा है कि सभी ने एकमत होकर सिराजुद्दौला को मार डालने की राय दी थी। परन्तु अर्मी ने लिखा है कि "जो लोग सिराज के क़ैद होने से पहले उसका नाम सुनते ही थर थर कांप उठते थे, ऐसे अनेक आदमी इस समय मौक़ा पाकर सिराजुद्दौला के प्रति अवज्ञा और घृणा प्रकट करने लगे। अधिकांश अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए नये नवाब को नरहत्या और रक्तपात के कामों में लिप्त होने की राय देने का साहस नहीं करते थे। बहुतों ने सोचा कि मीर-जाफ़र को वश में रखने के लिए सिराजुद्दौला को जीवित रखना अत्यावश्यक है। ऐसे लोगों ने यही कहा कि सिराजुद्दौला को यावज्जीवन क़ैद का दंड दिया जाय। मीरन इससे सहमत नहीं था। जिन कूटिनीति-परायण लोगों की यह धारणा थी कि सिराजुद्दौला यदि जीवित रहा तो देश में राजविप्लव मचे रहने से मीरजाफ़र का राज्य-सिंहासन सदा ही आपद्ग्रस्त रहेगा, उन्होंने मीरन के पक्ष का समर्थन करके सिराजुद्दौला को मार डालने की राय दी। अंत में उन्हीं की राय कार्य में परिणत हुई।"

इन सब वर्णनों को पढ़ने और सारी अवस्थाओं की विवेचना करने पर मीरजाफ़र के १७ वर्ष के हतभाग्य पुत्र अकेले मीरन ही के शिर पर सारा पाप मढ़ने का साहस नहीं होता। मीरन की दुश्चरित्रता ही यदि सिराजुद्दौला की हत्या का एक-

मात्र कारण होती तो मीरन उसको राजमहल में अथवा रास्ते ही में किसी जगह क़त्ल कर के सारे बखेड़ों का अंत कर सकता था। सिराजुद्दौला के भाग्य का निर्णय करने के लिए अमीर वज़ीरों के साथ बैठकर परामर्श करने की ज़रूरत ही न पड़ती।

सिराजुद्दौला को क़ैद करने के लिए जिसे सर्वापेक्षा अधिक आग्रह था, और उसे राजमहल से मुर्शिदाबाद में लाने का प्रस्ताव जिसे बहुत अच्छी तरह ज्ञात था, वह अङ्गरेज़ सेनापति कर्नल क्लाइव उस समय मीरजाफ़र की सहायता और रक्षा के लिए उसके साथ गंगा के पश्चिमी किनारे पर ठहरा हुआ था। उस वक्त वही सब कुछ था। सब काम उसी की राय से होता था। उसके कृपाकटाक्ष की प्रतीक्षा में स्वयम् मीरजाफ़र भी तटस्थ रहता था। मीरजाफ़र को, क्लाइव से बिना कुछ कहे सुने, क्या ऐसे गुरु-तर कार्य में हस्तक्षेप करने का साहस हुआ था?

मीरजाफ़र ने स्वयम् सिराजुद्दौला के भाग्य निर्णय के वादविवाद में किसी पक्ष में भी अपनी राय प्रकट नहीं की। जो उसके पाप-मार्ग के साथी और सहगामी थे, उनमें से भी अधिकांश ने स्वार्थ-रक्षा के लिए सिराजुद्दौला को जीवित रखने ही का प्रयत्न किया था। परन्तु इसपर भी सिराजुद्दौला किसके अनुरोध के प्राबल्य से क़त्ल हुआ? इस विषय में तो अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने भी सन्देह नहीं किया है कि जो लोग कूटनीति के प्रकांड पण्डित थे, उन्हीं की राय से सिराज का हत्याकांड संघटित हुआ था। परन्तु वे कूटनीति-विशारद कौन थे, जिनकी सलाह और इशारे से मीरजाफ़र की हार्दिक स्नेह-ममता का लोप हो गया।

था, और अंत में उसे मंत्रमुग्ध की तरह वशीभूत करके सिराजुद्दौला को क़त्ल करवा देने की आज्ञा दी गई थी? क्या उनका नाम छिपाने के लिए ही इतिहास-लेखकों ने एक सत्तरह वर्ष के मुसलमान बालक के मत्थे राजहत्या का भीषण कलंक नहीं मढ़ा है? आद्योपान्त सारी बातों पर विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जानते सब थे, परन्तु किसी ने इसे मुख से निकालने का साहस न करके इतिहास की मर्यादा को पददलित किया है! और इसी लिए सिर्फ़ एक 'रियाज़ुस्सलातीन' के अभियोग के अतिरिक्त साक्षात् सम्बन्ध से क्लाइव के ज़िम्मे इस हत्यापराध का कोई प्रमाण नहीं पाया जाता।

इन सब दशाओं की विवेचना करने पर साक्षात् सम्बन्ध से क्लाइव के विरुद्ध प्रमाण न मिलने पर भी उसे निरपराध नहीं कहा जा सकता, और इसमें सन्देह नहीं कि यदि क्लाइव चाहता तो अनायास ही वह सिराजुद्दौला की जान बचा सकता था। परन्तु इस विषय में कुछ चेष्टा करना तो दूर रहा, एक प्रकार से मीरजाफ़र के कार्य का समर्थन करने के लिए उसने कहा कि राज्य की रक्षा के लिए इस प्रकार के हत्याकांड की ज़रूरत ही आ पड़ी थी! जिसके निकट जाली संधिपत्र बनाना और उमीचंद को धोखा देना आदि कार्य कुछ भी न्याय-विरुद्ध नहीं समझे गये, बल्कि जिसने कहा कि "ज़रूरत पड़ने पर मैं और भी सौ दफ़े ऐसे काम करने के लिए तैयार हो सकता हूं" उससे यह कब सम्भावना थी कि वह राज्य की रक्षा के लिए सिराजुद्दौला की हत्या को विशेष दूषित समझेगा?

जो लोग अपने साधारण अभीष्टों को सिद्ध करने के उद्देश से परस्पर सहायता करने के लिए किसी प्रकार के गुप्त

षड्यन्त्रों में सम्मिलित होते हैं, वे सभ्य-समाज के विचार में एक दूसरे के किये कामों के लिए अपराधी ठहरते हैं। अङ्गरेज़ और बंगालियों ने इन गुप्त षड्यंत्रों में शामिल होकर सिराज़ौला के सर्वनाश का अभीष्ट सिद्ध करने के उद्देश से एक दूसरे की सहायता करके विजय-लाभ किया। उसके बाद सिराजुद्दौला की रक्षा करना तो दूर रहा, परस्पर एक दूसरे को उसे क़ैदख़ाने में बन्द करने के लिए उत्तेजित करने लगे। उन्हीं उत्तेजनाओं से सिराजुद्दौला क़ैद होकर यदि क्लाइव के सरासर अनजान में मारा गया हो, तो भी उससे क्लाइव का कलंक-मोचन नहीं होता। सामरिक व्यापार में न्याय-अन्याय का विचार रखना भले ही अनावश्यक हो सके, स्वार्थ ही जिसका एकमात्र लक्ष्य रहता है, उसमें बुरे भले सब कार्य भले ही प्रशंसित हो सकें; परन्तु इतिहास में न्याय-अन्याय की मर्यादा का उल्लंघन किसी काल में नहीं हो सकता। सिराजुद्दौला अन्याय से क़त्ल हुआ या नहीं, एकमात्र इतिहास ही इसका निर्णायक है। यदि किसी समय इस देश का इतिहास अपने वास्तविक रूप में संकलित हो सका तो वह इतिहास सभ्य-संसार के सामने मुक्तकण्ठ से यह कहेगा कि क्लाइव और मीरजाफ़र दोनों ही कूटनीति-विशारद महावीर थे; परन्तु दोनों ही राजद्रोही थे, दोनों ही विश्वासघाती थे और दोनों ही राजहन्ता थे!

गंगा के पूर्वी किनारे पर स्थित मुर्शिदाबाद के एक भाग का नाम जाफ़रागंज था। नवाब अलीवर्दी के प्रेम में पले हुए मीर मोहम्मद जाफ़रअली ख़ां ने बहुत सा धन ख़र्च करके इस जगह पर अपने रहने के लिए एक विशाल भवन निर्माण कराया था, और इसी कारण से उस स्थान का नाम भी जा-

फ़रागंज प्रसिद्ध हो गया। किसी समय में जाफ़रागंज और हीराझील के विशाल महलों की शोभा से मुर्शिदाबाद का नागरिक सौन्दर्य विशेष रूप से विकसित हो रहा था। वह पुराना ऐश्वर्य-गर्व अब लोप हो गयाहै, गंगा के दोनों किनारों की पूर्व-शोभा विलीन हो गई है, उसके साथ ही जाफ़रागंज का नवाबी महल भी सर्वथा श्रीहीन हो गया है। परन्तु पलासी और जाफ़रागंज बंगाल के इतिहास में सदा के लिए परम प्रसिद्ध और चिरस्मरणीय हैं। पलासी में सिराजुद्दौला पराजित हुआ, और जाफ़रागंज में उसकी हत्या हुई।

इस ऐतिहासिक राजमहल में मीरजाफ़र का पूर्व-जीवन व्यतीत हुआ था। जब वह सिंहासन पर बैठा, और हीराझील पर अधिकार जमाया तो जाफ़रागंज युवराज मीरन के लीलाक्षेत्र में परिणत हुआ। उसी समय से मीरन के वंशज इसी राजमहल में रहते चले आते हैं।

मीरजाफ़र की मंत्रणा-सभा में सिराजुद्दौला के भाग्य का निर्णय हो जाने पर उसको जाफ़रागंज वाले राजप्रासाद के एक अत्यन्त अंधेरे तहख़ाने के गुप्त कमरे में छिपाकर क़ैद कर दिया गया।* इस राजमहल से सिराजुद्दौला अपरिचित न था। पलासी-युद्ध छिड़ने से पहले भी वह मीरजाफ़र के मतिभ्रम को दूर करने और इसलामी गौरव को सुरक्षित रखने के लिए, आत्मगौरव की परवा न करके, स्वयम् पालकी पर सवार हो मीरजाफ़र के पास इस राजमहल में आया था। उस दिन उसके आगमन का संवाद सुनकर जाफ़रागंज की सेना और सैनिक सरदारों ने घबराकर न जाने कितने आग्रह और सम्मान के साथ उसे अभिवादन किया था! आज

---

* एच विवारिज सी० एस०।

उसी महल के फाटक पर पांव में बेड़ियां पहिने सिराजुद्दौला के उतरने पर किसी ने भूलकर भी उसे सलाम नहीं किया! उसी विचित्र महल की प्रत्येक खिड़की से मानो प्रबल प्रति-हिंसा-ताड़ित भयानक अट्टहास्य की ध्वनि उठने लगी। सिराजुद्दौला इसके लिए तैयार ही होकर आया था। तथापि उस समय उसके अधीर हृदय में न जाने कितनी भीषण चिंताएं उत्पन्न हो रही थीं, इसे कौन कह सकता है?

एकाकी अंधेरे कारागर में डाल दिये जाने पर शायद जीवन की आशा फिर जाग उठी थी! शत्रु के हाथ से भली भांति पराजित और बंदी हो जाने पर भी इतने दिनों तक जीवित बना रहा, अतएव इससे सिराजुद्दौला ने यह ख़याल किया था कि शायद मीरजाफ़र अपने सुहृद की स्नेह-ममता को हृदय से न भुला सकेगा, और किसी न किसी ढंग से मेरे लिए रोटियों की व्यवस्था करके इन प्राणों को बचा रक्खेगा।

परन्तु सिराजुद्दौला को जीवन-दान देने का साहस नहीं हुआ। राजसिंहासन को निष्कंटक बनाने के लिए आत्म-हृदय की स्नेह-ममता को भुला देना पड़ा। खुल्लमखुल्ला न सही, किन्तु प्रकारान्तर से सिराजुद्दौला को क़त्ल करने के लिए ही उसे मीरन की अधीनता में जाफ़रागंज में क़ैद होना पड़ा था। परन्तु हाय! जिस किसी को भी इस हत्याकांड के चरितार्थ करने के लिए आह्वान किया गया, वही कांप उठा। कोई भी सहसा तैयार न हुआ। सिराजुद्दौला के नाम से इतिहास में जितने कलंकों ने स्थान लाभ किया है, उतने मुर्शिदाबाद के निवासियों को ज्ञात न थे। वे यही जानते थे कि सिराजु-द्दौला देश का राजा है। वह फ़िरंगियों का शत्रु, अलीवर्दी का

परम प्रीतिभाजन, सुकुमार-कान्ति तरुण युवक, अशान्त, यौवनोन्मत्त, उच्छृङ्खल और प्रबल प्रतापान्वित सूबेदार है। अतएव उसकी वर्तमान दुर्दशा देखकर लोग उसके दोषों की बातों को भूल गये, और जिस शान में उन्होंने उसे देखा था, उससे इस वर्तमान दुरवस्था का मुक़ाबिला करके उनका हृदय दुःख से अभिभूत होने लगा, वे उसके भाग्य-परिवर्तन पर हाहाकार करने लगे। * ऐसी दशा में प्रतिष्ठित परिवारों का एक भी मुसलमान यदि उसे क़त्ल करने को तैयार न हुआ तो यह स्वाभाविक ही था।

किंतु इस संसार में कोई भी कार्य अपूर्ण नहीं रह जाता। सिराजुद्दौला को क़त्ल करने के लिए भी अंत में एक दुरात्मा व्यक्ति ने धन के लोभ से तलवार उठाई! इस व्यक्ति का नाम मोहम्मदी बेग था। बाल्यकाल से अलीवर्दी और सिराजुद्दौला की स्नेह-अनुकम्पा से प्रतिपालित होकर उसका घृणित जीवन अंत में केवल रुपये के लालच से पाप-पंक में लिप्त हुआ। सिराज की मातामही ने एक अनाथा मुसलमान बालिका को अपनी संतान की तरह बड़े लाड़प्यार के साथ पालन-पोषण कर मोहम्मदी बेग के साथ उसका विवाह करके दयापूर्वक इन दोनों के लिए अन्न-वस्त्र की सुव्यवस्था कर दी थी, और इस उपलक्ष में मोहम्मदी बेग ने सिराजुद्दौला के घर से बहुत कुछ लाभ उठाया था। परन्तु वह हतभाग्य सभी पिछली बातों को भूलकर स्वामी की हत्या के लिए अग्रसर हुआ। बस, यही कहना पर्याप्त है कि जिन्हों ने न्याय और धर्मानुकूल सिराजुद्दौला के राज्य की रक्षा

---

* स्काट्स हिस्ट्री आफ़ बंगाल, पृष्ठ ३७१।

करने के लिए ईश्वर और संसार के सन्मुख उत्तरदायी होते हुए भी अपने षडयंत्रों से उसका सिंहासन छीनकर अन्नदाता राजाधिराज को चोर और डाकुओं की तरह क़त्ल करने के लिए निर्दयतापूर्वक क़ैद किया था, उनके आदेश को शिरोधार्य करके सिराजुद्दौला के प्रेम में पला हुआ मोहम्मदी बेग यदि प्रतिपालक के मस्तक पर खड्गाघात करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

नंगी तलवार हाथ में लिये हुए दुर्दान्त मोहम्मदी बेग ने जिस समय कारागार में प्रवेश किया तो सिराजुद्दौला उन्मत्त की तरह घबरा उठा। क्षणमात्र में सारी आशाएं विलीन हो गईं। मुहूर्त्त भर में विद्युत-वेग से सारे शरीर में व्याप कर अव्यक्त आकुल आर्तनाद की ध्वनि उठने लगी ! सिराज दीन वचनों में कहने लगाः—

"कौन ? मोहम्मदी बेग ? तुम ! तुम ! क्या तुम्हीं अंत में मुझे क़त्ल करने आये हो ? क्यों ? क्यों ? क्यों ? ये लोग इस बहुविस्तृत जन्मभूमि के अंधेरे घर में क्या मेरे लिए रूखी सूखी रोटियों की व्यवस्था न कर सके ?"

इतना कहने के बाद तत्काल ही सिराजुद्दौला के तेजस्वी हृदय की आत्मगरिमा जागृत हुई। फिर उसने मोहम्मदी बेग के निकट कातरोक्ति नहीं की। उसके भीषण संकल्प की पाप-वार्ता को भी उसके मुंह से न सुनकर सिराजुद्दौला स्वयम् ही कहने लगाः—

"नहीं, नहीं, मैं बच नहीं सकता ! ऐसा कदापि नहीं हो सकता ! और कोई अपराध भले ही न हो, —हुसेन-कुली ! तुम्हें जो मैंने क़त्ल किया है, उसके प्रायश्चित्त के लिए ही इस जीवन का अंत हो।"

इसके बाद मोहम्मदी वेग की ओर शून्य दृष्टि से देखते हुए कहने लगा:—"आओ—ठहरो—ठहरो—जल दो—एक बार अंतकालीन देवता के निकट इस जीवन के अंतिम कर्त्तव्य को पूरा कर लूं।"

सिराजुद्दौला ने जीवन के अंतिम कर्त्तव्य को निर्विघ्न समाप्त न कर पाया। दुरात्मा मोहम्मदी बेग भगवान के पवित्र नाम के पुण्य-प्रभाव को सहन न कर सका। सिराजुद्दौला की अंतिम प्राथना पूरी न होने पाई थी कि उसने प्रचंड वेग से सिराज के कंधे पर अपनी तेज़ तलवार का वार किया! दारुण आघात की यातना से पीड़ित हो सिराजुद्दौला, रक्त-रंजित शरीर, से कमरे के बीच में बेहोश हो गिर पड़ा। मोहम्मदी-वेग उन्मत्तों की भांति उसके ऊपर लगातार खड्गाघात करने लगा!

"और नहीं, अब नहीं, बस करो हुसेनकुली! तुम्हारी आत्मा शान्ति लाभ करे!" मुंह की बात मुंह ही में रह गई: सिराजुद्दौला के अमर आत्मा ने पापपूर्ण पृथ्वी के क्षुद्र कारागार का अतिक्रम कर परमधाम को प्रस्थान किया। *

---

* यदि सिराजुद्दौला इस देश में न पैदा होता तो शायद इतिहास-लेखक उसके प्रति सहानुभूति प्रकट कर सकते! स्टुअर्ट ने सिराज की अंतिम उक्ति के सम्बन्ध में भी परिहास करते हुए लिखा है:-

"शायद हिन्दुस्तान के निवासियों में यह एक ही ऐसी मिसाल है, जिसमें सिराजुद्दौला ने मृत्यु-शय्या पर अपने पापों के लिए पश्चात्ताप किया है, अन्यथा यहां के लोग पूर्व-कर्म को अच्छी तरह मानते हुए भी सब दोष भाग्य ही के सिर मढ़ते हैं, और जीवन में हर तरह की बुराइयां करके अंत समय को शान्ति और संतोष के साथ बिताते हैं।

इसके बाद क्या हुआ? मुर्शिदाबाद के स्त्री-पुरुष इस राजहत्या के आकस्मिक संवाद को सुनकर हाहाकार करने लगे। उनके शोकाकुल आर्तनाद ने ऊंचे ऊंचे पर्दों से घिरे हुए अन्तःपुर में प्रवेश किया, और सिराज की माता अमीना-बेगम के कानों में पड़ा! बाग़ी लोग विजय के उत्सव में उन्मत्त हो सिराज के क्षत-विक्षत शव को हाथी की पीठ पर रख-कर नगर के चारों ओर घुमाने के लिए निकले! राजमार्ग में आदमियों की भीड़ें जमा हो गईं। सिराज की मां हाहाकार करती हुई लज्जा और भय को तिलांजलि दे सड़क पर आ पछाड़ खाकर गिर पड़ी, और बिलख बिलख कर धूलि में लोटने लगी। उसे सामने तड़पता देख सिराज का शव ले जानेवाला हाथी सहसा बीच सड़क में बैठ गया! स्नेहमयी जननी अपने प्यारे पुत्र के मांसपिंडों को छाती से चिपटाकर मूर्छित हो गिर पड़ी! मीरजाफ़र के अनुचर क़दमहुसेन ने उस समय तरह तरह की ताड़ना देकर सिराज की मां अमीना बेगम को पुनः अंतःपुर में क़ैद कर सिराज के मृतक शरीर को समाधिस्थ करने के लिए भागीरथी के पश्चिम-तीरवर्ती अलीवर्दी के समाधि-मन्दिर में पहुंचाया। इसी ऐतिहासिक समाधि-मन्दिर में अलीवर्दी महाबतजंग के पूर्व-पार्श्व में सिराज के मांसपिण्ड नीरवता में समाधिस्थ हुए। यह समाधि-मन्दिर ही आज सिराजुद्दौला का एकमात्र चिह्न अवशेष है।*

---

* इस समाधिगृह में दीप जलाने के लिए सिर्फ़ ।) चार आना महीने की व्यवस्था है। श्री निखिलनाथ राय, बी० एल०।

# उपसंहार ।

भारतवर्ष में ब्रिटिश राज्य की संस्थापना का इतिहास सभी प्रकार के पाठकों के लिए एक चित्तरंजक पाठ है। एक ओर यदि उसमें विचित्र घटनाओं और वीर-चरित्रों का समावेश है तो दूसरी ओर देशी जातियों के चारित्रिक दोष हैं। देशी जातियों के दोषों के कारण ही उन विशाल जातियों पर यूरोपीय जातियां विजय प्राप्त कर सकीं। उस इतिहास से देशी जातियों की गुणग्राहकता, विश्वासपात्रता, सत्यशीलता और दृढ़चरित्रता प्रकट होती है। विजय के उपरान्त देशी जातियों की विश्वासपात्रता और दृढ़ता का परिचय मिला था, और रणक्षेत्र में उनके दोष दिखलाई पड़े थे। इन्हीं दोषों के कारण बड़ी बड़ी देशी सेनाओं के विरुद्ध लड़ने के लिए हमको देशी सिपाहियों ही की बड़ी बड़ी फ़ौजें मिल सकी थीं। शत्रु देशों में से ही हमको सहायता देनेवाली और हमारा सम्मान करनेवाली सेनाएं मिल जाया करती थीं। परन्तु इन देशी मनुष्यों में दृढ़ता के साथ सरलता, रणक्षेत्र में निर्भीकता और अपने नेता के लिए प्रेम एवम् श्रद्धा पाई जाती है, और उनके इन गुणों से वह युरोपियन जाति भी—जो उनके दोषों के कारण ही भारतवर्ष पर आधिपत्य जमा सकी —उनको सम्मान की दृष्टि से देख सकती है।

कर्नल मालिसन।

केवल घटनाओं के विवरण के लिए जो इतिहास संकलित हुआ है, उसमें देखा जाता है कि सिराजुद्दौला के अन्याय और अत्याचारों ही से उनका सर्वनाश संघटित हुआ था।

परन्तु कार्य-कारण की समालोचना करके यदि निष्पक्ष भाव से इतिहास का संकलन किया जाय तो उसमें सब किसी को यह लिखना पड़ेगा कि इस हतभाग्य नरेश के मिथ्या कलंकों से कलंकित तरुण जीवन के अत्याचार और अविचारों की अपेक्षा वास्तव में हमारी चरित्रहीनता ही मुग़ल साम्राज्य के अधः-पतन का कारण प्रधान है।

औरंगज़ेब के अंतिम काल में जिस अराजकता का सूत्रपात भारतवर्ष में हुआ था, उससे मुग़ल साम्राज्य डगमगा उठा। आभ्यंतरिक विप्लवों से लाभ उठाकर फ़रासीस और अङ्गरेज़ विदेशी सौदागरों की ये दो बलवती कम्पनियां इस देश के निवासियों की सहायता से अपनी अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने के लिए अत्यन्त लालायित थीं। सिराजुद्दौला उनको दबाने की चेष्टा करके अकाल ही में कालग्रास हुआ; परंतु यदि वह निश्चेष्ट होकर बैठ रहता तो भी मुग़लों का राज-सिंहासन अटल न रह सकता।

हमारे उद्योग और हमारी शक्ति से सहायता प्राप्त करके अङ्गरेज़ वणिकों ने इस देश में अपनी प्रतिभा को विकसित करने का अवसर पाया। भारतवर्ष में ब्रिटिश शक्ति संस्थापित हुई, उसके प्रधान सहायक हमीं हैं। हमारे देश के चतुर और मंत्रणा-कुशल मंत्री यदि राजविद्रोह में सम्मिलित न होते, हमारे देश की निर्भीक सिपाही-सेना यदि अपना रक्त-दान देकर सैकड़ों समर क्षेत्रों में ब्रिटिश विजय-वैजयंती को न फहराती, हमारे देश में एक प्रान्त के लोग सहायता देकर यदि अन्य प्रान्त के निवासियों को पराजित करने के लिए अग्रसर न होते तो कौन कह सकता है कि इस देश में ब्रिटिश राज-शक्ति संस्थापित होती या नहीं?

हमने रण-पराजित और विपद्ग्रस्त शत्रु की तरह अनन्योपाय होकर अङ्गरेज़ वणिकों की शासन-क्षमता को स्वीकार नहीं कर लिया, बल्कि मित्र बनकर, सहकारियों की तरह, परस्पर स्वार्थ-सिद्धि के उद्देश्यों से, एक दूसरे के परामर्श से, सम्मिलित शक्ति के द्वारा हमने मुग़ल शासन के मूल को उखाड़ डाला। इससे एक ओर जिस प्रकार हमारे जातीय चरित्र की दुर्बलता प्रकट होती है, उसी प्रकार दूसरी ओर हमारे चरित्र की सरलता भी परिस्फुटित हो रही है, और भारतवर्ष के वर्तमान नवजीवन की बात को याद रखने पर यह भी मानना पड़ेगा कि हमारा मार्ग कैसा ही निन्दित क्यों न रहा हो, परन्तु मानो गरल से अमृत की उत्पत्ति के सदृश उससे नव्य भारत की प्राण-प्रतिष्ठा हुई है। अङ्गरेज़ सौदागरों के सहायता न करने पर यह शुभ-फल फलता या नहीं, इसमें सर्वथा ही सन्देह था। हमारे जातीय चरित्र में यदि दुर्बलता न होती तो यह शुभफल कदापि समुत्पन्न न होता।

यदि हममें चारित्रिक दुर्बलता न होती तो शायद अङ्गरेज़ सौदागरों को चिरकाल तक मालगोदाम में बहीखातों को लेकर ही जीवन बिताना पड़ता। कभी किसी मुसलमान नवाब के दण्ड और अत्याचारों से भयभीत होने पर उन्हें हमारा ही सहारा लेना पड़ता। हमारे जातीय चरित्र में मंत्र-सिद्धि के लिए साधना, शुभ प्रतिज्ञाओं के पालन करने के लिए उत्कट अध्यवसाय, स्वार्थसाधन के लिए निर्भीकता, अर्थोपार्जन के लिए प्राण तक विसर्जन कर देने में अकातरता, अज्ञात और अपरिचित कुल एवं स्वभाववालों पर विश्वास कर लेने में सरलता,—ये सद्गुण यदि न होते तो मुग़ल, पठान, मराठा, सिक्ख, रुहेला, जाट, पिंडारी, ठग इत्यादि

अनेक प्रबल प्रतिद्वंद्वियों के अमित बल-विक्रम का सामना करके ईस्ट-इंडिया कम्पनी, स्वयम् अपने बाहुबल से, भारत-साम्राज्य पर अपना आधिपत्य-विस्तार न कर सकती।

हम अपने चारित्रिक दोषों से दुर्बल हैं, और अपने चारित्रिक सद्गुणों से बलवान भी। हमारी यह दुर्बलता और सबलता ही भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन-शक्ति की नींव है। इन्हीं कारणों से अङ्गरेज़ लेखकों को हमारी निन्दा करना शोभा नहीं देता। हमें रण-पराजित और कायर बताकर इतिहास-रचना करने से अङ्गरेज़ों का मुख कदापि उज्ज्वल नहीं होता।

आज वह दिन नहीं है। मुग़ल और पठान केवल "क्रीड़ा-पट" में विराज रहे हैं। हमारे कल्याण के लिए इंगलैंड और इंगलैंड का गौरव बढ़ाने के लिए हम, इन दोनों विशाल जातियों ने एक ही अखंड राजतंत्र की छाया में खड़े होकर, परस्पर एक दूसरे के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी हो, बाहु से बाहु मिलाकर गौरवान्वित नवयुग में पदार्पण किया है। यह बाहु-बन्धन सुदृढ़ हो, यह सहकारिता प्रीतिप्रद हो, यह अभिनव सम्बन्ध चिरस्थायी हो, यही इस समय इङ्गलैंड और भारतवर्ष की सम्मिलित प्रार्थना है। इङ्गलैंड और भारतवर्ष के इस शुभ सम्मिलन के समय में, अङ्गरेज़ और बंगाली यदि सत्य की रक्षा के लिए सरल भाव से अपने दोषों को स्वीकार करने पर तैयार हों, तो (कर्नल मालिसन के शब्दों में) विजयी और विजित सभी को कहना पड़ेगा कि :—

"दुष्ट होने की अपेक्षा सिराजुद्दौला अभागा ही अधिक था"।

—

इति शुभम्